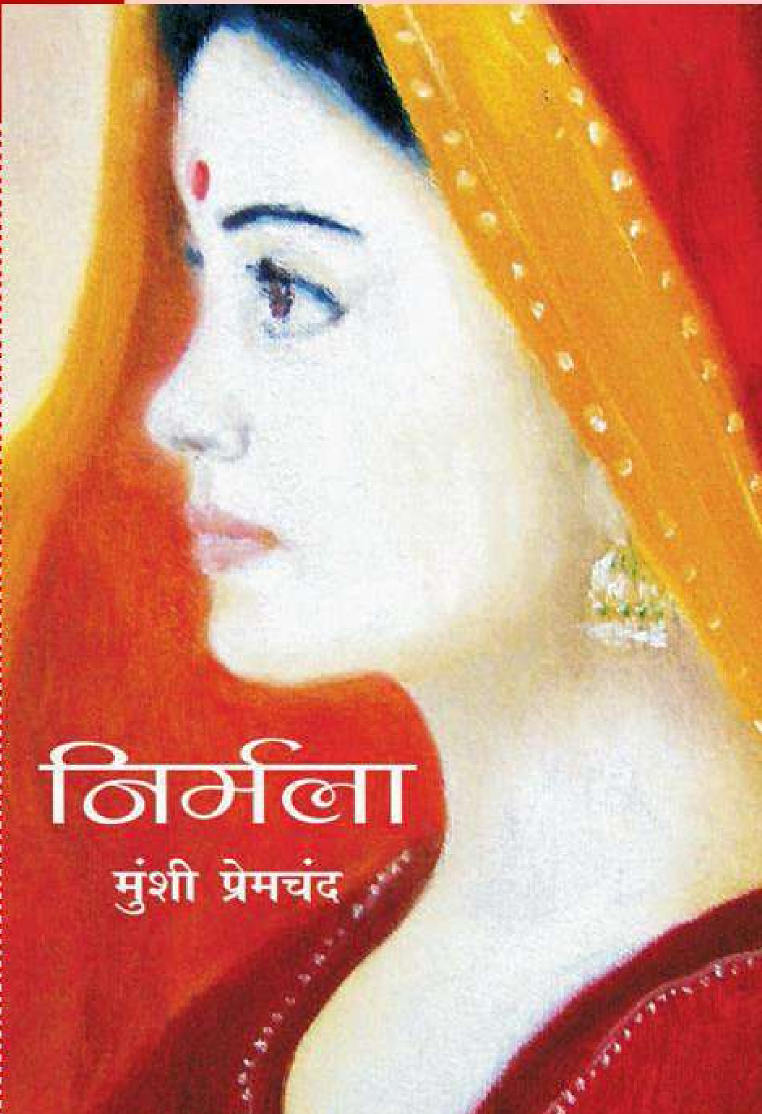
निर्मला
मुंशी प्रेमचंद

प्रकाशक—
'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

मुद्रक—
आर० सहगल,
फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद

उपहार

निर्मला

पहला परिच्छेद

यों तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे; कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा; कोई भान्जा था, कोई भतीजा; लेकिन यहाँ हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थीं; और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्त्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो लोग उनकी दोनों कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला; और छोटी का कृष्णा था। अभी कल तक दोनों साथ-साथ गुड़िया भी खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवाँ साल था, कृष्णा का दसवाँ; फिर

भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चञ्चल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़ियों का धूम-धाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। माँ पुकारती रहती थी; पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डाटती थीं; और बाजे की आवाज़ सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थीं; पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई है, जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है; पर निर्मला गम्भीर, एकान्तप्रिय और लज्जाशीला हो गई है। इधर महीनों से बाबू उदयभानुलाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मिहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आप की खुशी हो दहेज़ दें या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं; हाँ, बारात में जो लोग जायँ उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हँसाई न हो। बाबू उदयभानु-लाल थे तो वकील; पर सञ्चय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मा[illegible] [illegible] आँखें मिल गईं। डरते थे, न जाने किस-किस के केवल फैलाना पड़े; दो-तीन महाजनों को ठीक कर रक्खा और अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हज़[illegible]

खर्च न होंगे। यह आश्वासन पाकर वे ख़ुशी के मारे फूले न समाए !

इसी सूचना ने अज्ञात बालिका को मुँह ढाँप कर एक कोने में बिठा रक्खा है। उसके हृदय में एक विचित्र शङ्का समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का सञ्चार हो गया है—न जाने क्या होगा ? उसके मन में वे उमङ्गें नहीं हैं, जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बन कर, ओठों पर मधुर हास्य बन कर; और अङ्गों में आलस्य बन कर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं; वहाँ केवल शङ्काएँ, चिन्ताएँ और भीरु कल्पनाएँ हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है !

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। जानती है, बहिन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आएँगे, नाच होगा—यह जान कर प्रसन्न है; और यह भी जानती है कि बहिन सबके गले मिल कर रोएगी, यहाँ से रो-धो कर बिदा हो जायगी, मैं अकेली रह जाऊँगी !! यह जान कर दुखी है; पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माता जी और पिता जी क्यों बहिन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहिन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की; क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी लोग निकाल देंगे ? मैं भी इसी तरह कोने में बैठ कर रोऊँगी; और किसी को मुझ पर दया न आएगी ? इसलिए वह भयभीत भी है।

सन्ध्या का समय था, निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था कि पङ्ख होते तो वह उड़ जाती; और इन सारी झञ्झटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहिनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। बग्घी ख़ाली न होती, तो बग़ीचे ही में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती थी। जब कहीं न पाया, तो छत पर आई; और उसे देखते ही हँस कर बोली—तुम यहाँ आकर छिपी बैठी हो; और मैं तुम्हें ढूँढ़ती फिरती हूँ। चलो, बग्घी तैयार करा आई हूँ!

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊँगी।

कृष्णा—नहीं, मेरी अच्छी दीदी; आज ज़रूर चलो। देखो, कैसी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आँखें डबडबा आईं। काँपती हुई आवाज़ से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबराता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगी। यहीं तुम्हारे साथ बैठी रहूँगी।

निर्मला—और जब मैं चली जाऊँगी, तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जायगी; बता?

कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। अकेले मुझसे यहाँ न रहा जायगा।

निर्मला मुस्करा कर बोली—तुझे अम्माँ न जाने देंगी।

कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूँगी। तुम अम्माँ से कह क्यों नहीं देतीं कि मैं न जाऊँगी?

निर्मला—कह तो रही हूँ, कोई सुनता है?

कृष्णा—तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है?

निर्मला—नहीं; मेरा घर होता तो कोई क्यों ज़बरदस्ती निकाल देता।

कृष्णा—इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊँगी?

निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी? हम लड़कियाँ हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जायगा?

निर्मला—चन्दर तो लड़का है; उसे कौन निकालेगा?

कृष्णा—तो लड़कियाँ बहुत ख़राब होती होंगी?

निर्मला—ख़राब न होतीं; तो घर से भगाई क्यों जातीं।

कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम तुम तो कोई बदमाशी भी नहीं करतीं।

एकाएक चन्दर धम-धम करता हुआ छत पर आ पहुँचा; और निर्मला को देख कर बोला—अच्छा! आप यहाँ बैठी हैं। ओहो! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दूल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी, ओहो! ओहो!!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था। निर्मला से तीन साल छोटा; और कृष्णा से दो साल बड़ा था।

निर्मला—चन्दर ! मुझे चिढ़ाओगे, तो अभी जाकर अम्माँ से कह दूँगी।

चन्द्र—तो चिढ़ती क्यों हो ? तुम भी बाजे सुनना। ओहो, हो ! अब आप दूल्हन बनेंगी ! क्यों किशनी, तू बाजे सुनेगी न ? वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे।

कृष्णा—क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे ?

चन्द्र—हाँ-हाँ, बैण्ड से भी अच्छे, हज़ार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे। तुम जानो क्या ? एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं, उससे अच्छे बाजे ही नहीं होते। बाजे बजाने वाले लाल-लाल वर्दियाँ और काली-काली टोपियाँ पहने होंगे। ऐसे खूबसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूँ। आतशबाज़ियाँ भी होंगी; हवाइयाँ आसमान में उड़ जायँगी; और वहाँ तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे, नीले तारे टूट-टूट कर गिरेंगे। बड़ा मज़ा आएगा।

कृष्णा—और क्या-क्या होगा चन्दर, बता दे मेरे भैया !

चन्द्र—मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बातें बता दूँ। ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देख कर तेरी आँखें खुल जायँगी। हवा में उड़ती हुई परियाँ होंगी; सचमुच की परियाँ।

कृष्णा—अच्छा चलो; लेकिन न बताओगे तो मारूँगी।

चन्द्रभानु और कृष्णा चले गए; पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी

निठुर हो गई ! अकेली छोड़ कर चली गई ! बात कोई न थी; लेकिन दुखी हृदय दुखती हुई आँख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहिन, माता-पिता सभी इसी भाँति मुझे भूल जायँगे, सब की आँखें फिर जायँगी ! फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊँ !

बाग़ में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल, मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई; और आँख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है; और वह नदी के किनारे नाव की बाट देख रही है। सन्ध्या का समय है। अँधेरा किसी भयङ्कर जन्तु की भाँति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिन्ता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी; कैसे घर पहुँचूँगी। रो रही है कि कहीं रात न हो जाय, नहीं तो मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है; और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है; लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है। वह मल्लाह की खुशामद करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है; लेकिन वह यह कहे जाता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है।

एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच, वह नदी में कूद कर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज़ आती है—ठहरो-ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है, मैं आता हूँ; मेरी नाव पर बैठ जाओ, मैं उस पार पहुँचा दूँगा। वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज़ कहाँ से आई। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार; और न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ है, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है; और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। वह उससे कहती है, यह तो टूटी हुई है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है—तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ। वह एक क्षण सोचती है—इसमें बैठूँ या न बैठूँ। अन्त में वह निश्चय करती है, बैठ जाऊँ। यहाँ अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयङ्कर जन्तु के पेट में जाने से तो यही अच्छा है कि नदी में डूब जाऊँ। कौन जाने, नाव पार पहुँच ही जाय; यह सोच कर वह प्राणों को मुट्ठी में लिए हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है; लेकिन प्रति क्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती है, यहाँ तक कि उसके हाथ रह जाते हैं; पर पानी बढ़ता ही चला जाता है।

आखिर नाव चक्कर खाने लगती है; मालूम होता है—अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे से खिसक जाती है; और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लाई; और चिल्लाते ही उसकी आँखें खुल गईं। देखा तो माता सामने खड़ी उसका कन्धा पकड़ कर हिला रही थीं।

दूसरा परिच्छेद

बाबू उदयभानुलाल का मकान बाज़ार में बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े, और कमरे में दर्ज़ी की सुइयाँ चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाइयाँ बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है। मेहमानों के लिए अलग एक मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हरेक मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, एक-एक कुर्सी और एक-एक मेज़ हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजवीज़ हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है; लेकिन तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाय कि किसी को ज़बान हिलाने का मौक़ा न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहाँ बारात में गए थे। एक पूरा मकान बर्तनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की

तश्तरियाँ, थाल, लोटे, गिलास! जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता को सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों के बाद मिलेगा। जहाँ एक आदमी को जाना होता है, पाँच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा सी बात पर घण्टों तर्क-वितर्क होता है; और अन्त में वकील साहब को आकर निश्चय करना पड़ता है। एक कहता है, यह घी खराब है। दूसरा कहता है, इससे अच्छा बाज़ार में मिल जाय, तो टाँग की राह निकल जाऊँ। तीसरा कहता है, इसमें तो हींक आती है। चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहाँ आए हो, घी मिलने लगा है; नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे। इस पर तकरार बढ़ जाती है; और वकील साहब को झगड़ा चुकाना पड़ता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानुलाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तख़मीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज ही तख़मीना लगाते थे; पर रोज ही उसमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन और परिवर्द्धन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहें सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया; और बोले—दस हज़ार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाय।

कल्याणी—दस दिन में पाँच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाय!

उदयभानु—क्या करूँ, जग-हँसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। कोई शिकायत हुई, तो लोग कहेंगे नाम बड़े, दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी तो यह कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रक्खूँ!

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं कर सका। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मुयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर नानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाए, कहार बात नहीं सुनते, लालटेनें धुआँ देती हैं, कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढीली हैं, जनवासे की जगह हवादार नहीं; ऐसी-ऐसी हज़ारों शिकायतें होती रहती हैं। उन्हें आप कहाँ तक रोकिएगा? अगर यह मौक़ा न मिला, तो और कोई ऐब निकाल लिए जायँगे। भई, यह तेल तो रण्डियों के लगाने लायक़ है, हमें तो सादा तेल चाहिए; जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखाई है; मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं; जब देखिए सिर पर सवार; लालटेनें ऐसी भेजी हैं कि आँखें चमकने लगती हैं; अगर दस-पाँच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आँखें फूट जायँ। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ़ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूँगी कि बारातियों के नख़रों का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने कहती हो ?

कल्याणी—कह तो रही हूँ, पक्का इरादा कर लो कि पाँच हज़ार से अधिक न खर्च करेंगे। घर में तो टका है नहीं; क़र्ज़ ही का भरोसा ठहरा, तो इतना क़र्ज़ क्यों ले लो कि ज़िन्दगी में अदा न हो। आख़िर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो क्या आज मैं मरा जाता हूँ ?

कल्याणी—जीने-मरने का हाल कोई नहीं जानता।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो ?

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की तो कोई बात नहीं है। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहाँ अमर होकर थोड़े ही आया है। आँखें बन्द कर लेने से तो होने वाली बात न टलेगी। रोज़ आँखों देखती हूँ, बाप का देहान्त हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम ही क्यों करे ?

उदयभानु ने जल कर कहा—तो अब समझ लूँ कि मेरे मरने के दिन निकट आ गए, यह तुम्हारी भविष्यवाणी है। सुहाग से स्त्रियों का जी ऊबते नहीं सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई! रँडापे में भी कोई सुख होगा ही !!

कल्याणी—तुम से दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो ज़हर उगलने लगते हो। इसीलिए न कि जानते हो इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है; या और

कुछ ? जहाँ कोई बात कही, बस सिर हो गए; मानो मैं घर की लौंडी हूँ, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूँ, तुम और भी दबाते हो। मुफ़्तख़ोरे माल उड़ाएँ, कोई मुँह न खोले; शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई ज़बान न हिलाए। ये सारे काँटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं!

उदयभानु—तो मैं क्या तुम्हारा ग़ुलाम हूँ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियाँ भी और होंगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती हैं।

उदयभानु—मैं कमा कर लाता हूँ; जैसे चाहूँ ख़र्च कर सकता हूँ। किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

कल्याणी—तो आप अपना घर सँभालिए। ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहाँ मेरी कोई पूछ नहीं। घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी। इससे जौ भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन की रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं; मारो या जिलाओ। न आँखों से देखूँगी, न पीड़ा होगी। आँखें फूटीं, पीर गई!

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न सँभालोगी, तो

मेरा घर ही न सँभलेगा ? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर सँभाल सकता हूँ।

कल्याणी—कौन ! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाय, तो कहना कोई कहती थी।

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा। वह झमक कर उठी; और कमरे से द्वार की ओर चली। वकील साहब मुक़दमों में तो ख़ूब मीन-मेख निकालते थे; लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर अब भी वह नरम पड़ जाते; और कल्याणी का हाथ पकड़ कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती, लेकिन आप से यह तो न हो सका; उलटे चलते-चलाते एक और चर्का दिया।

बोले—मैके का घमण्ड होगा।

कल्याणी ने द्वार पर रुक कर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा; और बफर कर बोली—मैके वाले मेरी तक़दीर के साथी नहीं हैं; और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूँ।

उदयभानु—तब कहाँ जा रही हो ?

कल्याणी—तुम यह पूछने वाले कौन होते हो ? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है ?

यह कह कर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई। आँगन में

आकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर से कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गए थे। घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आई, देखा चन्द्रभानु सोया है। सब से छोटा सूर्यभानु चारपाई पर से उठ बैठा है। माता को देखते ही वह बोला—तुम तहाँ दईतीं अम्माँ? कल्याणी दूर ही खड़े-खड़े बोली—कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबू जी के पास गई थी।

सूर्य०—तुम तली दईं, मुजे अतेले दर लदता ता। तुम त्यों तली दई तीं; बताओ?

यह कह बच्चे ने गोद चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिए। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृ-स्नेह के सुधा-प्रवाह से उसका सन्तप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गए थे, फिर हरे हो गए। आँखें सजल हो गईं। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया; और उसे छाती से लगा कर बोली—तुमने मुझे पुकार क्यों न लिया; बेटा?

सूर्य०—पुकालता तो ता, तुम छुनती ही न तीं। बताओ, अब तो तबी न दाओगी?

कल्याणी—नहीं भैया, अब कभी न जाऊँगी।

यह कह कर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। माँ के हृदय से लिपटते ही बालक निःशङ्क होकर सो गया। कल्याणी के मन में सङ्कल्प-विकल्प होने लगे। पति की बातें याद

आतीं, तो मन होता—घर को तिलाञ्जली देकर चली जाऊँ; लेकिन बच्चों का मुँह देखती, तो वात्सल्य से चित्त गद्‌गद् हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़ कर जाऊँ! मेरे इन लाल को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे। कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलाएगा; कौन इनकी नींद सोएगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जाएँगे। नहीं प्यारो, मैं तुम्हें छोड़ कर न जाऊँगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूँगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी; पर बाबू साहब को नींद न आई। उन्हें चोट करने वाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ! यह मिजाज! मानो मैं ही इनकी स्त्री हूँ! बात मुँह से निकालनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ। घर में अकेली यह रहें; और बाक़ी जितने अपने-बेगाने हैं, सब निकाल दिए जायँ। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरे, तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुँह से निकल ही आती है, चाहे कोई कितना ही छिपाए। कई दिन से देख रहा हूँ, ऐसी जली-कटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा; लेकिन वहाँ कोई बात भी न पूछेगा। अभी सब आव भगत करते हैं। जब जाकर सिर पड़ जायँगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। रोती हुई आएँगी। वाह रे घमण्ड, सोचती हैं—मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊँ, तो मालूम हो। तब देखूँ क्या करती हैं? बस, चार दिन ही में तो मालूम हो जायगा। सारी शेखी किरकिरी

हो जायगी। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूँ, ज़रा वैधव्य का मज़ा भी चखा दूँ। न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगती हैं ? मालूम होता है प्रेम इन्हें छू नहीं गया या समझती हैं यह घर से इतना चिमटा हुआ है; कि इसे चाहे जितना कोसूँ, टलने का नाम न लेगा। यही बात है; पर यहाँ संसार से चिपटने वाले जीव नहीं हैं। जहन्नुम में जाय वह घर; जहाँ ऐसे प्राणियों से पाला पड़े। घर है या नरक ! आदमी बाहर से थका-माँदा आता है, तो घर में उसे आराम मिलता है। यहाँ आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रक्खे जाते हैं। यह है पचीस बरस के दाम्पत्य-जीवन का अन्त ! बस चल ही दूँ। जब देख लूँगा कि इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया; और मिज़ाज ठण्डा हो गया, तो लौट आऊँगा। चार-पाँच दिन काफी होंगे। ले, तुम भी क्या याद करोगी कि किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिए, अपना कार्ड निकाल कर एक दूसरे कुर्ते के जेब में रक्खा, छड़ी उठाई; और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थें। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा; और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन-रङ्गशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम्य, गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर-क्रीड़ा दिखा रहा है ? यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है ?

निशा ने इन्दु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतङ्क जमा रक्खा था! सद्वृत्तियाँ मुँह छिपाए पड़ी थीं; और कुवृत्तियाँ विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचर रहे थे; और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मँडलाते फिरते थे।

बाबू उदयभानुलाल लपके हुए गङ्गा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्ता घाट के किनारे रख कर पाँच दिन के लिए मिर्जापूर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देख कर लोगों को उनके डूब जाने का विश्वास हो जायगा। कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगने में कोई दिक़्क़त न हो सकती थी। दम के दम में सारे शहर में ख़बर मशहूर हो जायगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जायगा, तब देखूँ देवी जी क्या करती हैं?

यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे, सहसा उन्हें अपने पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली; समझे कोई होगा। आगे बढ़े; लेकिन जिस गली में वह मुड़ते, उसी तरफ़ वह आदमी भी मुड़ता था। तब तो बाबू साहब को आशङ्का हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ़ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली; और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बलिष्ट मनुष्य कन्धे पर लाठी रक्खे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला

था । उदयभानु ने उस मुक़दमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी; और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी । तभी से वह इनके ख़ून का प्यासा हो रहा था । कल ही वह छूट कर आया था । आज दैवात् बाबू साहब अकेले रात को दिखाई दिए, तो उसने सोचा यह इनसे दाँव चुकाने का अच्छा मौक़ा है । ऐसा मौक़ा शायद ही फिर कभी मिले । तुरन्त पीछे हो लिया; और वार करने के घात ही में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलाई । बदमाश ज़रा ठिठक कर बोला—क्यों बाबू जी, पहचानते हो न ? मैं हूँ मतई ।

बाबू साहब ने डपट कर कहा—तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो ?

मतई—क्यों, किसी को रास्ता चलने की मनाही है । यह गली तुम्हारे बाप की है ?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हृष्ट-पुष्ट आदमी थे । दिल के भी कच्चे न थे । छड़ी सँभाल कर बोले—अभी शायद मन नहीं भरा । अब की सात साल को जाओगे ।

मतई—मैं सात साल को जाऊँ या चौदह साल को; पर तुम्हें जीता न छोड़ूँगा । हाँ, अगर तुम मेरे पैरों पर गिर कर क़सम खाओ कि अब किसी की सज़ा न कराऊँगा, तो छोड़ दूँ । बोलो मञ्ज़ूर है ?

उदयभानु—तेरी शामत तो नहीं आई है ?

मतई—शामत मेरी नहीं आई, तुम्हारी आई है । बोलो खाते हो क़सम—एक !

उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलीसमैन को बुलाऊँ ?

मतई—दो !

उदयभानु—(गरज कर) हट जा बदमाश सामने से ।

मतई—तीन !

मुँह से 'तीन' का शब्द निकलते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा तुला हुआ हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े । मुँह से केवल इतना ही निकला—हाय ! मार डाला ! मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था; और खून की धार निकल रही थी । नाड़ी का कहीं पता न था । समझ गया कि काम तमाम हो गया । उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुर्ते से सोने के बटन निकाल लिए, उँगली से अँगूठी उतारी और अपनी राह चला गया; मानो कुछ हुआ ही नहीं । हाँ, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीट कर किनारे डाल दी । हाय ! बेचारे घर से क्या सोच कर चले थे; और क्या हो गया, जीवन ! तुझसे ज्यादह असार भी दुनिया में कोई वस्तु है ? क्या वह उस दीपक की भाँति ही क्षणभङ्गुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है ? पानी के उस बुलबुले को देखते हो; लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है ; जीवन में उतना सार भी नहीं । साँस का भरोसा ही क्या ? और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं ! नहीं जानते नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं; पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं ।

तीसरा परिच्छेद

विधवा का विलाप और अनाथों का रोना सुना कर हम पाठकों का दिल न दुखाएँगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ें खाता है। यह कोई नई बात नहीं। हाँ, अगर आप चाहें तो कल्याणी के उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रहा था कि मैं ही अपने प्राणाधार की घातिका हूँ। वे वाक्य, जो क्रोध के आवेश में उसके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को बाणों की भाँति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराह कर प्राण-त्याग किए होते, तो उसे सन्तोष होता कि मैंने उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया। शोकाकुल हृदयों के लिए इससे ज्यादा सान्त्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इस विचार से कितना सन्तोष होता कि मेरे स्वामी मुझ से प्रसन्न गए, अन्तिम समय तक उनके हृदय में मेरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह सन्तोष न था। वह सोचती—हा! मेरी पचीस बरस की तपस्या

निष्फल हो गई। मैं अन्त समय अपने प्राणपति के प्रेम से वञ्चित हो गई। अगर मैं ने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो वह कदापि रात को घर से बाहर न जाते। न जाने उनके मन में क्या-क्या विचार आए हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके; और अपने अपराध को बढ़ा-बढ़ा कर वह आठों पहर कुढ़ती रहती थी। जिन बच्चों पर वह प्राण देती थी, अब उनकी सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से रार मोल लेनी पड़ी। यही मेरे शत्रु हैं। जहाँ आठों पहर कचहरी सी लगी रहती थी, वहाँ अब खाक उड़ती थी। वह मेला ही उठ गया। जब खिलाने वाला ही न रहा, तो खाने वाले कैसे पड़े रहते। धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भाञ्जे-भतीजे विदा हो गए। जिनको दावा था कि हम पानी की जगह खून बहाने वालों में हैं, वह ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिर कर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गई! जिन बच्चों को देख कर प्यार करने को जी चाहता था, उनके चेहरे पर अब मक्खियाँ भिनभिनाती थीं! न जाने वह कान्ति कहाँ चली गई?

शोक का आवेग कम हुआ, तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि; विवाह इस साल रोक दिया जाय, लेकिन कल्याणी ने कहा—इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा मिट्टी में मिल जायगा; और दूसरे साल फिर यही तैयारियाँ करनी पड़ेंगी, जिसकी कोई आशा न थी; विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो

है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफ़ी सामान हो ही चुका है, विलम्ब करने में हानि ही हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शोक-सूचना के साथ यह सन्देशा भी भेज दिया गया! कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अनाथिनी पर दया कीजिए; और डूबती हुई नाव को पार लगाइए! स्वामी जी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएँ थीं; किन्तु ईश्वर को कुछ और ही मञ्जूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ है। कन्या आप की हो चुकी। मैं आप लोगों की सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूँ; लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े, तो मेरी दशा का विचार करके क्षमा कीजिएगा। मुझे विश्वास है कि आप स्वयं इस अनाथिनी की निन्दा न होने देंगे; आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा; बल्कि पुरोहित जी से कहा—आपको कष्ट तो होगा; पर आप स्वयं जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहिएगा कि जितने कम आदमी आएँ, उतना ही अच्छा। यहाँ कोई प्रबन्ध करने वाला नहीं है। पुरोहित मोटेराम यह सन्देशा लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुँचे।

सन्ध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानख़ाने के सामने आराम कुर्सी पर नङ्ग-धिड़ङ्ग लेटे हुए हुक़्क़ा पी रहे थे। बहुत ही स्थूल, ऊँचे क़द के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हबशी अफ़्रीका से पकड़ कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रङ्ग था—काला! चेहरा इतना स्याह था कि

मालूम न होता था कि माथे का अन्त कहाँ है; और सिर का आरम्भ कहाँ। बस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आप को गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पङ्खा झल रहे थे; उस पर भी पसीने का तार बँधा हुआ था। आप आबकारी के विभाग में एक ऊँचे ओहदे पर थे; ५००) वेतन मिलता था, ठेकेदारों से खूब रिशवत लेते थे। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घण्टे दूकान खुली रक्खें; आप को केवल खुश रखना काफ़ी था। सारा क़ानून आप की खुशी थी। इतनी भयङ्कर मूर्ति थी कि चाँदनी रात में उन्हें देख कर सहसा लोग चौंक पड़ते थे—बालक और स्त्रियाँ ही नहीं; पुरुष तक सहम जाते थे। चाँदनी रात इसलिए कहा कि अँधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही न सकता था—श्यामता अन्धकार में विलीन हो जाती थी। केवल आँखों का रङ्ग लाल था। जैसे पक्का मुसलमान पाँच बार नमाज़ पढ़ता है, वैसे आप पाँच बार शराब पीते थे। मुफ्त की शराब तो काज़ी को हलाल है; फिर आप तो शराब के अफ़सर ही थे, जितनी चाहें पिएँ; कोई हाथ पकड़ने वाला न था। जब प्यास लगती शराब पी लेते। जैसे कुछ रङ्गों में परस्पर सहानुभूति है, उसी तरह कुछ रङ्गों में परस्पर विरोध है। लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयङ्कर हो जाती है।

बाबू साहब ने पण्डित जी को देखते ही कुर्सी से उठ कर कहा—अख्वाह! आप हैं। आइए, आइए। धन्य भाग; और कोई है? कहाँ चले गए सब के सब, झगड़ू, गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम; कोई है? क्या सब के सब मर गए? चलो

रामगुलाम, भवानी, छकौड़ी, गुरदीन, झगड़ू ? कोई नहीं बोलता; सब मर गए। दर्जन भर आदमी हैं; पर मौक़े पर एक की भी सूरत नहीं नज़र आती, न जाने सब कहाँ ग़ायब हो जाते हैं। आप के वास्ते कुर्सी लाओ।

बाबू साहब ने ये पाँचों नाम कई बार दुहराए; लेकिन यह।न हुआ कि पङ्खा झलने वाले दोनों आदमियों में से किसी को कुर्सी लाने को भेज देते। तीन-चार मिनिट के बाद एक काना आदमी खाँसता हुआ आकर बोला—सरकार, इतना की नौकरी हमार कीन न होई। कहाँ तलक उधार-बाढ़ी ले-ले खाई। माँगत-माँगत थेथर होय गएन।

भाल०—मत बको, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने को कहा गया, तो रोने लगता है। कहिए पण्डित जी, वहाँ सब कुशल तो है ?

मोटेराम—क्या कुशल कहूँ बाबू जी, अब कुशल कहाँ ? सारा घर मिट्टी में मिल गया !

इतने में कहार ने एक टूटा हुआ चीड़ का सन्दूक़ लाकर रख दिया और बोला—कुर्सी मेच हमार उठाए नाहीं उठत है।

पण्डित जी शरमाते हुए डरते-डरते उस पर बैठे कि कहीं टूट न जाय; और कल्याणी का पत्र बाबू साहब के हाथ में रख दिया।

भाल०—अब और कैसे मिट्टी में मिलेगा। इससे बड़ी और कौन विपत्ति पड़ेगी। बाबू उदयभानुलाल से मेरी पुरानी दोस्ती थी। आदमी नहीं, हीरा था। क्या दिल था, क्या हिम्मत थी,

(आँखें पोंछकर) मेरा तो जैसा दाहिना हाथ ही कट गया। विश्वास मानिए, जब से यह खबर सुनी है, आँखों में अँधेरा सा छा गया है। खाने बैठता हूँ, तो कौर मुँह में नहीं जाता। उनकी सूरत आँखों के सामने खड़ी रहती है। मुँह जूठा करके उठ आता हूँ। किसी काम में दिल ही नहीं लगता। भाई के मरने का रञ्ज भी इससे कम ही होता। आदमी नहीं, हीरा था!

मोटे०—सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस ही नहीं रहा।

भाल०—मैं खूब जानता हूँ पण्डित जी, आप मुझसे क्या कहते हैं। ऐसा आदमी लाख-दो लाख में एक होता है। जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता। दो ही तीन बार की मुलाक़ात मे उनका भक्त हो गया; और मरते दम तक रहूँगा। आप समधिन साहब से कह दीजिएगा, मुझे दिली रञ्ज है।

मोटे०—आप से ऐसी ही आशा थी। आप जैसे सज्जनो के दर्शन दुर्लभ हैं। नहीं तो आज कौन बिना दहेज के पुत्र का विवाह करता है।

भाल०—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूँ। हा! कितनी उदार आत्मा थी? रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर भी परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है, बेहद

बुरा! मेरा बस चले, तो दहेज लेने वालों और दहेज देने वालों दोनों ही को गोली मार दूँ। हाँ साहब, साफ़ गोली मार दूँ; फिर चाहे फाँसी ही क्यों न हो जाय। पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं? अगर आप को लड़के की शादी में दिल खोल कर ख़र्च करने का अरमान है, तो शौक़ से ख़र्च कीजिए; लेकिन जो कुछ कीजिए अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता। मेरा बस चले तो इन पाजियों को गोली मार दूँ!

मोटे०—धन्य हो सरकार, भगवान् ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है। मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त वही रहे; और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख ही दी हैं। बस, अब आप ही उबारें, तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन जायँगे उनकी सेवा-सत्कार हम करेंगे ही; लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गई है सरकार, कोई करने-धरने वाला नहीं है। बस, ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे।

भालचन्द्र एक मिनिट तक आँखें बन्द किए बैठे रहे: फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोले—ईश्वर को मञ्जूर ही न था कि वह लक्ष्मी मेरे घर आती; नहीं तो क्या यह वज्र गिरता? सारे मन्सूबे ख़ाक में मिल गए। फूला न समाता था कि वह शुभ अवसर निकट आ रहा है; पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ और षड्यन्त्र रचा जा रहा है। मरने वाले की याद ही

रुलाने के लिए काफ़ी है। उसे देख कर तो ज़ख़्म और भी हरा हो जायगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूं। इसे गुण समझिए चाहे दोष कि जिससे एक वार मेरी घनिष्ठता हो गई, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो ख़ैर इतना ही है कि उनकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन वह कन्या घर में आ गई, तब तो मेरा ज़िन्दा रहना कठिन हो जायगा। सच मानिए, रोते-रोते मेरी आँखें फूट जायँगी। जानता हूँ, रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया, वह लौट कर नहीं आ सकता। सब्र करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है; लेकिन दिल से मजबूर हूँ। उस अनाथ बालिका को देख कर मेरा कलेजा फट जायगा।

मोटे०—ऐसा न कहिए सरकार! वकील साहब नहीं हैं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं; लोग समझेंगे वकील साहब के देहान्त हो जाने के कारण आप अपने वचन से फिर गए। इसमें आपकी बदनामी है। चित्त को समझाइए, और हँसी-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिए। हाथी मरे भी तो नौ लाख का। लाख विपत्ति पड़ी है; लेकिन मालकिन आप लोगों की सेवा-सत्कार करने में कोई बात उठा न रक्खेंगी।

बाबू साहब समझ गए कि पण्डित मोटेराम कोरे पोथी के ही पण्डित नहीं; वरन् व्यवहार-नीति में भी चतुर हैं। बोले—पण्डित जी,

हलफ़ से कहता हूँ, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है; लेकिन जब ईश्वर को मञ्जूर ही नहीं है; तो मेरा क्या बस है? यह मृत्यु एक प्रकार की अमङ्गल-सूचना है, जो विधाता की ओर से हमें मिली है। यह किसी आने वाली मुसीबत की आकाशवाणी है। विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है, यह विवाह मङ्गलमय न होगा। ऐसी दशा में आप ही सोचिए, यह संयोग कहाँ तक उचित है। आप तो विद्वान् आदमी हैं। सोचिए, जिस काम का आरम्भ ही अमङ्गल से हो, उसका अन्त मङ्गलमय हो सकता है? नहीं, जान-बूझ कर मक्खी नहीं निगली जाती। समधिन साहिबा से समझा कर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा-पालन करने को तैयार हूँ; लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वश होकर मैं अपने परम मित्र की सन्तान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पण्डित जी को निरुत्तर कर दिया। वादी ने वह तीर छोड़ा था, जिसकी उनके पास कोई काट न थी। शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया था; और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया। अरे! तुम सब फिर ग़ायब हो गए; झगड़ू, छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम! एक भी नहीं बोलता। सबके सब मर गए। पण्डित जी के वास्ते पानी-वानी की भी फ़िक्र है? न जाने इन सबों को कोई कहाँ तक समझाए। अक़्ल छू तक नहीं गई।

देख रहे हैं कि एक महाशय दूर से थके-माँदे चले आ रहे हैं; पर किसी को जरा भी परवाह नहीं। लाओ पानी-वानी रक्खो। पण्डित जी, आपके लिए शर्बत बनवाऊँ या फलहारी मिठाई मँगवा दूँ।

मोटेराम जी मिठाइयों के विषय में किसी प्रकार का बन्धन न स्वीकार करते थे। उनका सिद्धान्त था कि घृत से सभी वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे; पर शर्बत से उन्हें रुचि न थी। पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था। सकुचाते हुए बोले—शर्बत पीने की तो मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूँगा।

भाल०—फलाहारी न?

मोटे—इसका मुझे कोई विचार नहीं।

भाल०—है तो यही बात। छूतछात सब ढकोसला है। मैं स्वयं नहीं मानता। अरे, अभी तक कोई नहीं आया। छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम कोई तो बोले।

अब की भी वही बूढ़ा कहार खाँसता हुआ आकर खड़ा हो गया, और बोला—सरकार, मोर तलब दे दीन जाय। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहाँ लो दौरी, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लगत हैं।

भाल०—काम कुछ करो या न करो; पर तलब पहले चाहिए। दिन भर पड़े-पड़े खाँसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ ही रही है। जाकर बाजार से एक आने की कोई ताजी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा!

कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गए; और स्त्री से बोले—वहाँ से एक पण्डित जी आए हैं। यह ख़त लाए हैं, ज़रा पढ़ो तो।

पत्नी जी का नाम रँगीलीबाई था। गोरे रङ्ग की प्रसन्नमुख महिला थीं। रूप और यौवन उनसे बिदा हो रहे थे; पर किसी प्रेमी मित्र की भाँति मचल-मचल कर तीस साल तक जिसके गले से लगे रहे, उसे छोड़ते न बनता था।

रँगीलीबाई बैठी पान लगा रही थीं। बोलीं—कह दिया न कि हमें वहाँ ब्याह करना मञ्जूर नहीं?

भाल०—हाँ, कह तो दिया; पर मारे सङ्कोच के मुँह से शब्द न निकलता था। झूठ-मूठ का हीला करना पड़ा।

रँगीली—साफ़ बात कहने में सङ्कोच क्या। हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हज़ार नक़द मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों न करूँ? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़ी ही है। वकील साहब जीते होते, तो शरमाते-शरमाते भी पन्द्रह-बीस हज़ार दे मरते। अब वहाँ क्या रक्खा है?

भाल०—एक दफ़ा ज़बान देकर निकल जाना अच्छी बात नहीं। कोई मुँह पर कुछ न कहे; पर बदनामी हुए बिना नहीं रहती। मगर तुम्हारे ज़िद से मजबूर हूँ।

रँगीलीबाई ने पान खाकर ख़त खोला और पढ़ने लगीं। हिन्दी का अभ्यास बाबू साहब को तो बिलकुल न था, और यद्यपि रँगीलीबाई भी शायद ही कभी किताब पढ़ती हों; पर ख़त-वत

पढ़ लेती थीं। पहली ही पाँती पढ़ कर उनकी आँखें सजल हो गईं; और पत्र समाप्त हुआ तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा हुआ था। एक-एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रँगीलीबाई की कठोरता पत्थर की नहीं, लाख की थी—जो एक ही आँच से पिघल जाता है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उसके स्वार्थ-मण्डित हृदय को पिघला दिया। रुँधे हुए कण्ठ से बोली—अभी ब्राह्मण बैठा है न ?

भालचन्द्र पत्नी जी के आँसुओं को देख-देख कर सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि मैंने नाहक़ यह ख़त इसे दिखाया। इसकी जरूरत ही क्या थी ? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी न हुई थी। सन्दिग्ध भाव से बोले—शायद बैठा हो, मैं ने तो जाने को कह दिया था। रँगीली ने खिड़की से झाँक कर देखा। पण्डित मोटेराम जी बगुले की तरह ध्यान लगाए बाज़ार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा से व्यग्र होकर कभी यह पहलू बदलते कभी वह पहलू। "एक आने की मिठाई" ने आशा की कमर तो पहले ही तोड़ दी थी। उसमें भी यह विलम्ब दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देख कर रँगीलीबाई बोली—है; है, अभी है, जाकर कह दो; हम विवाह करेंगे, ज़रूर करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भाल०—तुम कभी-कभी बच्चों की सी बातें करने लगती हो। अभी उसे कह आया हूँ कि मुझे विवाह करना मञ्जूर नहीं। एक लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधनी पड़ी। अब जाकर यह सन्देशा कहूँगा,

तो वह अपने दिल में क्या कहेगा, ज़रा सोचो तो। यह शादी-विवाह का मामला है। लड़कों का खेल नहीं है कि अभी एक बात तय की; और अभी पलट गए। भले आदमी की बात न हुई, दिल्लगी हुई!

रँगीली—अच्छा तुम अपने मुँह से न कहो, उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूँगी कि तुम्हारी बात भी रह जाय, और मेरी भी। इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है!

भाल०—तुम अपने सिवा सारी दुनिया को नादान समझती हो। तुम कहो या मैं कहूँ, बात एक ही है। जो बात तय हो गई, वह हो गई; अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता। तुम्हीं तो बार-बार कहती थीं कि मैं वहाँ न करूँगी। तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर रङ्ग बदलती हो। यह तो मेरी छाती पर मूँग दलना है। आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए।

रँगीली—तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गई है। तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रक्खी है; और अपनी ग़रीबी का ढोंग रच कर काम निकालना चाहती है। एक ही छटी हुई औरत है। तुमने जो कहा, वह मैंने मान लिया। भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और सङ्कोच है। बुरा करके भलाई करने में कोई सङ्कोच नहीं। अगर तुम हाँ कर आए होते; और मैं नहीं करने को

कहती, तो तुम्हारा सङ्कोच उचित होता। नहीं करने के बाद हाँ करने में तो और अपना बड़प्पन है।

भाल०—तुम्हें बड़प्पन मालूम होता हो, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है। फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकीलाइन के विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी। क्या यह पत्र देख कर ? तुम जैसे ख़ुद सरल हो, वैसे ही दूसरों को भी सरल समझती हो।

रँगीली—इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती। बनावट की बात दिल में चुभती नहीं। उसमें बनावट की गन्ध अवश्य रहती है।

भाल०—बनावट की बात तो ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिलकुल फीकी मालूम होती है। यह क़िस्से-कहानियाँ लिखने वाले, जिनकी किताबें पढ़-पढ़कर तुम घण्टों रोती हो, क्या सच्ची बातें लिखते हैं ? सरासर झूठ का तूमार बाँधते हैं, यह भी एक कला है।

रँगीली—क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो, दाई से पेट छिपाते हो ? मैं तुम्हारी बातें मान जाती हूँ, तो तुम समझते हो इसे चकमा दिया; पर मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूँ। तुम अपना ऐब मेरे सिर मँढ़कर ख़ुद बेदाग़ बनना चाहते हो। बोलो, कुछ झूठ कहती हूँ। जब वकील साहब जीते थे, तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह ख़ुद ही जितना उचित समझेंगे दे देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और

ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब जो वकील साहब का देहान्त हो गया, तो तरह-तरह के हीले-हवाले करने लगे, यह भलमन्सी नहीं, छोटापन है। इसका इलज़ाम भी तुम्हारे ही सिर है। मैं अब शादी-ब्याह के नगीच न जाऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफ़ाई से करो; बुरा हो या अच्छा। 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और' वाली नीति पर चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो, अब भी वहाँ शादी करते हो या नहीं?

भाल०—जब मैं बेईमान, दग़ाबाज़ और झूठा ठहरा, तो मुझ से पूछना ही क्या। मगर खूब पहचानती हो आदमियों को! क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझ-बूझ की बलैयाँ ले ले।

रँगीली—हो बड़े हयादार, अब भी नहीं शर्माते। ईमान से कहो, मैं ने बात ताड़ ली कि नहीं?

भाल०—अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं, जो मर्दों को पहचानती हैं। अब तक मैं भी यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है; पर आज वह विश्वास उठ गया, और महात्माओं ने औरतों के विषय में जो तत्त्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।

रँगीली—ज़रा आइने में सूरत तो देख आओ, तुम्हें मेरी क़सम है! ज़रा देख लो, कितना झेंपे हुए हो।

भाल०—सच कहना, कितना झेंपा हुआ हूँ।

रँगीली—उतना ही, जितना कोई भलामानस चोर चोरी खुल जाने पर झेंपता है।

भाल०—खैर, मैं झेंपा सही: पर शादी वहाँ न होगी।

रँगीली—मेरी बला से, जहाँ चाहो करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते?

भाल०—अच्छी बात है, उसी पर फ़ैसला रहा।

रँगीली—ज़रा भी इशारा न करना!

भाल०—अजी मैं उसकी तरफ़ ताकूँगा भी नहीं।

संयोग से ठीक इसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुँचा। ऐसे सुन्दर, सुडौल, बलिष्ठ युवक कॉलेजों में बहुत कम देखने में आते हैं। बिलकुल माँ को पड़ा था, वही गोरा-चिट्टा रङ्ग था, वही पतले-पतले गुलाब की पत्ती के से ओंठ, वही चौड़ा माथा, वही-बड़ी-बड़ी आँखें, डील-डौल बाप का था। ऊँचा कोट, ब्रीचेज़, टाई, बूट, हैट उस पर खूब खिल रहे थे। हाथ में एक हॉकी-स्टिक थी। चाल में जवानी का ग़ुरूर था, आँखों में आत्म-गौरव! रँगीली ने कहा—आज बड़ी देर लगाई तुमने! यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह ख़त आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ़-साफ़ बतला दो, अभी सबेरा है। तुम्हें वहाँ शादी करनी मञ्जूर है या नहीं?

भुवन—करनी तो चाहिए अम्माँ; पर मैं करूँगा नहीं!

रँगीली—क्यों?

भुवन—कहीं ऐसी शादी करवाइए कि ख़ूब रुपये मिलें। और सही, एक लाख का तो डौल हो। वहाँ अब क्या रक्खा

है। वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा !!

रँगीली—तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म नहीं आती ?

भुवन—इसमें शर्म की कौन सी बात है। रुपये किसे काटते हैं। लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊँगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम से कम पाँच साल तक रुपये की सूरत नज़र न आएगी। फिर सौ दो सौ रुपये महीने कमाने लगूँगा। पाँच-छः तक पहुँचते-पहुँचते उम्र के तीन भाग बीत जाँएगे। रुपये जमा करने की नौबत ही न आएगी। दुनिया का कुछ मज़ा न उठा सकूँगा। किसी धनी की लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नक़द हो। या फिर कोई ऐसी जायदाद वाली बेवा मिले, जिसकी एक ही लड़की हो।

रँगीली—चाहे औरत कैसी ही मिले ?

भुवन—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे तो वह गालियाँ भी सुनाए तो चूँ न करूँ। दुधारु गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है ?

बाबू साहब ने प्रशंसा-सूचक भाव से कहा—हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है; और दुख है कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला, लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने ही फटे हालों जायँ, फिर भी अच्छी खासी बारात हो जायगी। वहाँ भोजन का ठिकाना भी नहीं। सिवा इसके कि लोग हँसें; और कोई नतीजा न निकलेगा।

रँगीली—तुम बाप-पूत दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस ग़रीब लड़की के गले पर छुरी फेरना चाहते हो !

भुवन—जो ग़रीब है, उसे ग़रीबों ही के यहाँ सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़ कर......।

रँगीली—चुप भी रह, आया है वहाँ से हैसियत ! लेकर तुम कहाँ के ऐसे धन्ना-सेठ हो। कोई आदमी द्वार पर आ जाय, तो एक लोटे पानी को तरस जाय। बड़ी हैसियत वाले बने हैं।

यह कह कर रँगीली वहाँ से उठ कर रसोई का प्रबन्ध करने चली गई। भुवनमोहन मुस्कुराता हुआ अपने कमरे में चला गया; और बाबू साहब मूछों पर ताव देते हुए बाहर आए कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें; पर उनका कहीं पता न था।

मोटेराम जी कुछ देर तक तो कहार की राह देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे न बैठा गया। सोचा, यहाँ बैठे-बैठे काम न चलेगा; कुछ उद्योग करना चाहिए। भाग्य के भरोसे यहाँ आड़ी दिए बैठे रहे, तो भूखों मर जायँगे; यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की। चुपके से लकड़ी उठाई; और जिधर वह कहार गया था, उसी तरफ़ चले। बाज़ार थोड़ी ही दूर पर था, एक क्षण में जा पहुँचे। देखा तो बुड्ढा एक हलवाई की दुकान पर बैठा चिलम पी रहा है ! उसे देखते ही आपने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से कहा—अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महरा, सरकार वहाँ बैठे बिगड़ रहे हैं कि जाकर सो गया या कहीं ताड़ी पीने लगा। मैं ने कहा—सरकार, यह बात नहीं, बुड्ढा आदमी है; आते ही

आने तो आएगा। बड़े विचित्र जीव हैं। न जाने इनके यहाँ कैसे नौकर टिकते हैं।

कहार—मुझे जोड़ के आज तक तो दूसरा टिका नहीं; और न टिकेगा। साल भर से तलब नहीं मिली। किसी की तलब नहीं देते। जहाँ किसी ने तलब माँगी; और लगे उसे डाटने। बेचारा नौकरी छोड़ कर भाग जाता है। वह दोनों आदमी जो पङ्खा झल रहे थे, सरकारी नौकर हैं। सरकार से दो अर्दली मिले हैं न। इसी से पड़े हुए हैं। मैं भी सोचता हूँ जैसा तेरा ताना-बाना वैसी मेरी भरनी; दस साल कट गए हैं, साल-दो साल और इसी तरह कट जायँगे।

मोटेराम—तो तुम्हीं अकेले हो ! नाम तो कई कहारों का लेते हैं।

कहार—वह सब इन दो-तीन महीनो के अन्दर आए और छोड़-छोड़ चले गए। यह अपना रोब जमाने को अभी तक उनका नाम जपा करते हैं। कहीं नौकरी दिलाइएगा, चलूँ ?

मोटेराम—अजी बहुत नौकरी हैं। कहार तो आजकल ढूँढ़े नहीं मिलते। तुम तो पुराने आदमी हो, तुम्हारे लिए नौकरी की क्या कमी। है वहाँ कोई ताज़ी चीज़ ? मुझसे कहने लगे खिचड़ी बनाइएगा या बाटी लगाइएगा ? मैं ने कह दिया—सरकार, बुड्ढा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनवाने में कष्ट होगा, मैं कुछ बाजार ही में खा लूँगा। इसकी आप चिन्ता न करें। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा। बोलो साह जी, कुछ

तर माल तैयार है ? लड्डू तो ताज़े मालूम होते हैं। तोल दो एक सेर भर; आ जाऊँ वहीं ऊपर न ?

यह कह कर मोटेराम जी हलवाई की दुकान पर जा बैठे; और तर माल चखने लगे। खूब छक कर खाया। ढाई-तीन सेर चट कर गए। खाते जाते थे; और हलवाई की तारीफ़ करते जाते थे। साह जी, तुम्हारी दूकान का जैसा नाम सुना था, वैसा ही माल भी पाया। बनारस वाले ऐसे रसगुल्ले नहीं बना पाते। कलाकन्द अच्छी बनाते हैं। पर तुम्हारी उनसे बुरी नहीं। माल डालने से अच्छी चीज़ नहीं बन जाती, विद्या चाहिए।

हलवाई—कुछ और लीजिए महाराज ! थोड़ी सी रबड़ी मेरी तरफ़ से लीजिए।

मोटेराम—इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव भर !

हलवाई—पाव भर क्या लीजिएगा। चीज़ अच्छी है, आध सेर तो लीजिए।

ख़ूब इच्छापूर्ण भोजन करके पण्डित जी ने थोड़ी देर बाज़ार की सैर की, और नौ बजते-बजते मकान पर आए। यहाँ सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक लालटेन जल रही थी। आपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गए।

सवेरे अपने नियमानुसार कोई आठ बजे उठे तो देखा कि बाबू साहब टहल रहे हैं। इन्हें जगा देख कर वह पालागन कर बोले—महाराज, आप रात कहाँ चले गए ? मैं बड़ी रात तक आपकी राह देखता रहा। भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रक्खा रहा। जब

आप न आए, तो रखवा दिया गया। आपने कुछ भोजन किया था या नहीं ?

मोटे०—हलवाई की दूकान से कुछ खा आया था।

भाल०—अजी पूरी-मिठाई में वह आनन्द कहाँ, जो बाटी और दाल में है। दस-बारह आने खर्च हुए होंगे; और फिर भी पेट न भरा होगा। आप मेरे मेहमान हैं, जितने पैसे लगे हों ले लीजिएगा।

मोटे०—आप ही के हलवाई की दूकान पर खा आया था, वह जो नुक्कड़ पर बैठता है।

भाल०—कितने पैसे देने पड़े ?

मोटे०—आपके हिसाब में लिखा दिए।

भाल०—जितनी मिठाइयाँ ली हो, मुझे बता दीजिए; नहीं पीछे से बईमानी करने लगेगा। एक ही ठग है।

मोटे०—कोई ढाई सेर मिठाई थी; और आध सेर रबड़ी !

बाबू साहब ने विस्फरित नेत्रों से पण्डित जी को देखा; मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर तो कभी यहाँ महीने भर का टोटल भी न होता था; और यह महाशय एक ही बार कोई चार रुपये का माल उड़ा गए। अगर एक आध दिन और रह गए, तो बधिया ही बैठ जायगी। पेट है या शैतान की क़ब्र। तीन सेर ! कुछ ठिकाना है। एक उद्विग्न दशा में दौड़े हुए अन्दर गए; और रँगीली से बोले—कुछ सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गए। तीन सेर पक्की तोल। रँगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जायगा। आदमी है या बैल ?

भाल०—तीन सेर तो वह अपने मुँह से कह रहा है। चार सेर से कम न खाया होगा, पक्की तोल !

रँगीली—पेट में शनीचर है क्या ?

भाल०—आज और रह गया, तो छः सेर पर हाथ फेरेगा।

रँगीली—तो आज रहे ही क्यों, खत का जवाब जो देना हो, देकर विदा करो। अगर रहे, तो साफ़ कह देना कि हमारे यहाँ मिठाई मुफ़्त नहीं आती। खिचड़ी बनाना हो बनाएँ, नहीं अपनी राह लें। जिन्हे ऐसे पेटुओं को खिलाने से मुक्ति मिलती हो, वे खिलाएँ; हमें ऐसी मुक्ति न चाहिए।

मगर पण्डित जी विदा होने को तैयार बैठे थे। इसलिए बाबू साहब को कौशल से काम लेने की जरूरत न पड़ी।

पूछा—क्या तैयारी कर दी महाराज ?

मोटे०—हाँ सरकार, अब चलूँगा ? नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न ?

भाल०—भला आज तो और रहिए !

यह कहते-कहते बाबू जी को भय हुआ कि कहीं यह महाराज सचमुच न रह जाएँ, इसलिए उस वाक्य को यों पूरा किया—हाँ, वहाँ लोग आप का इन्तजार कर रहे होंगे।

मोटे०—एक-दो दिन की तो बात न थी; और विचार भी यही था कि त्रिवेणी का स्नान करूँगा; पर बुरा न मानिए तो कहूँ—आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं है। हमारे यजमान हैं, जो हमारा मुँह जोहते रहते हैं कि पण्डित जी कोई आज्ञा दें, तो उसका पालन करें। हम उनके द्वार पर पहुँच जाते

हैं, तो वह अपना धन्य भाग मानते हैं; और सारा घर—छोटे से बड़े तक हमारी सेवा-सत्कार में मग्न हो जाता है। जहाँ अपना आदर नहीं, वहाँ एक क्षण भी ठहरना हमें असह्य है। जहाँ ब्राह्मण का आदर नहीं, वहाँ कल्याण नहीं हो सकता।

भाल०—महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटे०—अपराध नहीं हुआ! और अपराध किसे कहते हैं? अभी आप ही ने घर में जाकर कहा कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गए। पक्की तोल! आपने अभी खाने वाले देखे कहाँ! एक बार खिलाइए तो आँखें खुल जायँ। ऐसे-ऐसे महान् पुरुष पड़े हुए हैं, जो पँसेरी भर मिठाई खा जाएँ; और डकार तक न लें। एक मिठाई खाने के लिए हमारी चिरौरी की जाती है, रुपये दिए जाते हैं। हम भिक्षुक नहीं हैं, जो आपके द्वार पर पड़े रहें। आपका नाम सुन कर आए थे; यह न जानते थे कि यहाँ मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे। जाइए, भगवान् आपका कल्याण करें!

बाबू साहब ऐसा झेंपे कि मुँह से बात न निकली। जिन्दगी भर में उन पर कभी ऐसी फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनाईं—आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे ही महाशय की बात थी; लेकिन पण्डित का क्रोध शान्त न हुआ। वह सब कुछ सह सकते थे; पर अपने पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरतों को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अप्रिय पुरुषों को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मनाते तो थे; पर यह धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जायँ। उनकी कृपणता का परदा

खुल गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस परदे को ढाँकना जरूरी था। अपनी कृपणता को छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रक्खी थी; पर होने वाली बात होकर रही। पछता रहे थे कि कहाँ से घर में इसकी बात कहने गया, और कहा भी तो उच्च स्वर में। यह दुष्ट भी कान लगाए सुनता रहा; किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था? न जाने किस मनहूस की सूरत देखी थी कि यह विपत्ति गले पड़ी। अगर इस वक्त यहाँ से रुष्ट होकर चला गया, तो वहाँ जाकर बदनाम करेगा; और मेरा सारा कौशल खुल जायगा। अब तो इसका मुँह बन्द कर देना ही पड़ेगा।

यह सोच-विचार करते हुए वह घर में जाकर रँगीलीबाई से बोले—इस दुष्ट ने हमारी तुम्हारी बातें सुन लीं। रूठ कर चला जा रहा है।

रँगीली—जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है, तो धीरे से क्यों न बोले?

भाल०—विपत्ति आती है तो अकेले नहीं आती। यह क्या जानता था कि वह द्वार पर कान लगाए खड़ा है?

रँगीली—न जाने किस का मुँह देखा था?

भाल०—वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था। जानता तो उधर ताकता ही नहीं। अब तो इसे कुछ दे दिला कर राजी करना पड़ेगा।

रँगीली—ऊँह, जाने भी दो। जब तुम्हें वहाँ विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है? जो चाहे समझे, जो चाहे कहे।

भाल०—यों जान न बचेगी। लाओ दस रुपये विदाई के

बहाने दे दू। ईश्वर फिर इस मनहूस की सूरत न दिखाए। रँगीली ने बहुत अछताते-पछताते दस रुपये निकाले, और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पण्डित जी के चरणों पर रख दिया। पण्डित जी ने दिल में कहा—धत्तेरे मक्खी चूस की! ऐसा रगड़ा कि याद ही करोगे। तुम समझते होगे कि दस रुपये देकर इसे उल्लू बना लूँगा। इस फेर में न रहना। यहाँ तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। रुपये जेब में रख लिए, और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

बाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है, या परदा ढक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े !!

चौथा परिच्छेद

कल्याणी के सामने अब एक विषम समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के वाद उसे अपनी दुरावस्था का यह पहला और वहुत ही कड़ुवा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे वड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान वेटी सिर पर सवार हो? लड़के नङ्गे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-वर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है, झोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं विठाई जा सकती। कल्याणी को भालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुँह में कालिख लगाऊँ, सिर के वाल नोच लूँ। कहूँ, तू अपनी वात से फिर गया, तू अपने बाप का वेटा नहीं। पण्डित मोटेराम ने उनकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

वह इसी क्रोध में भरी वैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आई, और बोली—कै दिन में वारात आएगी; अम्माँ! पण्डित जी तो आ गए।

कल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या ?

कृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आएगी। क्या न आएगी अम्माँ ?

कल्याणी—एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है ?

कृष्णा—सब के घर तो बारात आ रही है, हमारे यहाँ क्यों नहीं आती ?

कल्याणी—तेरे यहाँ जो बारात लाने वाला था, उसके घर में आग लग गई।

कृष्णा—सच अम्माँ ? तब तो सारा घर जल गया होगा। कहाँ रहते होंगे ? बहिन कहाँ जाकर रहेगी ?

कल्याणी—अरे पगली, तू तो बात ही नहीं समझती। आग नहीं लगी। वह हमारे यहाँ ब्याह न करेगा।

कृष्णा—यह क्यों अम्माँ ? पहले तो वहाँ ठीक हो गया था न ?

कल्याणी—बहुत से रुपये माँगता है। मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं।

कृष्णा—क्या बड़े लालची हैं अम्माँ ?

कल्याणी—लालची नहीं तो और क्या है ! पूरा क़साई, निर्दई, दग़ाबाज़ !

कृष्णा—तब तो अम्माँ बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहिन का ब्याह नहीं हुआ। बहिन उनके साथ कैसे रहती। यह तो ख़ुश होने की बात है अम्माँ, तुम रञ्ज क्यों करती हो ?

कल्याणी ने पुत्री को स्नेहमय दृष्टि से देखा। इसका कथन कितना सत्य है। भोले शब्दों में समस्या का कितना मार्मिक निरूपण है। सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से सम्बन्ध नहीं हुआ, रञ्ज की कोई बात नहीं। ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती? अपने नसीबों को रोती। ज़रा सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता; ज़रा खाना ज्यादा पक जाता, तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती। लड़का भी ऐसा ही लोभी है। बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं तो बेचारी को उम्र भर रोना पड़ता। कल्याणी यहाँ से उठी, तो उसका हृदय हलका हो गया था।

लेकिन विवाह तो करना ही था, और हो सके तो इसी साल; नहीं तो दूसरे साल फिर नए सिरे से तैयारियाँ करनी पड़ेंगी। अब अच्छे घर की जरूरत न थी, अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर-वर कहाँ मिलता है; अब तो किसी भाँति सिर का बोझ उतारना था, किसी भाँति लड़की को पार लगाना था—उसे कुएँ में झोंकना था। वह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीना है, तो हुआ करे; दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं। दहेज हो तो सारे दोष, गुण हैं। प्राणी का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है। कितनी विषम भाग्य-लीला है?

कल्याणी का दोष कुछ कम न था। अबला और विधवा होना ही उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता। उसे अपने लड़के

अपनी लड़कियों से कहीं प्यारे थे। लड़के हल के बैल हैं, भूसे-खली पर पहला हक़ उनका है, उनके खाने से जो बचे वह गायों का! मकान था, कुछ नक़द था, कई हज़ार के गहने थे; लेकिन उसे अभी दो लड़कों का पालन-पोषण करना था, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था, एक कन्या और भी चार-पाँच साल में विवाह करने के योग्य हो जायगी। इसलिए वह कोई बड़ी रक़म दहेज में न दे सकती थी। आख़िर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए। वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।

पण्डित मोटेराम को लखनऊ से लौटे पन्द्रह दिन बीत चुके थे। लौटने के बाद दूसरे ही दिन से वह वर की खोज में निकले थे। उन्होंने प्रण किया था, मैं इन लखनऊ वालों को दिखा दूँगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे ऐसे और कितने पड़े हुए हैं। कल्याणी रोज़ दिन गिना करती थी। आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया; और क़लम दावात लेकर बैठी ही थी कि पण्डित मोटेराम ने पदार्पण किया।

कल्याणी—आइए पण्डित जी, मैं तो आपको ख़त लिखने जा रही थी। कब लौटे?

मोटेराम—लौटा तो प्रातःकाल ही था; पर उसी समय एक सेठ के यहाँ से निमन्त्रण आ गया। कई दिन से तर माल न मिले थे। मैंने कहा कि लगे हाथ यह काम भी निपटाता चलूँ। अभी उधर ही से लौटा आ रहा हूँ, कोई पाँच सौ ब्राह्मणों की पङ्गत थी।

कल्याणी—कुछ कार्य भी सिद्ध हुआ, या रास्ता ही नापना पड़ा ?

मोटे०—कार्य क्यों न सिद्ध होता, भला यह भी कोई बात है ? पाँच जगह बातचीत कर आया हूँ। पाँचों की नक़ल लाया हूँ। उसमें से आप जिसे चाहें पसन्द करें। यह देखिए, इस लड़के का बाप डाक के सेगे में १००) महीने का नौकर है। लड़का अभी कॉलेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी ही का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है। २०००) में बात तय हो जायगी। माँगते तो वह तीन हज़ार हैं।

कल्याणी—लड़के के और भी भाई हैं ?

मोटे०—नहीं, मगर तीन बहिनें हैं; और तीनों क्वारी ! माता जीवित है। अच्छा, अब दूसरी नक़ल देखिए। यह लड़का रेल के सेगे में ५०) महीना पाता है। माँ-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान्, सुशील और शरीर से खूब हृष्ट-पुष्ट, कसरती जवान है। मगर ख़ानदान अच्छा नहीं—कोई कहता है, माँ नाइन थी, कोई कहता है ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख़्तार थे। घर पर थोड़ी सी ज़मींदारी है; मगर उस पर कई हज़ार का क़र्ज़ा है। यहाँ कुछ लेना-देना न पड़ेगा। उम्र कोई बीस साल होगी।

कल्याणी—ख़ानदान में दाग़ न होता, तो मञ्ज़ूर कर लेती। देख कर तो मक्खी नहीं निगली जाती।

मोटे०—तीसरी नक़ल देखिए। एक ज़मींदार का लड़का है। कोई एक हज़ार सालाना नफ़ा है। कुछ खेती-बारी भी होती है। लड़का पढ़ा-लिखा तो थोड़ा ही है; पर कचहरी अदालत के काम में चतुर है। दुहाजू है। पहली स्त्री को मरे दो साल हुए। उससे कोई सन्तान नहीं है; लेकिन रहन-सहन मोटा है। पीसना-कूटना घर ही में होता है।

कल्याणी—कुछ दहेज भी माँगते हैं?

मोटेराम—इसकी कुछ न पूछिए। चार हज़ार सुनाते हैं। अच्छा, यह चौथी नक़ल देखिए। लड़का वकील है, उम्र कोई पैंतीस साल होगी। तीन-चार सौ की आमदनी है। पहली स्त्री मर चुकी है। उससे तीन लड़के भी हैं। अपना घर बनवाया है। कुछ जायदाद भी ख़रीदी है। यहाँ भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है।

कल्याणी—ख़ानदान कैसा है?

मोटे०—बहुत ही उत्तम, पुराने रईस हैं। अच्छा, यह पाँचवीं नक़ल देखिए। बाप का छापाख़ाना है। लड़का पढ़ा तो बी० ए० तक है, पर उसी छापेख़ाने में काम करता है। उम्र अठारह साल होगी। घर में प्रेस के सिवाय कोई जायदाद नहीं है; मगर किसी का क़र्ज़ा सिर पर नहीं। ख़ानदान न बहुत अच्छा है, न बुरा। लड़का बहुत सुन्दर और सच्चरित्र है। मगर एक हज़ार से कम में मामला तय न होगा, माँगते तो वह तीन-हज़ार हैं। अब बताइए आप कौन सा वर पसन्द करती हैं।

कल्याणी—आपको सबों में कौन पसन्द है?

मोटे०—मुझे तो दो वर पसन्द हैं। एक वह जो रेलवई में है, और दूसरा यह जो छापेख़ाने में काम करता है।

कल्याणी—मगर पहले के तो ख़ानदान में आप दोष बताते हैं।

मोटे०—हाँ, यह दोष तो है। तो छापेख़ाने वाले ही को रहने दीजिए।

कल्याणी—यहाँ एक हज़ार देने को कहाँ से आएगा? एक हज़ार तो आप का अनुमान है, शायद वह और भी मुँह फैलाए। आप तो घर की दशा देख ही रहे हैं, भोजन मिलता जाय, यही ग़नीमत है। रुपये कहाँ से आएँगे। ज़मींदार साहब चार हज़ार सुनाते हैं, डाक बाबू भी दो हज़ार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। बस, वकील साहब ही बच रहते हैं; पैंतीस साल की उम्र भी कुछ ऐसी ज़्यादा नहीं, इन्हीं को क्यों न रखिए।

मोटेराम—आप ख़ूब सोच-विचार लो, मैं तो आप की मर्ज़ी का तावेदार हूँ। जहाँ कहिएगा, वहाँ जाकर टीका कर आऊँगा। मगर हज़ार डेढ़-हज़ार का मुँह न देखिए, छापेख़ाने वाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जावेगा। जैसी यह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

कल्याणी—पसन्द तो मुझे भी यही है; महाराज! पर रुपये किसके घर से आएँ? कौन देने वाला है? है कोई ऐसा दानी? खाने

वाले तो खा-पीकर चम्पत हुए। अब किसी की सूरत भी नहीं दिखाई देती ; बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊँ। सन्तान किसको प्यारी नहीं होती ? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता; पर जब अपना क़ाबू भी हो। आप ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। आयु कुछ अधिक है ; लेकिन मरना-जीना विधि के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है , तो जहाँ जायगी सुखी रहेगी ; दुख भोगना है, तो जहाँ जायगी दुख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ-मुहूर्त देखकर टीका कर आएँ !!

पाँचवाँ परिच्छेद

निर्मला का विवाह हो गया। ससुराल आ गई। वकील साहब का नाम था मुन्शी तोताराम। साँवले रङ्ग के मोटे-ताज़े आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिए थे। व्यायाम करने का उन्हें अवकाश न मिलता था। यहाँ तक कि कभी कहीं घूमने भी न जाते, इसलिए तोंद निकल आई थी। देह के स्थूल होते हुए भी आए दिन कोई न कोई शिकायत होती रहती! मन्दाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था। अतएव बहुत फूँक-फूँक कर क़दम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मन्साराम सोलह वर्ष का था, मँझला जियाराम बारह और छोटा सियाराम सात वर्ष का। तीनों अङ्गरेज़ी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहिन के सिवा कोई औरत न थी।

वही घर की मालिकिन थीं। उनका नाम था रुक्मिणी; और अवस्था पचास से ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहीं रहती थीं।

तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करनी चाहते थे। यद्यपि बहुत ही मितव्ययी पुरुष थे; पर निर्मला के लिए कोई न कोई तोहफ़ा रोज़ लाया करते। मौक़े पर धन की परवाह न करते थे। ख़ुद कभी नाश्ता न करते थे, लड़के के लिए थोड़ा-थोड़ा दूध आता था; पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयाँ—किसी चीज़ की कमी न थी। अपनी ज़िन्दगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गए थे; पर अब छुट्टियों में निर्मला को सिनेमा, सरकस, थियेटर दिखाने ले जाते। अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा सा हिस्सा उसके साथ बैठ कर ग्रामोफ़ोन बजाने में भी व्यतीत किया करते थे।

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने-बोलने में सङ्कोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुका कर, देह चुरा कर, निकलती थी; अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी!

वकील साहब को उनके दम्पति-विज्ञान ने सिखाया था कि

युवती के सामने खूब प्रेम की बातें करनी चाहिए—दिल निकाल कर रख देना चाहिए। यही उसके वशीकरण का मुख्य मन्त्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कोई कसर न रखते थे; लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुन कर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकल कर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थीं! उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, धोखा था; और था शुष्क, नीरस शब्दाडम्बर! उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता; बुरा लगता था केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहाँ देखने वाली आँखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन करने के योग्य ही न समझती थी। कली प्रभात-समीर ही के स्पर्श से खिलती है। दोनों में समान सारस्य है। निर्मला के लिए वह प्रभात-समीर कहाँ थी?

पहला महीना गुजरते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खज़ाञ्ची बना लिया। कचहरी से आकर दिन भर की कमाई उसे दे देते। उनका ख्याल था कि निर्मला इन रुपयों को देख कर फूली न समाएगी। निर्मला बड़े शौक़ से इस पद का काम अञ्जाम देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती, अगर कभी रुपये कम मिलते, तो पूछती—आज कम क्यों हैं? गृहस्थी के सम्बन्ध में उनसे

ख़ूब बातें करती। इन्हीं बातों के लायक़ वह उनको समझती थी। ज्योंही कोई विनोद की बात उनके मुँह से निकल जाती, उसका मुख मलिन हो जाता था!

निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत होकर आईने के सामने खड़ी होती; और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक़्त उसके हृदय में एक ज्वाला सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता, पिता पर क्रोध आता, अपने भाग्य पर क्रोध आता; पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस ताप से जला करती थी। बाँका सवार बूढ़े लद्दू टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े। निर्मला की दशा उसी बाँके सवार की थी। वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत-गति का आनन्द उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती? सम्भव था कि बच्चों के साथ हँसने-खेलने से वह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, कुछ मन हरा हो जाता; लेकिन रुक्मिणी देवी लड़कों को उसके पास फटकने भी न देतीं, मानो वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल जायगी। रुक्मिणी देवी का स्वभाव सारे संसार से निराला था; यह पता लगाना कठिन था कि वह किस बात से ख़ुश होती थीं; और किस बात से नाराज़! एक बार जिस बात से ख़ुश हो जाती थीं, दूसरी

वार उसी बात से जल जाती थीं। अगर निर्मला अपने कमरे में बैठी रहती, तो कहतीं न जाने कहाँ की मनहूसिन है, अगर वह कोठे पर चढ़ जाती या महरियों से बातें करती, तो छाती पीटने लगतीं। लाज है न शरम; निगोड़ी ने हया भून खाई; अब क्या ? कुछ दिनों में बाजार में नाचेगी। जब से वकील साहब ने निर्मला के हाथ में रुपये-पैसे देने शुरू किए, रुक्मिणी उसकी आलोचना करने पर आरूढ़ हो गई थी। उसे मालूम होता था कि अब प्रलय होने में बहुत-थोड़ी कसर रह गई है। लड़कों को बार-बार पैसों की ज़रूरत पड़ती। जब तक ख़ुद स्वामिनी थी, उन्हें बहला दिया करती थी। अब सीधे निर्मला के पास भेज देती। निर्मला को लड़कों का चटोरापन अच्छा न लगता था। कभी-कभी पैसे देने से इन्कार कर देती। रुक्मिणी को अपने वाग्बाण सर करने का अवसर मिल जाता—अब तो मालिकिन हुई हैं, लड़के काहे को जिएँगे। बिन माँ के बच्चे को कौन पूछे ? रुपयों की मिठाइयाँ खा जाते थे, अब धेले-धेले को तरसते हैं। निर्मला अगर चिढ़ कर किसी दिन बिना कुछ पूछे-गुछे पैसे दे देती, तो देवी जी उसकी दूसरी ही आलोचना करतीं—इन्हें क्या, लड़के मरें या जिएँ, इनकी बला से; माँ के बिना कौन समझावे कि बेटा बहुत मिठाइयाँ मत खाओ ? आई-गई तो मेरे सिर जायगी, उन्हें क्या ! यहीं तक होता तो निर्मला शायद ज़ब्त कर जाती; पर देवी जी ख़ुफ़िया पुलीस के सिपाही की भाँति निर्मला का पीछा करती रहती थीं। अगर वह कोठे पर खड़ी है, तो अवश्य किसी पर निगाह डाल रही होगी;

महरी से बात करती है, तो अवश्य ही उनकी निन्दा करती होगी; बाज़ार से कुछ मँगवाती है, तो अवश्य कोई विलास-वस्तु होगी। वह बराबर उसके पत्र पढ़ने की चेष्टा किया करतीं, छिप-छिप कर उसकी बातें सुना करतीं। निर्मला उनकी दोधारी तलवार से काँपती रहती थी। यहाँ तक कि उसने एक दिन पति से कहा—आप ज़रा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ी रहती हैं?

तोताराम ने तेज़ होकर कहा—क्या तुम्हें कुछ कहा है क्या?

रोज़ ही कहती हैं। बात मुँह से निकलनी मुश्किल है। अगर उन्हें इस बात की जलन हो कि यह मालिकिन क्यों बनी हुई है, तो आप उन्हीं को रुपए-पैसे दीजिए, मुझे न चाहिए; वही मालिकिन बनी रहें। मैं तो केवल इतना चाहती हूँ कि कोई मुझे ताने-मेहने न दिया करे।

यह कहते-कहते निर्मला की आँखों से आँसू बहने लगे। तोताराम को अपना प्रेम दिखाने का यह बहुत ही अच्छा मौक़ा मिला। बोले—मैं आज ही उनकी ख़बर लूँगा। साफ़ कह दूँगा, अगर मुँह बन्द करके रहना है, तो रहो; नहीं तो अपनी राह लो। इस घर की स्वामिनी वह नहीं हैं, तुम हो। वह केवल तुम्हारी सहायता के लिए हैं। अगर सहायता करने के बदले तुम्हें दिक़ करती हैं, तो उनके यहाँ रहने की ज़रूरत ही नहीं। मैंने तो सोचा था विधवा हैं, अनाथ हैं, पाव भर आटा खायँगी; पड़ी रहेंगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं, तो यह तो अपनी बहिन ही हैं। लड़कों

की देख-भाल के लिए एक औरत की ज़रूरत भी थी, रख लिया ; लेकिन इसके यह माने नहीं हैं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करें।

निर्मला ने फिर कहा—लड़कों को सिखा देती हैं कि जाकर माँ से पैसे माँगो, कभी कुछ-कभी कुछ। लड़के आकर मेरी जान खाते हैं। घड़ी भर लेटना मुश्किल हो जाता है। डाटती हूँ, तो वह आँखें लाल-पीली करके दौड़ती हैं। मुझे समझती हैं कि लड़कों को देख कर जलती है। ईश्वर जानते होंगे कि मैं बच्चों को कितना प्यार करती हूँ। आख़िर मेरे ही बच्चे तो हैं। मुझे उनसे क्यों जलन होने लगी।

तोताराम क्रोध से काँप उठे। बोले—तुम्हें जो लड़का दिक़ करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी देखता हूँ कि लौंडे शरीर हो गए हैं। मन्साराम को तो मैं बोर्डिङ्ग-हाउस में भेज दूँगा। बाक़ी दोनों को आज ही ठीक किए देता हूँ।

उस वक़्त तोताराम कचहरी जा रहे थे। डाट-डपट करने का मौक़ा न था ; लेकिन कचहरी से लौटते ही उन्होंने घर में आकर रुक्मिणी से कहा—क्यों बहिन, तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं। अगर रहना है, तो शान्त होकर रहो। यह क्या कि दूसरों का रहना मुश्किल कर दो।

रुक्मिणी समझ गईं कि बहू ने अपना वार किया; पर वह दबने वाली औरत न थीं। एक तो उम्र में बड़ी, तिस पर इसी घर की सेवा में ज़िन्दगी काट दी थी। किसकी मजाल थी कि उन्हें बेदख़ल कर दे। उन्हें भाई की इस क्षुद्रता पर आश्चर्य हुआ।

बोलीं—तो क्या लौंडी बना कर रक्खोगे। लौंडी बन कर रहना है, तो इस घर की लौंडी न बनूँगी। अगर तुम्हारी यह इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे; और मैं खड़ी देखा करूँ। किसी को बेराह चलते देखूँ, तो चुप साध लूँ। जो जिसके मन में आए करे; मैं मिट्टी की देवी बनी बैठी रहूँ, तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतना आपे से बाहर हो रहे हो। निकल गई सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़ कर नचाने लगी। कुछ पूछना न गूछना, बस उसने तार खींचा; और तुम काठ के सिपाही की तरह तलवार निकाल कर खड़े हो गए।

तोता०—सुनता तो हूँ कि तुम हमेशा खुचर निकालती रहती हो, बात-बात पर ताने देती हो। अगर कुछ सीख देनी हो, तो उसे प्यार से, मीठे शब्दों में देनी चाहिए। तानों से सीख मिलने के बदले उलटा और जी जलने लगता है।

रुक्मिणी—तो तुम्हारी यही मर्जी है कि किसी बात में न बोलूँ, यही सही! लेकिन फिर यह न कहना कि तुम तो घर में बैठी थीं, क्यों नहीं सलाह दी। जब मेरी बातें ज़हर लगती हैं, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो बोलूँ। मसल है—'नाटों खेती, बहुरियों घर' मैं भी देखूँ बहुरिया कैसे घर चलाती है।

इतने में सियाराम और जियाराम स्कूल से आ गए। आते ही आते दोनों बुआ जी के पास जाकर खाने को माँगने लगे। रुक्मिणी ने कहा—जाकर अपनी नई अम्माँ से क्यों नहीं माँगते, मुझे बोलने का हुक्म नहीं है।

तोता०—अगर तुम लोगों ने उस घर में क़दम रक्खे, तो टाँग तोड़ दूँगा। बदमाशी पर कमर बाँधी है।

जियाराम ज़रा शोख़ था। बोला—उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देतीं।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया—कहती हैं मुझे दिक़ करोगे, तो कान काट लूँगी। कहतीं हैं कि नहीं जिया ?

निर्मला अपने कमरे से बोली—मैं ने कब कहा था कि तुम्हारे कान काट लूँगी। अभी से झूठ बोलने लगे।

इतना सुनना था कि तोताराम ने सियाराम के दोनों कान पकड़ कर उठा लिया। लड़का ज़ोर से चीख़ मार कर रोने लगा।

रुक्मिणी ने दौड़ कर बच्चे को मुन्शी जी के हाथ से छुड़ा लिया और बोलीं—बस, रहने भी दो; क्या बच्चे को मार ही डालोगे ? हाय-हाय ! कान लाल हो गया। सच कहा है, नई बीवी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है। अभी से यह हाल है, तो इस घर के भगवान् ही मालिक हैं।

निर्मला अपनी विजय पर मन ही मन प्रसन्न हो रही थी; लेकिन जब मुन्शी जी ने बच्चे का कान पकड़ कर उठा लिया, तो उससे न रहा गया। छुड़ाने को दौड़ी; पर रुक्मिणी पहले ही पहुँच गई थी। बोली—पहले आग लगा दी, अब, बुझाने दौड़ी हो। जब अपने लड़के होंगे, तब आँखें खुलेंगी। पराई पीर क्या जानो ?

निर्मला—खड़े तो हैं; पूछ लो न, मैंने क्या आग लगा दी ? मैं ने इतना ही कहा था कि लड़के मुझे पैसों के लिए बार-बार दिक़

करते हैं। इसके सिवा जो मेरे मुँह से कुछ और निकला हो, तो मेरी आँखें फूट जायँ।

तोता०—मैं ख़ुद इन लौंडों की शरारत देखा करता हूँ, अन्धा थोड़े ही हूँ। तीनों ज़िद्दी और शरीर हो गए हैं। बड़े मियाँ को तो मैं आज ही होस्टल में भेजता हूँ।

रुक्मिणी—अब तक तो तुम्हें इनकी कोई शरारत न सूझती थी, आज आँखें क्यों इतनी तेज़ हो गईं?

तोताराम—तुम्हीं ने इन्हें इतना शोख़ कर रक्खा है।

रुक्मिणी—तो मैं ही विष की गाँठ हूँ। मेरे ही कारन तुम्हारा घर चौपट हो रहा है। लो, मैं जाती हूँ। तुम्हारे लड़के हैं; मारो चाहे काटो, मैं न बोलूँगी।

यह कह कर वहाँ से चली गईं। निर्मला बच्चे को रोते देख कर विह्वल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया, और गोद में लिए हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी; लेकिन बालक और भी सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसका अबोध हृदय इस प्यार में वह मातृ-स्नेह न पाता था, जिससे दैव ने उसे वञ्चित कर दिया था। यह वात्सल्य न था, केवल दया थी। यह वह वस्तु थी, जिस पर उसका कोई अधिकार न था, जो केवल भिक्षा के रूप में उसे दी जा रही थी, पिता ने पहले भी दो-एक बार मारा था, जब उसकी माँ जीवित थी; लेकिन तब उसकी माँ उसे छाती से लगा कर रोती न थी। वह अप्रसन्न होकर उससे बोलना छोड़ देती, यहाँ तक कि वह स्वयं थोड़ी ही देर के बाद

सब कुछ भूल कर फिर माता के पास दौड़ा जाता था। शरारत के लिये सजा पाना तो उसकी समझ में आता था; लेकिन मार खाने पर चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था। मातृ-प्रेम में कठोरता होती थी; लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी; पर वह कठोरता न थी, जो आत्मीयता का गुप्त सन्देश है। स्वस्थ अङ्ग की परवाह कौन करता है? लेकिन वही अङ्ग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है। निर्मला का करुण रोदन बालक को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा; तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बाहें उसकी गर्दन में डाल दीं; और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा है। शङ्का और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिए हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो अब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे वह आत्म-वेदना हुई, जिसके बिना आँखें नहीं खुलतीं, अपना कर्त्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखाई देने लगा।

छठा परिच्छेद

उस दिन अपने प्रगाढ़ प्रणय का सबल प्रमाण देने के बाद मुन्शी तोताराम को आशा हुई थी कि निर्मला के मर्मस्थल पर मेरा सिक्का जम जायगा; लेकिन उनकी यह आशा लेशमात्र भी पूरी न हुई; बल्कि पहले तो वह कभी-कभी उनसे हँस कर बोला भी करती थी, अब बच्चों ही के लालन-पालन में व्यस्त रहने लगी। जब घर में जाते, बच्चों को उसके पास बैठे पाते। कभी देखते कि उन्हें खिला रही है, कभी कपड़े पहना रही है, कभी कोई खेल खेल रही है, और कभी कोई कहानी कह रही है। निर्मला का तृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर इस अवलम्ब ही को ग़नीमत समझने लगा। बच्चों के साथ हँसने-बोलने में उसकी मातृ-कल्पना तृप्त होती थी। पति के साथ हँसने-बोलने में उसे जो सङ्कोच, जो अरुचि, तथा जो अनिच्छा होती थी, यहाँ तक कि वह उठकर भाग जाना चाहती; उसके बदले यहाँ बालकों के सच्चे, सरल स्नेह से चित्त प्रसन्न होजाता था। पहले मन्साराम उसके

पास आते हुए झिझकता था ; लेकिन अब वह भी कभी-कभी आ बैठता। वह निर्मला का हमसिन था; लेकिन मानसिक विकास में पाँच साल छोटा। हॉकी और फुटबाल ही उसका संसार उसकी कल्पनाओं का मुक्त क्षेत्र तथा उसकी कामनाओं का हरा-भरा बाग़ था। इकहरे बदन का, छरीरा, सुन्दर, हँसमुख, लज्जाशील बालक था, जिसका घर से केवल भोजन का नाता था, बाक़ी सारे दिन न जाने कहाँ घूमता रहता। निर्मला उसके मुँह से खेल की बातें सुन कर थोड़ी देर के लिए अपनी चिन्ताओं को भूल जाती; और चाहती कि एक बार फिर वही दिन आ जाते, जब वह गुड़ियाँ खेलती और उनके ब्याह रचाया करती थी, और जिसे अभी थोड़े, आह! बहुत ही थोड़े दिन गुज़रे थे!

मुन्शी तोताराम अन्य एकान्त-सेवी मनुष्यों की भाँति विषयी जीव थे। कुछ दिन तो वह निर्मला को सैर-तमाशे दिखाते रहे; लेकिन जब देखा कि इसका कुछ फल नहीं होता, तो फिर एकान्त-संयम करने लगे। दिन भर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद-प्रमोद के लिए लालायित हो जाता था; लेकिन जब अपनी विनोद-वाटिका में प्रवेश करते और उसके फूलों को मुरझाया, पौधों को सूखा और क्यारियों में धूल उड़ती हुई देखते, तो उनका जी चाहता—क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूँ? निर्मला उनसे क्यों विरक्त रहती है, इसका रहस्य उनकी समझ में न आता था। दम्पत्ति-शास्त्र के सारे मन्त्रों की परीक्षा कर चुके, पर मनोरथ न पूरा हुआ। अब क्या करना चहिए, यह उनकी समझ में न आता था।

एक दिन वह इसी चिन्ता में बैठे हुए थे कि उनके एक सहपाठी मित्र मुन्शी नयनसुखराम आकर बैठ गए ; और सलाम-कलाम के बाद मुस्करा कर बोले—आजकल तो खूब गहरी छनती होगी, नई बीबी का आलिङ्गन करके जवानी का मज़ा आ जाता होगा। बड़े भाग्यवान् हो ! भई, रूठी हुई जवानी को मनाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं कि नया विवाह हो जाय। यहाँ तो ज़िन्दगी वबाल हो रही है। पत्नी जी इस बुरी तरह चिमटी हैं कि किसी तरह पिण्ड ही नहीं छोड़तीं। मैं तो दूसरी शादी की फ़िक्र में हूँ। कहीं डौल हो तो ठीक-ठाक कर दो। दस्तूरी में एक दिन तुम्हें उसके हाथ के बने हुए पान खिला देंगे।

तोताराम ने गम्भीर भाव से कहा—कहीं ऐसी हिमाक़त न कर बैठना, नहीं तो पछताओगे। लौंडियाएँ कुछ लौंडों ही से खुश रहती हैं। हम तुम अब उस काम के नहीं रहे। सच कहता हूँ, मैं तो शादी करके पछता रहा हूँ। बुरी बला गले पड़ी। सोचा था, दो-चार साल और ज़िन्दगी का मज़ा उठा लूँ; पर उलटी आँतें गले पड़ीं।

नयनसुख—तुम क्या बातें करते हो। लौंडियों को पञ्जे में लाना क्या मुश्किल है, ज़रा सैर-तमाशे दिखा दो, उसके रूप-रङ्ग की तारीफ़ कर दो; बस, रङ्ग जम गया !

तोता०—यह सब कर-धर के हार गया !

नयन०—अच्छा ! कुछ इत्र-तेल, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मज़ा चखाया ?

तोता०—अजी यह सब कर चुका। दम्पति-शास्त्र के सारे मन्त्रों का इम्तहान ले चुका ; सब कोरी गप्पें हैं।

नयन०—अच्छा तो अब मेरी एक सलाह मानो। ज़रा अपनी सूरत बनवालो। आजकल यहाँ एक बिजली के डॉक्टर आए हुए हैं, जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं। क्या मजाल कि चेहरे पर एक झुर्री या सिर का कोई बाल पका रह जाय। न जाने ऐसा क्या जादू कर देते हैं कि आदमी का चोला ही बदल जाता है।

तोता—फ़ीस क्या लेते हैं ?

नयन०—फ़ीस तो सुना ज़्यादा लेते हैं ; शायद पाँच-सौ रुपये।

तोता०—अजी कोई पाखण्डी होगा, बेवक़ूफ़ों को लूट रहा होगा। कोई रोग़न लगा कर दो-चार दिन के लिए ज़रा चेहरा चिकना कर देता होगा। इश्तहारी डॉक्टरों पर तो अपना विश्वास ही नहीं। दस-पाँच की बात होती, तो कहता ज़रा दिल्लगी ही सही। ५००) बड़ी रक़म है।

नयन०—तुम्हारे लिए ५००) कौन बड़ी बात है। एक महीने की आमदनी है। मेरे पास तो भई अगर ५००) होते, तो सब से पहला काम यही करता। जवानी के एक घण्टे की क़ीमत ५००) से कहीं ज़्यादा है।

तोता०—अजी कोई सस्ता नुस्ख़ा बताओ, कोई फ़क़ीरी जड़ी-बूटी हो कि बिना हर्र-फिटकरी के रङ्ग चोखा हो जाय। बिजली और रेडियम बड़े आदमियों के लिए रहने दो। उन्हीं को मुबारक हों।

नयन०—तो फिर रँगीलेपन का स्वाँग रचो, यह ढीला-ढाला

कोट फेंको। तन्ज़ेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले में सोने की ज़ञ्जीर पड़ी हुई, सिर पर जयपुरी साफ़ा बँधा हुआ, आँखों में सुर्मा और बालों में हिना का तेल पड़ा हुआ। तोंद का पचकना भी ज़रूरी है। दोहरा कमरबन्द बाँधो। ज़रा तकलीफ़ तो होगी; पर अचकन सज उठेगी। ख़िज़ाब मैं ला दूँगा। सौ-पचास ग़ज़लें याद कर लो; और मौक़े-मौक़े से शैर पढ़ो। बातों में रस भरा हो। ऐसा मालूम हो कि तुम्हें दीन और दुनिया की कोई फ़िक्र नहीं है, बस जो कुछ है प्रियतमा ही है। जवाँमर्दी और साहस के काम करने का मौक़ा ढूँढ़ते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो—चोर-चोर, और तलवार लेकर अकेले पिल पड़ो। हाँ, ज़रा मौक़ा देख लेना, ऐसा न हो कि सचमुच कोई चोर आजाय; और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी क़लई खुल जायगी और मुफ़्त में उल्लू बनोगे। उस वक्त तो जवाँमर्दी इसी में है कि दम साधे पड़े रहो, जिसमें वह समझे कि तुम्हें ख़बर ही नहीं हुई; लेकिन ज्योंही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछल कर बाहर निकलो और तलवार लेकर कहाँ-कहाँ कहते दौड़ो। ज्यादा नहीं, एक ही महीने मेरी बातों का इम्तहान करके देखो। अगर वह तुम्हारा दम न भरने लगे, तो जो जुर्माना कहो वह दूँ।

तोताराम ने उस वक्त तो यह बातें हँसी में उड़ा दीं, जैसा कि एक व्यवहार-कुशल मनुष्य को करना चाहिए था; लेकिन इनमें की कुछ बातें उनके मन में बैठ गईं। उनका असर पड़ने में कोई सन्देह न था। धीरे-धीरे रङ्ग बदलने लगे, जिसमें लोग खटक न

जायँ। पहले बालों से शुरू किया, फिर सुर्मे की बारी आई ; यहाँ तक कि एक-दो महीने में उनका कलेवर ही बदल गया। ग़ज़लें याद करने का प्रस्ताव तो हास्यास्पद था; लेकिन वीरता की डींग मारने में कोई हानि न थी।

उस दिन से वह रोज़ अपनी जवाँमर्दी का कोई न कोई प्रसङ्ग अवश्य छेड़ देते। निर्मला को सन्देह होने लगा कि कहीं उन्हें उन्माद का रोग तो नहीं हो रहा है। जो आदमी मूँग की दाल और मोटे आटे के दो फुल्के खाकर भी नमक सुलेमानी का मुहताज हो, उसके छैलेपन पर उन्माद का सन्देह हो तो आश्चर्य ही क्या? निर्मला पर इस पागलपन का और तो क्या रङ्ग जमता, हाँ उसे उन पर दया आने लगी। क्रोध और घृणा का भाव जाता रहा। क्रोध और घृणा उस पर होती है, जो अपने होश में हो। पागल आदमी तो दया ही का पात्र है। वह बात-बात में उनकी चुटकियाँ लेती, उनका मज़ाक उड़ाती, जैसे लोग पागलों के साथ किया करते हैं। हाँ, इसका ध्यान रखती थी कि वह समझ न जायँ। वह सोचती, बेचारा अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहा है। यह सारा स्वाँग केवल इसलिए तो है कि मैं अपना दुख भूल जाऊँ। आख़िर अब भाग्य तो बदल सकता नहीं, इस बेचारे को क्यों जलाऊँ।

एक दिन रात को नौ बजे तोताराम बाँके बने हुए सैर करके लौटे; और निर्मला से बोले—आज तीन चोरों से सामना हो गया। मैं ज़रा शिवपुर की तरफ़ चला गया था। अँधेरा था ही। ज्योंही

रेल की सड़क के पास पहुँचा, तो तीन आदमी तलवार लिए हुए न जाने किधर से निकल पड़े। यक़ीन मानो, तीनों काले देव थे! मैं बिलकुल अकेला, हाथ में सिर्फ़ यह छड़ी थी। उधर तीनों तलवार बाँधे हुए, होश उड़ गए। समझ गया कि ज़िन्दगी का यहीं तक साथ था। मगर मैंने भी सोचा; मरता ही हूँ तो वीरों की मौत क्यों न मरूँ?

इतने में एक आदमी ने ललकार कहा—रख दे तेरे पास जो कुछ हो; और चुपके से चला जा!

मैं छड़ी सँभाल कर खड़ा हो गया और बोला—मेरे पास तो सिर्फ़ यह छड़ी है और इसका मूल्य एक आदमी का सिर है।

मेरे मुँह से इतना निकलना था कि तीनों तलवार खींच कर मुझ पर झपट पड़े; और मैं उनके वारों को छड़ी पर रोकने लगा। तीनों झल्ला-झल्ला कर वार करते थे, खटाके की आवाज़ होती थी; और मैं बिजली की तरह झपट कर उनके वारों को काट देता था। कोई दस मिनिट तक तीनों ने ख़ूब तलवार के जौहर दिखाए; पर मुझ पर रेफ़ तक न आई। मजबूरी यही थी कि मेरे हाथ में तलवार न थी। यदि कहीं तलवार होती, तो एक को जीता न छोड़ता। ख़ैर, कहाँ तक बयान करूँ? उस वक़्त मेरे हाथों की सफ़ाई देखने क़ाबिल थी। मुझे ख़ुद आश्चर्य हो रहा था कि यह चपलता मुझमें कहाँ से आ गई। जब तीनों ने देखा कि यहाँ दाल नहीं गलने की, तो तलवार म्यान में रख ली और मेरी पीठ ठोंक कर बोले—जवान, तुम-सा वीर आज तक नहीं देखा। हम तीनों तीन सौ पर भारी

हैं, गाँव के गाँव ढोल बजा कर लूटते हैं; पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए। यह कह कर तीनों फिर नज़रों से ग़ायब हो गए!

निर्मला ने गम्भीर भाव से मुस्करा कर कहा—इस छड़ी पर तो तलवारों के बहुत से निशान बने हुए होंगे।

मुन्शी जी इस शङ्का के लिए तैयार न थे; पर कोई जवाब देना आवश्यक था। बोले—मैं वारों को बराबर ख़ाली देता था। दो-चार चोटें छड़ी पर पड़ी थीं, तो उचटती हुई, जिनसे कोई निशान न पड़ सकता था।

अभी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकली थी कि सहसा रुक्मिणी देवी बदहवास दौड़ती हुई आईं; और हाँफते हुए बोलीं—तोता, तोता, है कि नहीं? मेरे कमरे में एक साँप निकल आया है। मेरी चारपाई के नीचे बैठा हुआ है। मैं उठ कर भागी। मूआ कोई दो गज़ का होगा। फन निकाले फुफकार रहा है, ज़रा चलो तो, डण्डा लेते चलना।

तोताराम के चेहरे का रङ्ग उड़ गया, मुँह पर हवाइयाँ छूटने लगीं; मगर मन के भावों को छिपा कर बोले—साँप यहाँ कहाँ? तुम्हें धोखा हुआ होगा। कोई रस्सी पड़ी होगी।

रुक्मिणी—अरे मैंने अपनी आखों देखा है। ज़रा चल कर देख न लो। है-है! मर्द होकर डरते हो!!

मुन्शी जी घर में से तो निकले; लेकिन बरामदे में फिर ठिठक गए। उनके पाँव ही न उठते थे। कलेजा धड़-धड़ कर रहा था।

साँप बड़ा क्रोधी जानवर है। कहीं काट ले, तो मुफ़्त में प्राण से हाथ धोना पड़े। बोले—डरता नहीं हूँ। साँप ही तो है, शेर तो नहीं; मगर साँप पर लाठी नहीं असर करती। जाकर किसी को भेजूँ, किसी के घर से भाला लाए।

यह कह कर मुन्शी जी लपके हुए बाहर चले गए। मन्साराम बैठा खाना खा रहा था। मुन्शी जी तो बाहर गए, इधर वह खाना छोड़, अपना हॉकी का डण्डा हाथ में ले कमरे में घुस ही तो पड़ा: और तुरन्त चारपाई खींच ली। साँप मस्त था, भागने के बदले फन निकाल कर खड़ा हो गया। मन्साराम ने चटपट चारपाई की चादर उठा कर साँप के ऊपर फेंक दी, और ताबड़ तोड़ तीन-चार डण्डे कस कर जमाए। साँप चादर के अन्दर तड़प कर रह गया। तब उसे डण्डे पर उठाए हुए बाहर चला। मुन्शी जी कई आदमियों को साथ लिए चले आ रहे थे। मन्साराम को साँप को लटकाए देखा, तो सहसा उनके मुँह से एक चीख़ निकल पड़ी। मगर फिर सँभल गये; और बोले—मैं तो आ ही रहा था, तुमने क्यों जल्दी की। दे दो कोई फेंक आए।

यह कह कर वह बड़ी बहादुरी के साथ रुक्मिणी के कमरे के द्वार पर जाकर खड़े हो गए; और कमरे को ख़ूब देख-भाल कर मूँछों पर ताव देते हुए निर्मला के पास आकर बोले—मैं जब तक जाऊँ जाऊँ; मन्साराम ने मार डाला। बेसमझ लड़का डण्डा लेकर दौड़ पड़ा। साँप को हमेशा भाले से मारना चाहिए। यही तो लड़कों में ऐब है। मैंने ऐसे-ऐसे कितने साँप मारे हैं। साँप को

खिला-खिला कर मारता हूँ। कितनों ही को तो मुट्ठी से पकड़ कर मसल दिया है।

रुक्मिणी ने कहा—जाओ भी, देख ली तुम्हारी मर्दानगी!

मुन्शी जी झेंप कर बोले—अच्छा जाओ, मैं डरपोक ही सही; तुमसे कुछ इनाम तो नहीं माँग रहा हूँ। जाकर महराज से कहो खाना निकाले।

मुन्शी जी तो भोजन करने गए और निर्मला द्वार की चौखट पर खड़ी सोच रही थी—भगवन्! क्या इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है? क्या मेरी दशा को और भी दारुण बनाना चाहते हो? मैं इनकी सेवा कर सकती हूँ; सम्मान कर सकती हूँ, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूँ; लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किए नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे वश की बात नहीं! आखिर यह मुझसे क्या चाहते हैं—समझ गई! समझ गई!! आह यह बात पहले ही नहीं समझी थी, नहीं तो इनको क्यों इतनी तपस्या करनी पड़ती, क्यों इतने स्वाँग भरने पड़ते?

सातवाँ परिच्छेद

उस दिन से निर्मला का रङ्ग-ढङ्ग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। अब तक नैराश्य के सन्ताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही न दिया था। उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन सा कर रक्खा था। अब उस वेदना का वेग शान्त होने लगा। उसे ज्ञान हुआ कि मेरे लिए जीवन में कोई आनन्द नहीं। उसका स्वप्न देख कर क्यों इस जीवन को नष्ट करूँ। संसार में सब के सब प्राणी सुख-सेज ही पर तो नहीं सोते? मैं भी उन्हीं अभागों में हूँ। मुझे भी विधाता ने दुख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूँ, तो नहीं फेंक सकती।

उस कठिन भार से चाहे आँखों में अँधेरा आ जाय, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाना दुस्तर हो जाय; लेकिन वह गठरी ढोनी ही पड़ेगी। उम्र भर का क़ैदी कहाँ तक रोएगा? रोए भी तो कौन देखता है? किसे उस पर दया आती है? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएँ ही तो सहनी पड़ती हैं!

दूसरे दिन वकील साहब कचहरी से आए तो देखा—निर्मला की सहास्य मूर्ति अपने कमरे के द्वार पर खड़ी है। वह अनिन्द्य छबि देख कर उनकी आँखें तृप्त हो गईं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें यह कमल खिला हुआ दिखाई दिया। कमरे में एक बड़ा सा आईना दीवार से लटका हुआ था। उस पर एक परदा पड़ा रहता था। आज उसका परदा उठा हुआ था। वकील साहब ने कमरे में क़दम रक्खा, तो शीशे पर निगाह पड़ी। अपनी सूरत साफ़-साफ़ दिखाई दी। उनके हृदय में चोट सी लग गई। दिन भर के परिश्रम से मुख की कान्ति मलिन हो गई थी, भाँति-भाँति के पौष्टिक पदार्थ खाने पर भी गालों की झुर्रियाँ साफ़ दिखाई दे रही थीं। तोंद कसी होने पर भी किसी मुँहज़ोर घोड़े की भाँति बाहर निकली हुई थी। आईने ही के सामने, किन्तु दूसरी ओर ताकती हुई निर्मला भी खड़ी थी। दोनों सूरतों में कितना अन्तर था—एक रत्न-जटित विशाल भवन था, दूसरा टूटा-फूटा खँडहर! वह उस आईने की ओर और न देख सके। अपनी यह हीनावस्था उनके लिए असह्य थी। वह आईने के सामने से हट

गए, उन्हें अपनी ही सूरत से घृणा होने लगी। फिर इस रूपवती कामिनी का उनसे घृणा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छबि उनके हृदय का शूल बन गई।

निर्मला ने कहा—आज इतनी देर कहाँ लगाई। दिन भर राह देखते-देखते आँखें फूट जाती हैं।

तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया—मुक़द्दमों के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुक़दमा और था; लेकिन मैं सिर-दर्द का बहाना करके भाग खड़ा हुआ।

निर्मला—तो क्यों इतने मुक़द्दमे लेते हो? काम उतना ही करना चाहिए, जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है! मत लिया करो बहुत मुक़द्दमे, मुझे रुपयों का लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे, तो बहुत रुपए मिलेंगे।

तोता—भई, आती हुई लक्ष्मी भी तो नहीं ठुकराई जाती।

निर्मला—लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती है, तो उसका न आना ही अच्छा। मैं धन की भूखी नहीं हूँ।

इसी वक्त़ मन्साराम भी स्कूल से लौटा। धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूँदें आई हुई थीं, गोरे मुखड़े पर ख़ून की लाली दौड़ रही थी, आँखों से ज्योति सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला—अम्माँ जी, लाइए कुछ खाने को निकालिए, ज़रा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर ग्लास में पानी लाई; और एक तश्तरी में कुछ मेवे रख कर मन्साराम को दिए। मन्साराम खाकर चलने लगा, तो निर्मला ने पूछा—कब तक आओगे?

मन्साराम—कह नहीं सकता। गोरों के साथ हॉकी है। बारक यहाँ से बहुत दूर है।

निर्मला—भई, जल्द आना। खाना ठण्ढा हो जायगा, तो कहोगे मुझे भूख नहीं है।

मन्साराम ने निर्मला की ओर सरल स्नेह-भाव से देख कर कहा—मुझे देर हो जाय तो समझ लीजिएगा वहीं खा रहा हूँ। मेरे लिए बैठने की ज़रूरत नहीं।

वह चला गया तो निर्मला बोली—पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शरमाते थे। किसी चीज़ की ज़रूरत होती, तो बाहर ही से मँगवा भेजते। जब से मैंने बुला कर कहा, तब से अब आने लगे हैं।

तोताराम ने कुछ चिढ़ कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीज़ें माँगने क्यों आता है? दीदी से क्यों नहीं कहता?

निर्मला ने यह बात प्रशंसा पाने के लोभ से कही थी। वह यह दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारे लड़कों को कितना चाहती हूँ। यह कोई बनावटी प्रेम न था। उसे लड़कों से सचमुच स्नेह था। उसके चरित्र में अभी तक बाल-भाव ही प्रधान था, उसमें वही उत्सुकता, वही आशावादिता, वही चञ्चलता, वही विनोद-प्रियता विद्यमान थी, और बालकों के साथ उसकी ये बाल-वृत्तियाँ

प्रस्फुटित होती रहती थीं। सपत्नि-सुलभ ईर्षा अभी तक उसके मन में उदय नहीं हुई थी; लेकिन पति के प्रसन्न होने के बदले नाक-भौं सिकोड़ने का आशय न समझ कर बोली—मैं क्या जानूँ उनसे क्यों नहीं माँगते। मेरे पास आते हैं, तो दुतकार नहीं देती। अगर ऐसा करूँ, तो यही होगा कि यह तो लड़कों को देख कर जलती है।

मुन्शी जी ने इसका कुछ जवाब न दिया; लेकिन आज उन्होंने मुवक्किलों से बातें नहीं कीं, सीधे मन्साराम के पास गए और उसका इम्तहान लेने लगे। वह जीवन में पहला ही अवसर था कि उन्होंने मन्साराम और किसी लड़के की शिक्षोन्नति के विषय में इतनी दिलचस्पी दिखाई हो। उन्हें अपने काम से सिर उठाने की फ़ुरसत ही न मिलती थी। उन्हें उन विषयों को पढ़े हुए चालीस वर्ष के लगभग हो गए थे। तब से उनकी ओर आँख तक न उठाई थी। वह क़ानूनी पुस्तकों और पत्रों के सिवा और कुछ पढ़ते ही न थे, इसका समय ही न मिलता था; पर आज उन्हीं विषयों में वह मन्साराम की परीक्षा लेने लगे। मन्साराम ज़हीन था; और इसके साथ मेहनती भी था। खेल में बी० टीम का कैप्टेन होने पर भी वह क्लास में प्रथम रहता था। जिस पाठ को एक बार देख लेता, पत्थर की लकीर हो जाती थी। मुन्शी जी को उतावली में ऐसे मार्मिक प्रश्न तो सूझे ही न, जिनके उत्तर देने में एक चतुर लड़के को भी कुछ सोचना पड़ता; और ऊपरी प्रश्नों को मन्साराम ने चुटकियों में उड़ा दिया। कोई सिपाही अपने शत्रु पर वार खाली जाते देख कर जैसे झल्ला-झल्ला कर और भी तेज़ी से वार करता है, उसी भाँति मन्साराम

के जवाबों को सुन-सुन कर वकील साहब भी झल्लाते थे। वह कोई ऐसा प्रश्न करना चाहते थे, जिसका जवाब मन्साराम से न बन पड़े। देखना चाहते थे कि इसका कमजोर पहलू कहाँ है। यह देख कर अब उन्हें सन्तोष न हो सकता कि यह क्या करता है। वह यह देखना चाहते थे कि यह क्या नहीं करता। कोई अभ्यस्त परीक्षक मन्साराम की कमजोरियों को आसानी से दिखा देता, पर वकील साहब अपनी आधी शताब्दी की भूली हुई शिक्षा के आधार पर इतने सफल कैसे होते? अन्त में जब उन्हें अपना गुस्सा उतारने के लिए कोई बहाना न मिला, तो बोले—मैं देखता हूँ, तुम सारे दिन इधर-उधर मटर-गश्त किया करते हो, मैं तुम्हारे चरित्र को तुम्हारी बुद्धि से बढ़ कर समझता हूँ; और तुम्हारा यों आवारा घूमना मुझे कभी गवारा नहीं हो सकता।

मन्साराम ने निर्भीकता से कहा—मैं शाम को एक घण्टा खेलने के लिए जाने के सिवा दिन भर कहीं नहीं जाता। आप अम्माँ या बुआ जी से पूछ लें। मुझे खुद इस तरह घूमना पसन्द नहीं। हाँ, खेलने के लिए हेडमास्टर साहब आग्रह करके बुलाते हैं, तो मजबूरन जाना पड़ता है। अगर आप को मेरा खेलने जाना पसन्द नहीं है, तो कल से न जाऊँगा।

मुन्शी जी ने देखा कि बातें दूसरे ही रुख पर आ रही हैं, तो तीव्र स्वर में बोले—मुझे इस बात का इतमीनान क्यों कर हो कि खेलने के सिवा और कहीं नहीं घूमने जाते। मैं बराबर शिकायतें सुनता हूँ।

सन्साराम ने उत्तेजित होकर कहा—किन महाशय ने आप से यह शिकायत की है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ।

वकील—कोई हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम्हें इतना विश्वास होना चाहिए कि मैं झूठा आक्षेप नहीं करता।

मन्साराम—अगर मेरे सामने कोई आकर कह दे कि मैं ने इन्हें कहीं घूमते देखा है, तो मुँह न दिखाऊँ।

वकील—किसी को ऐसी क्या ग़रज़ पड़ी है कि तुम्हारे मुँह पर तुम्हारी शिकायत करे; और तुमसे वैर मोल ले? तुम अपने दो-चार साथियों को लेकर उसके घर के खपरैल फोड़ते फिरो। मुझसे इस क़िस्म की शिकायत एक आदमी ने नहीं, कई आदमियों ने की है; और कोई वजह नहीं है कि मैं अपने दोस्तों की बात का विश्वास न करूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम स्कूल ही में रहा करो।

मन्साराम ने मुँह गिरा कर कहा—मुझे वहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं है, जब से कहिए चला जाऊँ।

वकील—तुमने मुँह क्यों लटका लिया, क्या वहाँ रहना अच्छा नहीं लगता? ऐसा मालूम होता है, मानो वहाँ जाने के भय से तुम्हारी नानी मरी जा रही है। आखिर बात क्या है, वहाँ तुम्हें क्या तकलीफ़ होगी?

मन्साराम छात्रालय में रहने के लिए उत्सुक नहीं था; लेकिन जब मुन्शी जी ने यही बात कह दी; और इसका कारण पूछा, तो वह अपनी झेंप मिटाने के लिए प्रसन्नचित्त होकर बोला—मुँह क्यों लटकाऊँ? मेरे लिए जैसे घर, वैसे बोर्डिङ्ग हाउस। तकलीफ़

भी कोई नहीं; और हो भी तो उसे सह सकता हूँ। मैं कल से चला जाऊँगा। हाँ, अगर जगह न खाली हुई, तो मजबूरी है।

मुन्शी जी वकील थे। समझ गए कि यह लौंडा कोई ऐसा बहाना ढूँढ़ रहा है, जिसमें मुझे वहाँ जाना भी न पड़े; और कोई इल्ज़ाम भी सिर पर न आए। बोले—सब लड़कों के लिए जगह है, तुम्हारे ही लिए जगह न होगी।

मन्साराम—कितने ही लड़कों को जगह नहीं मिली; और वे बाहर किराए के मकानों में पड़े हुए हैं। अभी बोर्डिङ्ग हाउस से एक लड़के का नाम कट गया था, तो पचास अर्जियाँ उस जगह के लिए आई थीं।

वकील साहब ने ज्यादा तर्क-वितर्क करना उचित न समझा। मन्साराम को कल तैयार रहने की आज्ञा देकर आप ने बग्घी तैयार कराई, और सैर करने चले गए। इधर कुछ दिनों से वह शाम को प्रायः सैर करने चले जाया करते थे। किसी अनुभवी प्राणी ने बतलाया था कि दीर्घ जीवन के लिए इससे बढ़ कर कोई मन्त्र नहीं है। उनके जाने के बाद मन्साराम आकर रुक्मिणी से बोला—बुआ जी, बाबू जी ने मुझे कल से स्कूल ही में रहने को कहा है।

रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?

मन्सा०—मैं क्या जानूँ। कहने लगे कि तुम यहाँ आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।

रुक्मि०—तूने कहा कि मैं कहीं नहीं जाता?

मन्सा०—कहा क्यों नहीं, मगर जब वह मानें भी!

रुक्मि०—तुम्हारी नई अम्माँ जी की कृपा होगी; और क्या?

मन्सा०—नहीं बुआ जी, मुझे उन पर सन्देह नहीं है, वह बेचारी तो भूल से भी कभी कुछ नहीं कहतीं। कोई चीज माँगने जाता हूँ, तो तुरन्त उठ कर देती हैं।

रुक्मि०—तू यह त्रियाचरित्र क्या जाने, यह उन्हीं की लगाई आग है। देख मैं जाकर पूछता हूँ न।

रुक्मिणी झल्लाई हुई निर्मला के पास जा पहुँचीं। उसे आड़े हाथों लेने का, काँटों में घसीटने का, तानों से छेदने का, रुलाने का कोई सुअवसर वह हाथ से न जाने देती थीं। निर्मला उनका आदर करती थी, उनसे दबती थी, उनकी बातों का जवाब तक न देती थी। वह चाहती थी कि यह मुझे सिखावन की बातें कहें; जहाँ मैं भूलूँ वहाँ सुधारें, सब कामों की देख-रेख करती रहें; पर रुक्मिणी उससे तनी ही रहती थीं।

निर्मला चारपाई से उठ कर बोली—आइए दीदी, बैठिए!

रुक्मिणी ने खड़े-खड़े कहा—मैं पूछती हूँ, क्या तुम सब को घर से निकाल कर अकेली ही रहना चाहती हो?

निर्मला ने कातर भाव से कहा—क्या हुआ; दीदी जी? मैं ने तो किसी से कुछ नहीं कहा।

रुक्मि०—मन्साराम को घर से निकाले देती हो, तिस पर कहती हो मैंने तो किसी को कुछ नहीं कहा। क्या तुमसे इतना भी नहीं देखा जाता?

निर्मला—दीदी जी, मैं तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूँ,

मुझे कुछ नहीं मालूम। मेरी आँखें फूट जायँ, अगर मैंने उसके विषय में मुँह तक खोला हो।

रुक्मि०—क्यों व्यर्थ क़समें खाती हो। अब तक तोताराम कभी लड़के से नहीं बोलते थे। एक हफ़्ते के लिए मन्साराम ननिहाल चला गया था, तो इतने घबराए कि ख़ुद जाकर लिवा लाए। अब उसी मन्साराम को वह घर से निकाल कर स्कूल में रक्खे देते हैं। अगर लड़के का बाल भी बाँका हुआ, तो तुम जानोगी। वह कभी बाहर नहीं रहा, उसे न खाने की सुध रहती है, न पहनने की—जहाँ बैठा, वहीं सो जाता है। कहने को जवान हो गया, पर स्वभाव बालकों का सा है। स्कूल में तो उसका मरन हो जायगा। वहाँ किसे फ़िक्र है कि इसने खाया या नहीं, कहाँ कपड़े उतारे, कहाँ सो रहा है। जब घर में कोई पूछने वाला नहीं, तो बाहर कौन पूछेगा? मैं ने तुम्हें चेता दिया; आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने!

यह कह कर रुक्मिणी वहाँ से चली गई।

वकील साहब सैर करके लौटे तो निर्मला ने तुरन्त यह विषय छेड़ दिया—मन्साराम से वह आजकल थोड़ी देर अङ्गरेजी पढ़ती थी। उसके चले जाने पर फिर उसके पढ़ने का हरज न होगा? दूसरा कौन पढ़ाएगा? वकील साहब को अब तक यह बात न मालूम थी। निर्मला ने सोचा था कि जब कुछ अङ्गरेजी का अभ्यास हो जायगा, तो वकील साहब को एक दिन अङ्गरेजी में बातें करके चकित कर दूँगी। कुछ थोड़ा सा ज्ञान तो उसे अपने भाइयों ही से

हो गया था। अब वह नियमित रूप से पढ़ रही थी। वकील साहब की छाती पर साँप सा लोट गया, त्योरियाँ बदल कर बोले—कब से पढ़ा रहा है तुम्हें? मुझसे तुमने पहले कभी नहीं कहा।

निर्मला ने उनका यह रूप केवल एक बार देखा था, जब उन्होंने सियाराम को मारते-मारते बेदम कर दिया था। वही रूप और भी विकराल बन कर आज उसे फिर दिखाई दिया। सहमती हुई बोली—उनके पढ़ने में तो इससे कोई हरज नहीं होता। मैं उसी वक्त उनसे पढ़ती हूँ, जब उन्हें फ़ुरसत रहती है। पूछ लेती हूँ कि तुम्हारा हरज होता हो तो जाओ। बहुधा जब वह खेलने जाने लगते हैं, तो दस मिनिट के लिए रोक लेती हूँ। मैं ख़ुद चाहती हूँ कि उनका नुक़सान न हो।

बात कुछ न थी; मगर वकील साहब हताश से होकर चारपाई पर गिर पड़े; और माथे पर हाथ रख कर गहन चिन्ता में मग्न हो गए। उन्होंने जितना समझा था, बात उससे कहीं बढ़ गई थी। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आया कि मैंने पहले ही क्यों न इस लौंडे को बाहर रखने का प्रबन्ध किया। आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखाई देती हैं, इसका रहस्य अब समझ में आया। पहले कभी कमरा इतना सजा-सजाया न रहता था, बनाव-चुनाव भी न करती थीं; पर अब देखता हूँ काया-पलट सी हो गई है। जी में तो आया कि इसी वक्त चल कर मन्साराम को निकाल दूँ; लेकिन प्रौढ़ बुद्धि ने समझाया कि इस अवसर पर क्रोध की ज़रूरत नहीं। कहीं इसने भाँप लिया, तो ग़ज़ब ही हो जायगा।

हाँ, ज़रा इसके मनोभावों को टटोलना चाहिए। बोले—यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हें दो-चार मिनिट पढ़ाने से उसका कोई हरज नहीं होता; लेकिन आवारा लड़का है, अपना काम न करने का उसे एक बहाना तो मिल जाता है। कल अगर फ़ेल हो गया, तो साफ़ कह देगा—मैं तो दिन भर पढ़ाता रहता था। मैं तुम्हारे लिए कोई मिस नौकर रख दूँगा। कुछ ज़्यादा खर्च न होगा। तुमने मुझसे पहले कहा ही नहीं। यह तुम्हें भला क्या पढ़ा पाता होगा? दो-चार शब्द बता कर भाग जाता होगा। इस तरह तो तुम्हें कुछ भी न आएगा।

निर्मला ने तुरत इस आक्षेप का खण्डन किया—नहीं, यह बात तो नहीं, वह मुझे दिल लगा कर पढ़ाते हैं; और उनकी शैली भी कुछ ऐसी है कि पढ़ने में मन लगता है। आप एक दिन ज़रा उनका समझाना देखिए। मैं तो समझती हूँ कि मिस इतने ध्यान से न पढ़ाएगी।

मुन्शी जी अपनी प्रश्न-कुशलता पर मूँछों को ताव देते बोले—दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?

निर्मला अब भी इन प्रश्नों का आशय न समझी। बोली—पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों से एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं। वह तो कहते हैं कि मैं अपने क्लास में सब से अच्छा हूँ। अभी परीक्षा में इन्हीं को प्रथम स्थान मिला था, फिर आप कैसे समझते हैं कि उनका पढ़ने में जी नहीं लगता। मैं इसलिए और भी कहती हूँ कि दीदी समझेंगी—इसी ने यह

आग लगाई है। मुफ्त में मुझे ताने सुनने पड़ेंगे। अभी ज़रा ही देर हुई धमका कर गई हैं।

मुन्शी जी ने दिल में कहा—ख़ूब समझता हूँ। तू कल की छोकरी होकर मुझे चराने चली है। दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती है। बोले—मैं नहीं समझता बोर्डिङ्ग का नाम सुन कर क्यों लौंडे की नानी मरती है। और लड़के ख़ुश होते हैं कि अब अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उलटे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले तक यह दिल लगा कर पढ़ता था। यह उसी मेहनत का नतीज़ा है कि अपनी क्लास में सब से अच्छी है; लेकिन इधर कुछ दिनों से इसे सैर-सपाटे का चसका पड़ चला है। अगर अभी से रोक-थाम न की गई, तो पीछे कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा। तुम्हारे लिए मैं एक मिस रख दूँगा।

दूसरे दिन मुन्शी जी प्रातःकाल कपड़े-लत्ते पहन कर बाहर निकले। दीवानख़ाने में कई मुअक्किल बैठे हुए थे। इनमें एक राजा साहब भी थे, जिनसे मुन्शी जी को कई हज़ार सालाना मेहनताना मिलता था। मगर मुन्शी जी उन्हें वहीं बैठे छोड़ दस मिनिट में आने का वादा करके बग्घी पर बैठ कर स्कूल के हेडमास्टर के यहाँ जा पहुँचे। हेडमास्टर साहेब बड़े सज्जन पुरुष थे। वकील साहब का बहुत आदर-सत्कार किया; पर उनके यहाँ एक लड़के की जगह भी ख़ाली न थी। सभी कमरे भरे हुए थे। इन्स्पेक्टर साहब की बड़ी ताकीद थी कि मुफ़स्सिल के लड़कों को जगह देकर तब शहर के लड़कों को लिया जाय।

इसलिए यदि कोई जगह खाली भी हुई, तो भी मन्साराम को जगह न मिल सकेगी; क्योंकि कितने ही बाहरी लड़कों के प्रार्थना-पत्र रक्खे हुए थे। मुन्शी जी वकील थे। रात-दिन ऐसे प्राणियों से साबिक़ा रहता था, जो लोभ-वश असम्भव को भी सम्भव, असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं। समझे शायद कुछ दे-दिला कर काम निकल जाय। दफ़्तर के क्लर्क से ढङ्ग की कुछ बातचीत करनी चाहिए; पर उसने हँस कर कहा—मुन्शी जी, यह कचहरी नहीं, स्कूल है; हेडमास्टर साहब के कानों में इसकी भनक भी पड़ गई, तो जामे से बाहर हो जाएँगे; और मन्साराम को खड़े-खड़े निकाल देंगे। सम्भव है, अफ़सरों से शिकायत करदें। बेचारे मुन्शी जी अपना सा मुँह लेकर रह गए। दस बजते-बजते झुँझलाए हुए घर लौटे। मन्साराम उसी वक़्त घर से स्कूल जाने को निकला। मुन्शी जी ने उसे कठोर नेत्रों से देखा, मानो वह उनका शत्रु हो; और घर में चले गए।

इसके बाद दस-बारह दिनों तक वकील साहब का यही नियम रहा कि कभी सुबह, कभी शाम किसी न किसी स्कूल में हेडमास्टर से मिलते; और मन्साराम को बोर्डिङ्ग हाउस में दाख़िल कराने की चेष्टा करते; पर किसी स्कूल में जगह न थी। सभी जगहों से कोरा जवाब मिल गया। अब दो ही उपाय थे—या तो मन्साराम को अलग किराए के मकान में रख दिया जाय या किसी दूसरे शहर के स्कूल में भरती करा दिया जाय। यह दोनों ही बातें आसान थीं। मुफ़स्सिल के स्कूलों में जगहें अक्सर ख़ाली रहती

थीं; लेकिन अब मुन्शी जी का शङ्कित हृदय कुछ शान्त हो गया था। उस दिन से उन्होंने मन्साराम को कभी घर में जाते नहीं देखा। यहाँ तक कि अब वह खेलने भी न जाता था। स्कूल जाने के पहले और आने के बाद बराबर अपने कमरे में बैठा रहता। गर्मी के दिन थे, खुले हुए मैदान में भी देह से पसीने की धारें निकलती थीं; लेकिन मन्साराम अपने कमरे से बाहर न निकलता। उसका आत्माभिमान आवारापन के आक्षेप से मुक्त हो जाने के लिए विकल हो रहा था। वह अपने आचरण से इस कलङ्क को मिटा देना चाहता था।

एक दिन मुन्शी जी बैठे भोजन कर रहे थे कि मन्साराम भी नहा कर खाने आया। मुन्शी जी ने इधर उसे महीनों से नङ्गे बदन न देखा था। आज उस पर निगाह पड़ी तो होश उड़ गए। हड्डियों का एक ढाँचा सामने खड़ा था। मुख पर अब भी ब्रह्मचर्य का तेज था; पर देह घुल कर काँटा हो गई थी। पूछा—आजकल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है क्या? इतने दुर्बल क्यों हो?

मन्साराम ने धोती ओढ़ कर कहा—तबीयत तो बिलकुल अच्छी है।

मुन्शी जी—फिर इतने दुर्बल क्यों हो?

मन्सा०—दुर्बल तो नहीं हूँ। मैं इससे ज्यादा मोटा कब था?

मुन्शी जी—वाह आधी देह भी नहीं रही; और कहते हो मैं दुर्बल नहीं हूँ। क्यों दीदी, यह ऐसा ही था?

रुक्मिणी आँगन में खड़ी तुलसी को जल चढ़ा रही थीं।

बोलीं—दुबला क्यों होगा, अब तो बहुत अच्छी तरह लालन-पालन हो रहा है। मैं गँवारिन थी, लड़कों को खिलाना-पिलाना नहीं जानती थी। खोंमचा खिला-खिला कर इनकी आदत बिगाड़ देती थी। अब तो एक पढ़ी-लिखी, गृहस्थी के कामों में चतुर औरत पान की तरह फेर रही है न! दुबला हो उसका दुश्मन !!

मुन्शी जी—दीदी, तुम बड़ा अन्याय करती हो। तुमसे किसने कहा कि लड़कों को बिगाड़ रही हो। जो काम दूसरों के किए न हो सके, वह तुम्हें खुद करना चाहिए। यह नहीं कि घर से कोई नाता ही न रक्खो। जो अभी खुद लड़की है, वह लड़कों की देख-रेख क्या करेगी? यह तुम्हारा काम है।

रुक्मिणी—जब तक अपना समझती थी, करती थी। जब तुमने ग़ैर समझ लिया, तो मुझे क्या पड़ी है कि तुम्हारे गले से चिमटूँ? पूछो, कै दिन से दूध नहीं पिया? जाके कमरे में देख आओ, नाश्ते के लिए जो मिठाई भेजी गई थी, वह पड़ी सड़ रही है। मालकिन समझती हैं, मैं ने तो खाने को सामने रख दिया, कोई न खाय तो क्या मुँह में डाल दूँ। तो भैया इस तरह वह लड़के पलते होंगे? जिन्होंने कभी लाड़-प्यार का सुख नहीं देखा। तुम्हारे लड़के बराबर पान की तरह फेरे जाते रहे हैं, अब अनाथों की तरह रह कर सुखी नहीं रह सकते। मैं तो बात साफ कहती हूँ। बुरा मान कर ही कोई मेरा क्या कर लेगा? उस पर सुनती हूँ कि लड़के को स्कूल में रखने का प्रबन्ध कर रहे हो! बेचारे को घर में आने तक

की मनाही है। मेरे पास आते भी डरता है; और फिर मेरे पास रक्खा ही क्या रहता है, जो जाकर खिलाऊँगी ?

इतने में मन्साराम दो फुलके खाकर उठ खड़ा हुआ। मुन्शी जी ने पूछा—क्या तुम खा चुके ? अभी बैठे एक मिनिट से ज्यादा नहीं हुआ। तुमने खाया क्या ? दो ही फुलके तो लिए थे ?

मन्साराम ने सकुचाते हुए कहा—दाल और तरकारी भी तो थी। ज्यादा खा जाता हूँ, तो गला जलने लगता है, खट्टी डकारें आने लगती हैं।

मुन्शी जी भोजन करके उठे, तो बहुत चिन्तित थे। अगर लड़का योंही दुबला होता गया, तो कोई भयङ्कर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। इन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालिकिन नहीं हूँ। यह नहीं समझतीं कि मुझे घर की मालिकिन बनने का क्या अधिकार है। जिसे रुपयों का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे हो सकती है ? बनी तो थीं साल भर तक मालिकिन—एक पाई की भी बचत न होती थी। इसी आमदनी में रूपकला दो-ढाई सौ रुपये बचा लेती थी। इनके राज में वही आमदनी खर्च को भी पूरी न पड़ती थी। कोई बात नहीं, लाड़-प्यार ने इन लड़कों को चौपट कर दिया। इतने बड़े-बड़े लड़कों को इसकी क्या ज़रूरत कि जब कोई खिलाए तो खायँ ? इन्हें तो खुद अपनी फ़िक्र रखनी चाहिए। मुन्शी जी दिन भर इसी उधेड़-बुन में पड़े रहे। दो-चार मित्रों से भी ज़िक्र किया। लोगों ने कहा—उसके खेल-कूद में बाधा न डालिए, अभी से उसे

क़ैद न कीजिए, खुली हवा में चरित्र के भ्रष्ट होने की उससे कहीं कम सम्भावना है, जितनी बन्द कमरे में। कुसङ्गत से ज़रूर बचाइए, मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए। युवावस्था में एकान्त-वास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकर है। मुन्शी जी को अब अपनी ग़लती मालूम हुई। घर लौट कर मन्साराम के पास गए। वह अभी स्कूल से आया था; और बिना कपड़े उतारे एक किताब सामने खोल कर, सामने खिड़की की ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि एक भिखारिन पर लगी हुई थी, जो अपने बालक को गोद में लिए भिक्षा माँग रही थी। बालक माता की गोद में बैठा हुआ ऐसा प्रसन्न था, मानो वह किसी राज-सिंहासन पर बैठा हो। मन्साराम उस बालक को देख कर रो पड़ा। यह बालक क्या मुझसे अधिक सुखी नहीं है? इस अनन्त विश्व में ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे वह इस गोद के बदले में पाकर प्रसन्न हो? ईश्वर भी ऐसी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकते। ईश्वर! ऐसे बालकों को जन्म ही क्यों देते हो, जिसके भाग्य में मातृ वियोग का दुख भोगना बदा हो! आज मुझ सा अभागा संसार में और कौन है? किसे मेरे खाने-पीने की, मरने-जीने की सुध है। अगर आज मर भी जाऊँ, तो किसके दिल को चोट लगेगी! पिता को अब मुझे रुलाने में मज़ा आता है, वह मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहते, मुझे घर से निकाल देने की तैयारियाँ हो रही हैं। आह माता! तुम्हारा यह लाडला बेटा आज आवारा कहा जा रहा है। वही पिता जी, जिनके हाथों में तुमने हम तीनों भाइयों के हाथ पकड़ाये थे, आज

मुझे आवारा और बदमाश कह रहे हैं ! मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूँ। यह सोचते-सोचते मन्साराम अपार वेदना से फूट-फूट कर रोने लगा।

उसी समय तोताराम कमरे में आकर खड़े हो गए। मन्साराम ने चटपट आँसू पोंछ डाले; और सिर झुका कर खड़ा हो गया। मुन्शी जी ने शायद यह पहली बार उसके कमरे में क़दम रक्खा था। मन्साराम का दिल धड़-धड़ करने लगा कि देखें आज क्या आफ़त आती है। मुन्शी जी ने उसे रोते देखा तो एक क्षण के लिए उनका वात्सल्य घोर निद्रा से चौंक पड़ा। घबरा कर बोले—क्यों, रोते क्यों हो बेटा, किसी ने कुछ कहा है ? मन्साराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आँसुओं को रोक कर कहा—जी नहीं, रोता तो नहीं हूँ × × ×।

मुन्शी जी—तुम्हारी अम्माँ ने तो कुछ नहीं कहा ?

मन्सा०—जी नहीं, वह तो मुझसे बोलतीं ही नहीं।

मुन्शी जी—क्या करूँ बेटा, शादी तो इसलिए की थी कि बच्चों को माँ मिल जायगी; लेकिन वह आशा नहीं पूरी हुई। तो क्या बिलकुल नहीं बोलतीं ?

मन्सा०—जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।

मुन्शी जी—विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम ही नहीं होता क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिज़ाज होगा तो कभी शादी न करता। रोज़ एक न एक बात लेकर उठ खड़ी होती है। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन भर न जाने कहाँ ग़ायब रहता

है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था ? समझा तुम कुसङ्गत में पड़ कर शायद दिन भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देख कर रञ्ज न हो ? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिङ्ग हाउस में रखने का निश्चय किया था। बस, और कोई बात नहीं थी बेटा! मैं तुम्हारा खेलना-कूदना बन्द नहीं करना चाहता था। तुम्हारी यह दशा देख कर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। कल मुझे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। तुम शौक़ से खेलो, सुबह-शाम मैदान में निकल जाया करो। ताज़ी हवा से तुम्हें लाभ होगा। जिस चीज़ की ज़रूरत हो, मुझसे कहो; उनसे कहने की ज़रूरत नहीं। समझ लो कि वह घर में है ही नहीं। तुम्हारी माता छोड़ कर चली गई, तो मैं तो हूँ।

बालक का सरल, निष्कपट हृदय पितृ-प्रेम से पुलकित हो उठा। मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान् खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने मन में अपने पिता को निष्ठुर और न जाने क्या-क्या समझ रक्खा था। विमाता से उसे कोई गिला न था। अब उसे ज्ञात हुआ कि मैं ने अपने देव-तुल्य पिता के साथ कितना अन्याय किया है। पितृ-भक्ति की एक तरङ्ग सी हृदय में उठी; और वह पिता के चरणों पर सिर रख कर रोने लगा। मुन्शी जी करुणा से विह्वल हो गए। जिस पुत्र को एक क्षण भर आँखों से दूर देख कर उनका हृदय व्यग्र हो उठता था, जिसके शील, बुद्धि और चरित्र की अपने पराए सभी बखान करते थे, उसी के प्रति उनका हृदय इतना कठोर क्यों हो गया ? वह अपने

ही प्रिय पुत्र को अपना शत्रु समझने लगे, उसको निर्वासन देने पर तैयार हो गए! निर्मला पुत्र और पिता के बीच में दीवार की भाँति खड़ी थी। निर्मला को अपनी ओर खींचने के लिए पीछे हटना पड़ता था, और पिता तथा पुत्र में अन्तर बढ़ता जाता था। फलतः आज यह दशा हो गई है कि अपने अभिन्न पुत्र से उन्हें इतना छल करना पड़ रहा है! आज बहुत सोचनें के बाद उन्हें एक ऐसी युक्ति सूझी है, जिससे उन्हें आशा हो रही है कि वह निर्मला को बीच से निकाल कर अपने दूसरे बाजू को अपनी तरफ़ कर लेंगे। उन्होंने उस युक्ति का आरम्भ भी कर दिया है; लेकिन इससे अभीष्ट सिद्ध होगा या नहीं, इसे कौन जानता है ?

जिस दिन से तोताराम ने निर्मला के बहुत मिन्नत-समायत करने पर भी मन्साराम को बोर्डिङ्ग हाउस में भेजने का निश्चय किया था, उसी दिन से उसने मन्साराम से पढ़ना छोड़ दिया था। यहाँ तक कि बोलती भी न थी। उसे स्वामी की इस अविश्वासपूर्ण तत्परता का कुछ-कुछ आभास हो गया था। उफ़्फ़ोह! इतना शक्की मिज़ाज! ईश्वर ही इस घर में लाज रक्खें! इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएँ भरी हुई हैं! मुझे यह इतनी गई गुज़री समझते हैं। ये बातें सोच-सोच कर वह कई दिन रोती रही! तब उसने सोचना शुरू किया, इन्हें क्यों ऐसा सन्देह हो रहा है। मुझमें ऐसी कौन सी बात है, जो इनकी आँखों में खटकती है। बहुत सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नज़र न आई। तो क्या उसका मन्साराम से पढ़ना, उससे हँसना-बोलना ही इनके

सन्देह का कारण है ? तो फिर मैं पढ़ना छोड़ दूँगी, भूल कर भी मन्साराम से न बोलूँगी—उसकी सूरत न देखूँगी।

लेकिन यह तपस्या उसे असाध्य जान पड़ती थी। मन्साराम से हँसने-बोलने में उसकी विलासिनी-कल्पना उत्तेजित भी होती थी, और तृप्त भी। उससे बातें करते हुए उसे एक अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी। कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मन्साराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ हँसने-बोलने की जो एक नैसर्गिक तृष्णा होती है, उसी की तृप्ति का यह एक अज्ञात साधन था। अब यह अतृप्त तृष्णा निर्मला के हृदय में दीपक की भाँति जलने लगी। रह-रह कर उसका मन किसी अज्ञात वेदना से विकल हो जाता। खोई हुई किसी अज्ञात वस्तु की खोज में इधर-उधर ढूँढ़ती फिरती, जहाँ बैठती वहाँ बैठी ही रह जाती; किसी काम में जी न लगता। हाँ, जब मुन्शी आ जाते तो वह अपनी सारी तृष्णाओं को नैराश्य में डुबा कर उनसे मुस्करा कर इधर-उधर की बातें करने लगती।

कल जब मुन्शी जी भोजन करके कचहरी चले गए, तो रुक्मिणी ने निर्मला को ख़ूब तानों से छेदा—जानती तो थी कि यहाँ बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ेगा, तो क्यों घर वालों से नहीं कह दिया कि वहाँ मेरा विवाह न करो ? वहाँ जाती जहाँ पुरुष के सिवा और कोई न होता। वही यह बनाव-चुनाव और

छबि देख कर खुश होता—अपने भाग्य को सराहता। यहाँ बुड्ढा आदमी तुम्हारे रङ्ग-रूप, हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा? उसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए, तुमसे विवाह किया है, भोग-विलास के लिए नहीं! वह बड़ी देर तक घाव पर नमक छिड़कती रहीं; पर निर्मला ने चूँ तक न की, वह अपनी सफ़ाई पेश तो करना चाहती थी; पर कर न सकती थी। अगर यह कहे कि मैं वही कर रही हूँ जो मेरे स्वामी की इच्छा है, तो घर का भण्डा फूटता है। अगर अपनी भूल स्वीकार करके उसका सुधार करती है, तो भय है कि उसका न जाने क्या परिणाम हो। वह यों बड़ी स्पष्टवादिनी थी, सत्य कहने में उसे सङ्कोच या भय न होता था; लेकिन इस नाजुक मौक़े पर उसे चुप्पी साधनी पड़ी। इसके सिवा दूसरा उपाय न था। वह देखती थी कि मन्साराम बहुत विरक्त और उदास रहता है, यह भी देखती थी कि वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है; लेकिन उसकी वाणी और कर्म दोनों ही पर मुहर लगी हुई थी। चोर के घर में चोरी हो जाने से उसकी जो दशा हो जाती है, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी!

आठवाँ परिच्छेद

जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती है, तभी दुख होता है। मन्साराम को निर्मला से कभी इस बात की आशा न थी कि वह उसकी शिकायत करेगी। इसीलिए उसे घोर वेदना हो रही थी। यह क्यों मेरी शिकायत करती हैं? क्या चाहती हैं? यही न कि यह मेरे पति की कमाई खाता है, इसके पढ़ाने-लिखाने में रुपये खर्च होते हैं, कपड़े पहनता है। उनकी यही इच्छा होगी कि यह घर में न रहे। मेरे न रहने से उनके रुपये बच जाएँगे। वह मुझसे बहुत प्रसन्नचित्त रहती हैं। कभी मैंने उनके मुँह से कटु शब्द नहीं सुने। क्या यह सब कौशल है? हो सकता है! चिड़िया को जाल में फँसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है। आह! मैं नहीं जानता था कि दाने के नीचे जाल है, यह मातृ-स्नेह केवल मेरे निर्वासन की भूमिका है।

अच्छा, मेरा यहाँ रहना इन्हें क्यों बुरा लगता है? जो उनका पति है, क्या वह मेरा पिता नहीं है? क्या पिता-पुत्र का सम्बन्ध

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से कुछ कम घनिष्ठ है ? अगर मुझे उनके सम्पूर्ण आधिपत्य से ईर्ष्या नहीं होती—वह जो चाहें करें, मैं मुँह नहीं खोल सकता—तो वह मुझे पितृ-स्नेह से क्यों वञ्चित करना चाहती हैं। वह अपने साम्राज्य में क्यों मुझे एक अङ्गुल भर भूमि भी देना नहीं चाहतीं ? आप पक्के महल में रह कर क्यों मुझे वृक्ष की छाया में बैठे नहीं देख सकतीं ?

हाँ, वह समझती होंगी कि यह बड़ा होकर मेरे पति की सम्पत्ति का स्वामी हो जायगा, इसलिए इसे अभी से निकाल देना अच्छा है। उनको कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मेरी ओर से यह शङ्का न करें ? उन्हें क्योंकर बताऊँ कि मन्साराम विष खाकर प्राण दे देगा, इसके पहले कि वह उनका क्या हित करे ? उसे चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ सहनी पड़ें, वह उनके हृदय का शूल न बनेगा। यों तो पिता जी ने मुझे जन्म दिया है; और अब भी मुझ पर उनका स्नेह कम नहीं है; लेकिन क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जिस दिन पिता जी ने उनसे विवाह किया, उसी दिन उन्होंने हमें अपने हृदय से बाहर निकाल दिया ? अब हम अनाथों की भाँति यहाँ पड़े रह सकते हैं, इस घर पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित् पूर्व संस्कारों के कारण यहाँ अन्य अनाथों से हमारी दशा कुछ अच्छी है, पर हैं अनाथ ही। हम उसी दिन अनाथ हुए, जिस दिन अम्माँ जी परलोक सिधारीं। जो कुछ कसर रह गई थी, वह इस विवाह ने पूरी कर दी। मैं तो ख़ुद पहले इनसे विशेष सम्बन्ध न रखता था। अगर उन्हीं दिनों पिता

जी से मेरी शिकायत की होती, तो शायद मुझे इतना दुःख न होता। मैं तो उस आघात के लिए तैयार बैठा था। संसार में क्या कहीं मेरा ठिकाना नहीं है? क्या मैं मज़दूरी भी नहीं कर सकता? लेकिन बुरे वक्त में इन्होंने चोट की। हिंसक पशु भी आदमी को ग़ाफ़िल पाकर ही चोट करते हैं; इसीलिए मेरी इतनी आवभगत होती थी, खाना खाने के लिए उठने में ज़रा भी देर हो जाती थी, तो बुलावे पर बुलावे आते थे, जल-पान के लिए प्रातःकाल ताज़ा हलुवा बनाया जाता था, बारबार पूछा जाता था—रुपयों की ज़रूरत तो नहीं है; इसीलिए यह १६०) की घड़ी मँगवाई गई थी।

मगर क्या इन्हें कोई दूसरी शिकायत न सूझी, जो मुझे आवारा कहा? आख़िर उन्होंने मेरी क्या आवारगी देखी? वह कह सकती थीं कि इसका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता, एक न एक चीज़ के लिए नित्य रुपये माँगता रहता है। यही एक बात उन्हें क्यों सूझी? शायद इसीलिए कि यही सब से कठोर आघात है, जो वह मुझ पर कर सकती हैं। पहली ही बार इन्होंने मुझ पर अग्नि-बाण चला दिया, जिससे कहीं शरण नहीं। इसीलिए न कि यह पिता की नज़रों से गिर जाय। मुझे बोर्डिङ्ग-हाउस में रखने का तो एक बहाना था। उद्देश्य यही था कि इसे दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया जाय। दो-चार महीने के बाद खर्च-वर्च देना बन्द कर दिया जाय, फिर चाहे मरे या जिए। अगर मैं जानता कि यह प्रेरणा इनकी ओर से हुई है, तो कहीं जगह न रहने पर

भी जगह निकाल लेता। नौकरों की कोठरियों में तो जगह मिल जाती, बरामदे में पड़ रहने के लिए बहुत जगह मिल जाती! ख़ैर, अब भी सवेरा है। जब स्नेह नहीं रहा, तो केवल पेट भरने के लिए यहाँ रहना बेहयाई है। यह अब मेरा घर नहीं है। इसी घर में पैदा हुआ हूँ, यहीं खेला हूँ, पर यह अब मेरा नहीं! पिता जी भी मेरे पिता नहीं हैं। मैं उनका पुत्र हूँ; पर वह मेरे पिता नहीं हैं! संसार के सारे नाते स्नेह के नाते हैं। जहाँ स्नेह नहीं, वहाँ कुछ नहीं। हाय अम्माँ जी! तुम कहाँ हो?

यह सोच कर मन्साराम रोने लगा। ज्यों-ज्यों मातृ-स्नेह की पूर्व-स्मृतियाँ जाग्रत होती थीं, उसके आँसू उमड़ते आते थे। वह कई बार अम्माँ-अम्माँ पुकार उठा, मानो वह खड़ी सुन रही है। मातृहीनता के दुख का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ। वह आत्माभिमानी था, साहसी था; पर अब तक सुख की गोद में लालन-पालन होने के कारण वह इस समय अपने को निराधार समझ रहा था।

रात के दस बजे गए थे। मुन्शी जी आज कहीं दावत खाने गए हुए थे। दो बार महरी मन्साराम को भोजन करने के लिए बुलाने आ चुकी थी। मन्साराम ने पिछली बार उससे झुँझला कर कह दिया था—मुझे भूख नहीं है, कुछ न खाऊँगा। बार-बार आकर सिर पर सवार हो जाती है। इसलिए जब निर्मला ने उसे फिर उसी काम के लिए भेजना चाहा, तो वह न गई। बोली—बहू जी, वह मेरे बुलाने से न आवेंगे।

निर्मला—आवेंगे क्यों नहीं ? जाकर कह दे, खाना ठण्ढा हुआ जाता है। दो ही चार कौर खा लें।

महरी—मैं यह सब कह के हार गई, नहीं आते।

निर्मला—तूने यह कहा था कि वह बैठी हुई हैं ?

महरी—नहीं बहू जी, यह तो मैंने नहीं कहा; झूठ क्यों बोलूँ।

निर्मला—अच्छा तो जाकर यही कह। कह देना वह बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं। तुम न खाओगे, तो वह रसोई उठा कर सो रहेंगी। मेरी भुङ्गी ! न, अबकी और चली जा। (हँस कर) न आवें, तो गोद में उठा लाना।

भुङ्गी नाक-भौं सिकोड़ते गई; पर एक ही क्षण में आकर बोली—अरे बहू जी, वह तो रो रहे हैं। किसी ने कुछ कहा है क्या ? निर्मला इस तरह चौंक कर उठी; और दो-तीन पग आगे चली, मानो किसी माता ने अपने बेटे के कुएँ में गिर पड़ने की खबर पाई। फिर वह ठिठक गई; और भुङ्गी से बोली—रो रहे हैं ? तूने पूछा नहीं, क्यों रो रहे हैं ?

भुङ्गी—नहीं बहू जी, यह तो मैंने नहीं पूछा, झूठ क्यों बोलूँ।

वह रो रहे हैं ! इस निस्तब्ध रात्रि में अकेले बैठे हुए वह रो रहे हैं। माता की याद आई होगी। कैसे जाकर उन्हें समझाऊँ, हाय ! कैसे समझाऊँ, यहाँ तो छींकते नाक कटती है ! ईश्वर तुम साक्षी हो, अगर मैंने उन्हें भूले से भी कभी कुछ कहा हो, तो मेरे आगे आए। मैं क्या करूँ ? वह दिल में समझते होंगे कि

इसी ने पिता जी से मेरी शिकायत की होगी। कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं ने कभी तुम्हारे विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। अगर मैं ऐसे देवकुमार का सा चरित्र रखने वाले युवक का बुरा चेतूँ, तो मुझसे बढ़ कर राक्षसी संसार में न होगी!

निर्मला देखती थी, मन्साराम का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है, वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है, उसके मुख की निर्मल कान्ति दिन-दिन मलिन होती जाती है, उसका सहास-वदन सङ्कुचित होता जाता है, इसका कारण भी उससे छिपा न था; पर वह इस विषय में अपने स्वामी से कुछ कह न सकती थी। यह सब देख-देख कर उसका हृदय विदीर्ण होता रहता था; पर उसकी ज़बान न खुल सकती थी। वह कभी-कभी मन में झुँझलाती कि मन्साराम क्यों ज़रा सी बात पर इतना क्षोभ करता है। क्या इनके आवारा कहने से वह आवारा हो गया। मेरी बात है—एक ज़रा सा शक मेरा सर्वनाश कर सकता है; पर उसे ऐसी बातों की इतनी क्या परवाह?

उसके जी में प्रबल इच्छा हुई कि चल कर उन्हें चुप करूँ और लाकर खाना खिला दूँ। बेचारे रातभर भूखे पड़े रहेंगे। हाय! मैं ही इस उपद्रव की जड़ हूँ। मेरे आने के पहले इस घर में शान्ति का राज्य था। पिता बालकों पर जान देता था, बालक पिता को प्यार करते थे। मेरे आते ही सारी बाधाएँ आ खड़ी हुईं। इनका अन्त क्या होगा? भगवान् ही जानें! भगवान् मुझे मौत

भी नहीं देते। वेचारा अकेले भूखा पड़ा है! उस वक्त भी मुँह जूठा करके उठ गया था; और उसका आहार ही क्या है—जितना वह खाता है, उतना तो साल दो साल के बच्चे खा जाते हैं!

निर्मला चली! पति की इच्छा के विरुद्ध चली!! जो नाते में उसका पुत्र होता था, उसी को मनाने जाते उसका हृदय काँप रहा था!

उसने पहले रुक्मिणी के कमरे की ओर देखा। वह भोजन करके बेखबर सो रही थीं। फिर बाहर के कमरे की ओर गई। वहाँ भी सन्नाटा था। मुन्शी जी अभी न आए थे। यह सब देख-भाल कर वह मन्साराम के कमरे के सामने जा पहुँची। कमरा खुला हुआ था, मन्साराम एक पुस्तक सामने रक्खे मेज पर सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानो शोक और चिन्ता की सजीव मूर्त्ति हो। निर्मला ने पुकारना चाहा; पर उसके कण्ठ से आवाज़ न निकली।

सहसा मन्साराम ने सिर उठा कर द्वार की ओर देखा। निर्मला को देख कर वह अँधेरे में पहचान न सका। चौंक कर बोला—कौन?

निर्मला ने काँपते हुए स्वर में कहा—मैं तो हूँ। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो? कितनी रात गई?

मन्साराम ने मुँह फेर कर कहा—मुझे भूक नहीं है।

निर्मला—यह तो मैं तीन बार मुन्नी से सुन चुकी हूँ।

मन्साराम—तो चौथी बार मेरे मुँह से सुन लीजिए।

निर्मला—शाम को भी तो कुछ नहीं खाया था, भूक क्यों नहीं लगी ?

मन्साराम ने व्यङ्ग की हँसी हँस कर कहा—बहुत भूक लगेगी तो आएगा कहाँ से ?

यह कहते-कहते मन्साराम ने कमरे का द्वार बन्द करना चाहा; लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटा कर कमरे में चली आई और मन्साराम का हाथ पकड़ कर सजल नेत्रों से विनय-मधुर स्वर में बोली—मेरे कहने से चल कर थोड़ा सा खा लो। तुम न खाओगे, तो मैं भी जाकर सो रहूँगी। दो ही कौर खा लेना। क्या मुझे रात भर भूखों मारना चाहते हो ?

मन्साराम सोच में पड़ गया। अभी तक इसने भी भोजन नहीं किया, मेरे ही इन्तज़ार में बैठी रही। यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी है या ईर्षा और अमङ्गल की मायाविनी मूर्त्ति! उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रूठ जाता था, तो वे भी इसी तरह मनाने आया करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहाँ से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला—मेरे लिए आप को इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे इन्तज़ार में भूखी बैठी हैं, तो कभी खा आया होता।

निर्मला ने तिरस्कार-भाव से कहा—यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे; और मैं खाकर सो रहूँगी ? क्या विमाता का नाता होने ही से मैं ऐसी स्वार्थिन हो जाऊँगी ?

सहसा मर्दाने कमरे में मुन्शी जी के खाँसने की आवाज़ आई। ऐसा मालूम हुआ कि वह मन्साराम के कमरे की ओर आ रहे हैं। निर्मला के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। वह तुरन्त कमरे से निकल गई; और भीतर जाने का मौक़ा न पाकर कठोर स्वर में बोली—मैं लौंडी नहीं हूँ कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूँ। जिसे न खाना हो, वह पहले ही कह दिया करे।

मुन्शी जी ने निर्मला को वहाँ खड़े देखा। यह अनर्थ !! यह यहाँ क्या करने आ गई ? बोले—यहाँ क्या कर रही हो ?

निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा—कर क्या रही हूँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। बस, सारी बुराइयों की जड़ मैं ही हूँ। कोई इधर रूठा बैठा है, कोई उधर मुँह फुलाए पड़ा है। किस-किस को मनाऊँ और कहाँ तक मनाऊँ ?

मुन्शी जी कुछ चकित होकर बोले—बात क्या है ?

निर्मला—भोजन करने नहीं जाते; और क्या बात है ? दस दफ़े महरी को भेजा। आख़िर आप दौड़ी आई। इन्हें तो इतना कह देना आसान है, मुझे भूख नहीं है; यहाँ तो घर भर की लौंडी हूँ, सारी दुनिया मुँह में कालिख लगाने को तैयार। किसी को भूख न हो; पर कहने वालों को यह कहने से कौन रोकेगा कि यह पिशाचिनी किसी को खाना नहीं देती। मुन्शी जी ने मन्साराम से कहा—खाना क्यों नहीं खा लेते जी ? जानते हो क्या वक़्त है ?

मन्साराम स्तम्भित सा खड़ा था। उसके सामने एक ऐसा रहस्य हो रहा था, जिसका मर्म वह कुछ भी न समझ सकता था।

जिनके नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आँसू भरे हुए थे, उनमें से अकस्मात् ईर्ष्या की ज्वाला कहाँ से आ गई! जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधा-वृष्टि हो रही थी, उनमें विष का प्रवाह क्यों होने लगा। उसी अर्द्ध-चेतना की दशा में बोला—मुझे भूख नहीं है।

मुन्शी जी ने घुड़क कर कहा—क्यों भूख नहीं है? भूख नहीं थी, तो शाम को क्यों न कहला दिया। तुम्हारी भूख के इन्तजार में कौन सारी रात बैठा रहे? तुम में पहले तो यह आदत न थी। रूठना कब से सीख लिया? जाकर खा लो।

मन्साराम—जी नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है।

तोताराम ने दाँत पीस कर कहा—अच्छी बात है, जब भूख लगे, तब खाना। यह कहते हुए वह अन्दर चले गए। निर्मला भी उनके पीछे ही पीछे चली गई। मुन्शी जी तो लेटने चले गए, उसने जाकर रसोई उठा दी; और कुल्ला कर पान खा मुस्कराती हुई आ पहुँची। मुन्शी जी ने पूछा—खाना खा लिया न?

निर्मला—क्या करती। किसी के लिए अन्न-जल छोड़ दूँगी?

मुन्शी जी—इसे न जाने क्या हो गया है, कुछ समझ ही में नहीं आता। दिन-दिन घुलता चला जाता है। दिन भर उसी कमरे में पड़ा रहता है।

निर्मला कुछ न बोली। वह चिन्ता के अपार सागर में डुबकियाँ खा रही थी। मन्साराम ने मेरे भाव-परिवर्त्तन को देख कर

दिल में क्या समझा होगा ? क्या उसके मन में यह प्रश्न न उठा होगा कि पिता जी को देखते ही इसकी त्योरियाँ क्यों बदल गईं ? इसका कारण भी क्या उसकी समझ में आ गया होगा ? बेचारा खाने आ रहा था, तब तक यह महाशय न जाने कहाँ से फट पड़े। इस रहस्य को उसे कैसे समझाऊँ? समझाना सम्भव भी है ? हाय भगवान्! मैं किस विपत्ति में फँस गई ?

सवेरे वह उठ कर घर के काम-धन्धे में लगी। सहसा नौ बजे भुङ्गी ने आकर कहा—मन्सा बाबू तो अपने कागद-पत्तर सब एक्के पर लाद रहे हैं।

निर्मला ने हकबका कर कहा—एक्के पर लाद रहे हैं? कहाँ जाते हैं ?

भुङ्गी—मैंने पूछा तो बोले, अब स्कूल ही में रहूँगा।

मन्साराम प्रातःकाल उठ कर अपने स्कूल के हेडमास्टर साहब के पास गया था; और अपने रहने का प्रबन्ध कर आया था। हेडमास्टर साहब ने पहले तो कहा—यहाँ जगह नहीं है, तुमसे पहले के कितने ही लड़कों के प्रार्थना-पत्र पड़े हुए हैं; लेकिन जब मन्साराम ने कहा—मुझे जगह न मिलेगी, तो कदाचित् मेरा पढ़ना न हो सके; और मैं इम्तहान में शरीक न हो सकूँ। हेडमास्टर साहब को हार माननी पड़ी। मन्साराम के प्रथम श्रेणी में पास होने की आशा थी। अध्यापकों को विश्वास था कि वह उस शाला की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। हेडमास्टर साहब ऐसे लड़के को कैसे छोड़ सकते थे। उन्होंने अपने दफ़्तर का कमरा उसके लिए

ख़ाली कर दिया; और मन्साराम वहाँ से आते ही अपना सामना इक्के पर लादने लगा।

मुन्शी जी ने कहा—अभी ऐसी क्या जल्दी है ? दो-चार दिन में चले जाना। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे लिए कोई अच्छा सा रसोइया ठीक कर दूँ।

मन्सा०—वहाँ का रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।

मुन्शी जी—अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो कि पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।

मन्सा०—वहाँ नौ बजे के बाद कोई पढ़ने ही नहीं पाता, और सब को नियम के साथ खेलना पड़ता है।

मुन्शी जी—बिस्तर क्यों छोड़े देते हो, सोओगे किस पर ?

मन्सा०—कम्मल लिए जाता हूँ। बिस्तर की जरूरत नहीं।

मुन्शी जी—कहार जब तक तुम्हारा सामान रख रहा है जाकर कुछ खा लो। रात भी तो कुछ नहीं खाया था।

मन्सा०—वहीं खाऊँगा। रसोइए से भोजन बनाने को कह आया हूँ। यहाँ खाने लगूँगा, तो देर होगी।

घर में जियाराम और सियाराम भी भाई के साथ जाने को जिद कर रहे थे। निर्मला उन दोनों को बहला रही थी—बेटा ! वहाँ छोटे लड़के नहीं रहते, सब काम अपने ही हाथ से करना पड़ता ......।

एकाएक रुक्मिणी ने आकर कहा—तुम्हारा वज्र का हृदय है; महारानी ! लड़के ने रात भी कुछ नहीं खाया। इस वक्त, भी बिन

खाए-पिए चला जा रहा है; और तुम लड़कों को लिए बातें कर रही हो। उसको तुम जानती नहीं हो। यह समझ लो कि वह स्कूल नहीं जा रहा है, बनवास ले रहा है, लौट कर फिर न आवेगा। वह उन लड़कों में नहीं है, जो खेल में मार भूल जाते हैं। बात उसके दिल पर पत्थर की लकीर हो जाती है।

निर्मला ने कातर स्वर में कहा—क्या करूँ; दीदी जी ? वह किसी की सुनते ही नहीं। आप ज़रा जाकर बुला लें। आप के बुलाने से आ जायँगे।

रुक्मिणी—आख़िर हुआ क्या, जिस पर वह भागा जाता है ? घर से तो उसका जी कभी उचाट न होता था। उसे तो अपने घर के सिवा और कहीं अच्छा ही न लगता था। तुम्हीं ने उसे कुछ कहा होगा या उसकी कुछ शिकायत की होगी। क्यों अपने लिए काँटे बो रही हो ? रानी, घर को मिट्टी में मिला कर तुम चैन से न बैठने पाओगी !

निर्मला ने रोकर कहा—मैं ने उन्हें कुछ कहा हो, तो मेरी ज़बान कट जाय। हाँ, सौतेली होने के कारण बदनाम तो हूँ ही। आप के हाथ जोड़ती हूँ, ज़रा जाकर उन्हें बुला लाइए।

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा—तुम क्यों नहीं बुला लातीं ? क्या छोटी हो जाओगी ? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहतीं ?

निर्मला की दशा उस पङ्खहीन पक्षी की सी हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर देख कर उड़ना चाहता है; पर उड़ नहीं

सकता, उछलता है और गिर पड़ता है। पङ्ख फड़फड़ा कर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर ही अन्दर तड़प रहा था ; पर बाहर न जा सकती थी !

इतने में दोनों लड़के रोते हुए अन्दर आकर बोले—भैया जी चले गए ! निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञा-हीन हो गई हो। चले गए, घर में आए तक नहीं, मुझसे मिले तक नहीं; चले गए ! मुझसे इतनी घृणा ! मैं उनकी कोई न सही, उनकी बुआ तो थीं। उनसे मिलने तो आना चाहिए था ! मैं यहाँ थी न ! अन्दर कैसे क़दम रखते ? मैं देख लेती न ! इसीलिए चले गए !

नवाँ परिच्छेद

मन्साराम के जाने से घर सूना हो गया। दोनों छोटे लड़के उसी स्कूल में पढ़ते थे। निर्मला रोज़ उनसे मन्साराम का हाल पूछती। आशा थी कि छुट्टी के दिन वह आएगा; लेकिन जब छुट्टी के दिन गुज़र गए; और वह न आया, तो निर्मला की तबीयत घबराने लगी। उसने उसके लिए मूँग के लड्डू बना रक्खे थे। सोमवार को प्रातः भुङ्गी को लड्डू देकर मदरसे भेजा। नौ बजे भुङ्गी लौट आई। मन्साराम ने लड्डू ज्यों के त्यों लौटा दिए थे।

निर्मला ने पूछा—पहले से कुछ हरे हुए हैं रे?

भुङ्गी—हरे-बरे तो नहीं हुए, और सूख गए हैं!

निर्मला—क्या जी अच्छा नहीं है क्या?

भुङ्गी—यह तो मैंने नहीं पूछा बहू जी, झूठ क्यों बोलूँ। हाँ, वहाँ का कहार मेरा देवर लगता है। वह कहता था कि तुम्हारे बाबू जी की ख़ुराक कुछ नहीं है। दो फुलकियाँ खाकर उठ जाते हैं। फिर दिन भर कुछ नहीं खाते। हर दम पढ़ते रहते हैं।

निर्मला—तूने पूछा नहीं, लड्डू क्यों लौटाए देते हो ?

भुङ्गी—यह तो नहीं पूछा बहू जी, झूठ क्यों बोलूँ। उन्होंने कहा इसे लेती जा, यहाँ रखने का कुछ काम नहीं, मैं लेती आई।

निर्मला—और कुछ नहीं कहते थे। पूछा नहीं, कल क्यों नहीं आए ? छुट्टी तो थी।

भुङ्गी—बहू जी, झूठ क्यों बोलूँ ; यह पूछने की तो मुझे सुध ही न रही। हाँ, यह कहते थे कि अब तू यहाँ कभी न आना, न मेरे लिए कोई चीज लाना; और अपनी बहू जी से कह देना कि मेरे पास कोई चिट्ठी-पत्तर न भेजें; लड़कों से भी मेरे पास कोई सन्देशा न भेजें। और एक बात ऐसी कही बहू जी कि मेरे मुँह से निकल नहीं सकती। फिर रोने लगे।

निर्मला—कौन बात थी ? कह तो।

भुङ्गी—क्या कहूँ बहू जी, कहते थे मेरे जीने को धिक्कार है। यही कह कर रोने लगे !

निर्मला के मुँह से एक ठण्ढी साँस निकल गई। ऐसा मालूम हुआ, मानो कलेजा बैठा जाता है। उसका रोम-रोम आर्त्तनाद से रुदन करने लगा। वह वहाँ बैठी न रह सकी। जाकर बिस्तर पर मुँह ढाँप कर लेट रही—और फूट-फूट कर रोने लगी। 'वह भी जान गए' उसके अन्तःकरण में बार-बार यही आवाज़ गूँजने लगी—'वह जान गए' ! भगवान्, अब क्या होगा ? जिस सन्देह की आग में वह भस्म हो रही थी, अब शत-गुण वेग से धधकने लगी। उसे अपनी कोई चिन्ता न थी। जीवन में अब सुख की

क्या आशा थी, जिसकी उसे लालसा होती ? उसने अपने मन को इस विचार से समझाया था कि यह मेरे पूर्व कर्मों का प्रायश्चित्त है। कौन प्राणी ऐसा निर्लज्ज होगा, जो इस दशा में बहुत दिन जी सके ? कर्त्तव्य की वेदी पर उसने अपना जीवन और उसकी सारी कामनाएँ होम कर दी थीं। हृदय रोता रहता था; पर मुख पर हँसी का रङ्ग भरना पड़ता था। जिसका मुँह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हँस-हँस कर बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिङ्गित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्म-वेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है ? उस समय उसकी यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाय; और मैं उसमें समा जाऊँ! लेकिन सारी विडम्बना अपने ही तक थी, और अपनी चिन्ता करनी उसने छोड़ दी थी; लेकिन वह समस्या अब अत्यन्त भयङ्कर हो गई थी। वह अपनी आँखों से मन्साराम की आत्म-पीड़ा नहीं देख सकती थी। मन्साराम जैसे मनस्वी, साहसी युवक पर इस आपेक्ष का जो असर पड़ सकता था, उसकी कल्पना ही से उसके प्राण काँप उठते थे। अब चाहे उस पर कितने ही सन्देह क्यों न हों, चाहे उसे आत्म-हत्या ही क्यों न करनी पड़े- पर वह चुप नहीं बैठ सकती थी। मन्साराम की रक्षा करने के लिए वह विकल हो गई। उसने सङ्कोच और लज्जा की चादर उतार कर फेंक देने का निश्चय कर लिया।

वकील साहब भोजन करके कचहरी जाने के पहले एक बार

उससे अवश्य मिल लिया करते थे। उनके आने का समय हो गया था। आ ही रहे होंगे, यह सोच कर निर्मला द्वार पर खड़ी हो गई और उनका इन्तज़ार करने लगी; लेकिन यह क्या! वह तो बाहर चले जा रहे हैं। गाड़ी जुत कर आ गई, यह हुक्म वह यहीं से दिया करते थे। तो क्या आज वह न आएँगे, बाहर ही बाहर चले जाएँगे। नहीं, ऐसा नहीं होने पावेगा। उसने भुङ्गी से कहा—जाकर बाबू जी को बुला ला। कहना एक ज़रूरी काम है; सुन लीजिए।

मुन्शी जी जाने को तैयार ही थे। यह सन्देशा पाकर अन्दर आए; पर कमरे में न आकर दूर ही से पूछा—क्या बात है, भाई? जल्दी कह दो, मुझे एक ज़रूरी काम से जाना है। अभी थोड़ी देर हुई हेडमास्टर साहब का एक पत्र आया है कि मन्साराम को ज्वर आ गया है, बेहतर हो कि आप घर ही पर उसका इलाज करें। इसलिए उधर ही से होता हुआ कचहरी जाऊँगा। तुम्हें कोई ख़ास बात तो नहीं कहनी है।

निर्मला पर मानो वज्र गिर पड़ा। आँसुओं के आवेग और कण्ठ-स्वर में घोर संग्राम होने लगा। दोनों ही पहले निकलने पर तुले हुए थे। दो में से कोई एक क़दम भी पीछे हटना नहीं चाहता था। कण्ठ-स्वर की दुर्बलता और आँसुओं की सबलता देख कर यह निश्चय करना कठिन नहीं था कि एक क्षण यही संग्राम होता रहा, तो मैदान किसके हाथ रहेगा? आख़िर दोनों साथ-साथ निकले—लेकिन बाहर आते ही बलवान् ने निर्बल को दबा लिया।

केवल इतना मुँह से निकला—कोई ख़ास बात नहीं थी। आप तो उधर जा ही रहे हैं।

मुन्शी जी—मैंने लड़कों से पूछा था तो वे कहते थे, कल बैठे पढ़ रहे थे। आज न जाने क्या हो गया!

निर्मला ने आवेश से काँपते हुए कहा—यह सब आप कर रहे हैं।

मुन्शी जी ने त्योरियाँ बदल कर कहा—मैं कर रहा हूँ! मैं क्या कर रहा हूँ?

निर्मला—अपने दिल से पूछिए।

मुन्शी जी—मैंने तो यही सोचा था कि यहाँ उसका पढ़ने में जी नहीं लगता, वहाँ और लड़कों के साथ ख़ामख्वाह ही पढ़ेगा। यह तो कोई बुरी बात न थी; और मैंने क्या किया?

निर्मला—ख़ूब सोचिए, इसीलिए आपने उन्हें वहाँ भेजा था? आप के मन में कोई और बात न थी?

मुन्शी जी ज़रा हिचकिचाए और अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके बोले—और क्या बात हो सकती थी? भला तुम्हीं सोचो!

निर्मला—ख़ैर, यही सही। अब आप कृपा करके उन्हें आज ही लेते आइएगा, वहाँ रहने से उनकी बीमारी बढ़ जाने का भय है। यहाँ दीदी जी जितनी बीमारदारी कर सकती हैं, दूसरा नहीं कर सकता।

एक क्षण के बाद उसने सिर नीचा करके फिर कहा—मेरे

कारण न लाना चाहते हों, तो मुझे मेरे घर भेज दीजिए। मैं वहाँ आराम से रहूँगी।

मुन्शी जी ने इसका कुछ जवाब न दिया। बाहर चले गए; और एक क्षण में गाड़ी स्कूल की ओर चली।

मन! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य? तू कितनी जल्द रङ्ग बदलता है? इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज़ की चर्ख़ी को भी रङ्ग बदलते कुछ देर लगती है; पर तुझे रङ्ग बदलने में उसका लक्षांश समय भी नहीं लगता! जहाँ अभी वात्सल्य था, वहाँ फिर सन्देह ने आसन जमा लिया।

वह सोचते जाते थे—कहीं उसने बहाना तो नहीं किया है?

दसवाँ परिच्छेद

मन्साराम दो दिन तक गहरी चिन्ता में डूबा रहा। बार-बार अपनी माता की याद आती; न खाना अच्छा लगता, न पढ़ने ही में जी लगता। उसकी काया-पलट सी हो गई। दो दिन गुज़र गए और छात्रालय में रहते हुए भी उसने वह काम न किया, जो स्कूल के मास्टरों ने घर से कर लाने को दिया था। परिणाम-स्वरूप उसे बैञ्च पर खड़ा रहना पड़ा। जो बात कभी न हुई थी, वह आज हो गई! यह असह्य अपमान भी उसे सहना पड़ा!

तीसरे दिन वह इन्हीं चिन्ताओं में मग्न हुआ अपने मन को समझा रहा था—क्या संसार में अकेले मेरी ही माता मरी है। विमाताएँ तो सभी इसी स्वभाव की होती हैं। मेरे साथ कोई नई बात नहीं हो रही है। अब मुझे पुरुषों की भाँति द्विगुण परिश्रम से अपना काम करना चाहिए; जैसे माता-पिता राज़ी रहें, वैसे उन्हें राज़ी रखना चाहिए। इस साल अगर छात्रवृत्ति मिल गई, तो मुझे घर से कुछ लेने की ज़रूरत ही न रहेगी। कितने ही लड़के अपने ही बल पर बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देख कर काम करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। भाग्य के नाम को रोने और कोसने से क्या होगा ?

इतने में जियाराम आकर खड़ा हो गया।

मन्साराम ने पूछा—घर का क्या हाल है जिया ? नई अम्माँ जी तो बहुत प्रसन्न होंगी ?

जिया०—उनके मन का हाल तो मैं नहीं जानता; लेकिन जब से तुम आए हो, उन्होंने एक जून भी खाना नहीं खाया। जब देखो तब रोया ही करती हैं। जब बाबू जी आते हैं, तब अलबत्ता हँसने लगती हैं। तुम चले आए, तो मैं ने भी शाम को अपनी किताबें सँभालीं। यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता था। भुङ्गी चुड़ैल ने जाकर अम्माँ जी से कह दिया। बाबू जी बैठे थे, उनके सामने ही अम्माँ जी ने आकर मेरी किताबें छीन लीं; और रोकर बोलीं—तुम भी चले जाओगे, तो इस घर में कौन रहेगा ? अगर मेरे कारण तुम लोग घर छोड़-छोड़ कर भागे जा रहे हो, तो लो मैं ही कहीं चली जाती हूँ ! मैं तो झल्लाया हुआ था ही, वहाँ बाबू जी भी न थे; बिगड़ कर बोला—आप क्यों कहीं चली जाएँगी ! आपका तो घर है, आप आराम से रहिए। ग़ैर तो हमीं लोग हैं; हम न रहेंगे, तब तो आपको आराम ही आराम रहेगा।

मन्साराम—तुमने ख़ूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा। इस पर और भी झलाई होंगी; और जाकर बाबू जी से शिकायत की होगी ?

जियाराम—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठ कर रोने लगीं, मुझे भी करुणा आ गई। मैं भी रो पड़ा, तब उन्होंने अञ्चल से मेरे आँसू पोंछे; और बोलीं—जिया ! मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे भैया के विषय में तुम्हारे बाबू जी से एक शब्द भी नहीं कहा। मेरे भाग्य में कलङ्क लिखा हुआ है, वही भोग रही हूँ। फिर और न जाने क्या-क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबू जी की बात थी।

मन्साराम ने उद्विग्नता से पूछा—बाबू जी के विषय में क्या कहा, कुछ याद है ?

जियाराम—बातें तो भई मुझे याद नहीं आतीं। मेरी मैमोरी (Memory) कौन बड़ी तेज है; लेकिन उनकी बातों का मतलब कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें बाबू जी को प्रसन्न रखने के लिए यह स्वाँग भरना पड़ रहा है। न जाने धर्म-अधर्म की कैसी बातें करती थीं, जो मैं बिलकुल न समझ सका। मुझे तो अब इसका विश्वास आ गया है कि उनकी इच्छा तुम्हें यहाँ भेजने की न थी।

मन्साराम—तुम इन चालों का मतलब नहीं समझ सकते। ये बड़ी गहरी चालें हैं।

जियाराम—तुम्हारी समझ में होंगी, मेरी समझ में तो नहीं हैं।

मन्साराम—जब तुम ज्योमेटरी (Geometry) नहीं समझ सकते, तो इन बातों को क्या समझ सकोगे ! उस रात को जब मुझे

खाना खाने के लिए बुलाने आई थीं; और मैं उनके आग्रह पर जाने को तैयार भी हो गया था, उस वक़्त बाबू जी को देखते ही उन्होंने जो कैंड़ा बदला वह क्या मैं कभी भूल सकता हूँ ?

जियाराम—यही बात मेरी समझ में भी नहीं आती। अभी कल ही मैं यहाँ से गया तो लगीं तुम्हारा हाल पूछने। मैंने कहा—वह तो कहते थे कि अब कभी इस घर में क़दम न रक्खूँगा। मैंने कुछ झूठ तो कहा नहीं, तुमने मुझसे कहा ही था। इतना सुनना था कि फूट-फूट कर रोने लगीं। मैं दिल में बहुत पछताया कि कहाँ से कहाँ मैंने यह बात कह दी। बार-बार यही कहती थीं, क्या वह मेरे कारण घर छोड़ देंगे? मुझसे इतने नाराज़ हैं? चले गए और मुझसे मिले तक नहीं! खाना तैयार था, खाने तक नहीं आए! हाय! मैं क्या बताऊँ, किस विपत्ति में हूँ! इतने में बाबू जी आ गए। बस, तुरन्त आँखें पोंछ कर मुस्कराती हुई उनके पास चली गईं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आज मुझसे बड़ी मिन्नत की कि उनको साथ लेते आना। आज मैं तुम्हें खींच ले चलूँगा। दो दिन में वह कितनी दुबली हो गई हैं, तुम्हें यह देख कर उन पर दया आएगी। तो चलोगे न?

मन्साराम ने कुछ जवाब न दिया। उसके पैर काँप रहे थे। जियाराम तो हाज़िरी की घण्टी सुन कर भागा; पर वह बैञ्च पर लेट गया और इतनी लम्बी साँस ली, मानो बहुत देर से उसने साँस नहीं ली है। उसके मुख से दुस्सह वेदना में डूबे हुए यह शब्द निकले—हाय ईश्वर! इस नाम के सिवा उसे अब अपना

जीवन निराधार मालूम होता था। इस एक उच्छ्वास में कितना नैराश्य, कितनी समवेदना, कितनी करुणा, कितनी दीनता-प्रार्थना भरी हुई थी, इसका कौन अनुमान कर सकता है? अब सारा रहस्य उसकी समझ में आ रहा था; और बार-बार उसका पीड़ित हृदय आर्त्तनाद कर रहा था—हाय ईश्वर! इतना घोर कलङ्क!!

क्या जीवन में इससे बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती है? क्या संसार में इससे घोरतर नीचता की कल्पना हो सकती है? आज तक किसी पिता ने अपने पुत्र पर इतना निर्दय कलङ्क न लगाया होगा! जिसके चरित्र की सभी प्रशंसा करते थे, जो अन्य युवकों के लिए आदर्श समझा जाता था, जिसने कभी अपवित्र विचारों को अपने पास नहीं फटकने दिया, उसी पर यह घोरतम कलङ्क! मन्साराम को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका दिल फटा जाता है!

दूसरी घण्टी भी बज गई। लड़के अपने-अपने कमरों में गए; पर मन्साराम हथेली पर हाथ रक्खे अनिमेष नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था, मानो उसका सर्वस्व जल-मग्न हो गया हो; मानो वह किसी को मुँह न दिखा सकता हो। स्कूल में ग़ैर-हाज़िरी हो जायगी, जुर्माना हो जायगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं! जब उसका सर्वस्व लुट गया, तो अब इन छोटी-छोटी बातों का क्या भय? इतना बड़ा कलङ्क लगने पर भी अगर जीता रहूँ, तो मेरे जीने को धिक्कार है!

उसी शोकातिरेक की दशा में वह चिल्ला पड़ा—माता जी,

तुम कहाँ हो ? तुम्हारा बेटा, जिस पर तुम प्राण देती थीं—जिसे तुम अपने जीवन का आधार समझती थीं, आज घोर सङ्कट में है ! उसी का पिता उसकी गर्दन पर छुरी फेर रहा है ! हाय, तुम कहाँ हो !!

मन्साराम फिर शान्त चित्त से सोचने लगा—मुझ पर यह सन्देह क्यों हो रहा है ? इसका क्या कारण है ? मुझसें ऐसी कौन सी बात उन्होंने देखी जिससे उन्हें यह सन्देह हुआ। वह मेरे पिता हैं; मेरे शत्रु नहीं हैं, जो अनायास ही मुझ पर अपराध लगाने बैठ जायँ। ज़रूर उन्होंने कोई न कोई बात देखी या सुनी है। उनका मुझ पर कितना स्नेह था ! मेरे बग़ैर भोजन करने न जाते थे, वही मेरे शत्रु हो जायँ, यह बात अकारण नहीं हो सकती !

अच्छा, इस सन्देह का बीजारोपण किस दिन हुआ ? मुझे बोर्डिङ्ग हाउस में ठहराने की बात तो पीछे की है। जिस दिन रात को वह मेरे कमरे में आकर मेरी परीक्षा लेने लगे थे, उसी दिन उनकी त्योरियाँ बदली हुई थीं। उस दिन ऐसी कौन सी बात हुई, जो उन्हें अप्रिय लगी हो ! मैं नई अम्माँ से कुछ खाने को माँगने गया था। बाबू जी उस वक़्त वहाँ बैठे थे। हाँ, अब याद आता है उसी वक़्त उनका चेहरा तमतमा गया था। उसी दिन से नई अम्माँ ने मुझसे पढ़ना छोड़ दिया। अगर मैं जानता कि मेरा घर में आना-जाना, अम्माँ जी से कुछ कहना-सुनना और उन्हें पढ़ाना-लिखाना पिता जी को बुरा लगता है, तो आज क्यों यह नौबत आती ? और नई अम्माँ ! उन पर क्या बीत रही होगी ?

मन्साराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान ही नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोएँ खड़े हो गए! हाय, उनका सरल स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा? आह! मैं कितने भ्रम में था? मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था! मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिता जी का भ्रम शान्त करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह! मैंने उन पर कितना अन्याय किया है। उनकी दशा तो मुझसे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहाँ चला आया, मगर वह कहाँ जाएँगी। जिया कहता था, उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया! हर दम रोया करती हैं! कैसे जाकर समझाऊँ? वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने सिर यह विपत्ति ले रही हैं! वह क्यों बार-बार मेरा हाल पूछती हैं? क्यों बार-बार मुझे बुलाती है? कैसे कह दूँ कि माता मुझे तुमसे ज़रा भी शिकायत नहीं, मेरा दिल तुम्हारी तरफ़ से साफ़ है।

वह अब भी बैठी रो रही होंगी! कितना बड़ा अनर्थ है? बाबू जी को यह क्या हो गया है? क्या इसीलिए विवाह किया था? एक बालिका की हत्या करने ही के लिए उसे लाए थे! इस कोमल पुष्प को मसल डालने ही के लिए तोड़ा था?

उनका उद्धार कैसे होगा? उस निरपराधिनी का मुख कैसे उज्ज्वल होगा? उन्हे केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दण्ड दिया जा रहा है! उनकी सज्जनता का उन्हें यह उपहार मिल रहा है! मैं उन्हे इस प्रकार निर्दय आघात सहते देख

कर बैठा रहूँगा ! अपनी मान-रक्षा के लिए न सही उनकी आत्म-रक्षा के लिए इन प्राणों को बलिदान करना पड़ेगा ! इसके सिवाय उद्धार का और कोई उपाय नहीं। आह ! दिल में कैसे-कैसे अरमान थे। वे सब ख़ाक में मिला देने होंगे। एक सती पर सन्देह किया जा रहा है; और मेरे कारण ! मुझे अपने प्राणों से उसकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्त्तव्य है। इसी में सच्ची वीरता है ! माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूँगा। इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है !

वह दिन भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा। शाम को उसके दोनों भाई आकर घर चलने के लिए आग्रह करने लगे।

सियाराम—चलते क्यों नहीं ? मेरे भैया जी, चले चलो न !

मन्साराम—मुझे .फुरसत नहीं है कि तुम्हारे कहने से चला चलूँ।

जिया०—आखिर कल तो इतवार ही है !

मन्सा०—इतवार को भी काम है।

जिया०—अच्छा, कल आओगे न ?

मन्सा०—नहीं, कल मुझे एक मैच में जाना है।

सिया०—अम्माँ जी मूँग के लड्डू बना रही हैं। न चलोगे तो एक भी न पाओगे। हम-तुम मिल के खा जायँगे; जिया, इन्हें न देंगे।

जिया०—भैया, अगर तुम कल न गए, तो शायद अम्माँ जी यहीं चली आवें।

मन्सा०—सच ! नहीं, ऐसा क्यों करेंगी। यहाँ आईं, तो बड़ी परेशानी होगी। तुम कह देना, वह कहीं मैच देखने गए हैं।

जिया०—मैं झूठ क्यों बोलने लगा। मैं कह दूँगा वह मुँह फुलाए बैठे थे। देख लेना उन्हें साथ लाता हूँ कि नहीं !

सिया०—हम कह देंगे कि आज पढ़ने नहीं गए। पड़े-पड़े सोते रहे। मन्साराम ने इन दूतों से कल आने का वादा करके गला छुड़ाया। जब दोनों चले गए, तो फिर चिन्ता में डूबा। रात भर उसे करवटें बदलते गुज़री। छुट्टी का दिन भी बैठे ही बैठे कट गया, उसे दिन भर शङ्का होती रही कि कहीं अम्माँ जी सचमुच न चली आवें। किसी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनता, तो उसका कलेजा धकधक करने लगता। कहीं आ तो नहीं गईं !

छात्रालय में एक छोटा-सा औषधालय था। एक डॉक्टर साहब सन्ध्या समय एक घण्टे के लिए आ जाया करते थे। अगर कोई लड़का बीमार होता, तो उसे दवा देते। आज वह आए तो मन्साराम कुछ सोचता हुआ उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह मन्साराम को अच्छी तरह जानते थे। उसे देख कर आश्चर्य से बोले—यह तुम्हारी क्या हालत है जी ? तुम तो मानो गले जा रहे हो। कहीं बाज़ार का चस्का तो नहीं पड़ गया ? आख़िर तुम्हें हुआ क्या ? ज़रा यहाँ तो आओ !

मन्साराम ने मुस्करा कर कहा—मुझे ज़िन्दगी का रोग है। आपके पास इसकी भी कोई दवा है ?

डॉक्टर—मैं तुम्हारी परीक्षा करना चाहता हूँ। तुम्हारी तो सूरत ही बदल गई जी; पहचाने भी नहीं जाते!

यह कह कर उन्होंने मन्साराम का हाथ पकड़ लिया; और छाती, पीठ, आँखें, जीभ सब बारी-बारी से देखीं। तब चिन्तित होकर बोले—वकील साहब से मैं आज ही मिलूँगा। तुम्हें थाइसिस हो रहा है। सारे लक्षण उसी के हैं।

मन्साराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—भला कितने दिनों में काम तमाम हो जायगा; डॉक्टर साहब?

डॉक्टर—कैसी बातें करते हो जी! मैं वकील साहब से मिल कर तुम्हें किसी पहाड़ी जगह भेजने की सलाह दूँगा। ईश्वर ने चाहा तो तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे। बीमारी अभी पहले ही स्टेज में है।

मन्साराम—तब तो अभी साल-दो साल की देर मालूम होती है। मैं तो इतना इन्तज़ार नहीं कर सकता। सुनिए, मुझे थाइसिस-वाइसिस कुछ नहीं है; न कोई दूसरी शिकायत ही है। आप बाबू जी को नाहक़ तरद्दुद में न डालिएगा। इस वक्त मेरे सिर में दर्द है, कोई दवा दीजिए। कोई ऐसी दवा हो, जिससे नींद भी आ जाय। मुझे दो रात से नींद नहीं आती।

डॉक्टर साहब ने ज़हरीली दवाइयों की आलमारी खोली; और एक शीशी में थोड़ी सी दवा निकालकर मन्साराम को दी। मन्साराम ने पूछा—यह तो कोई ज़हर है? भला कोई इसे पीले तो मर जाय?

डॉक्टर—नहीं, मर तो न जाय; पर सिर में चक्कर ज़रूर आ जाय।

मन्सा०—कोई ऐसी दवा भी इसमें है, जिसे पीते ही प्राण निकल जायँ?

डॉक्टर—ऐसी एक-दो नहीं, कितनी ही दवाएँ हैं। यह जो शीशी देख रहे हो, इसकी एक बूँद भी पेट में चली जाय तो जान न बचे; आनन-फ़ानन में मौत हो जाय।

मन्सा०—क्यों डॉक्टर साहब, जो लोग ज़हर खा लेते हैं, उन्हें बड़ी तकलीफ़ होती होगी?

डॉक्टर—सभी ज़हरों से तकलीफ़ नहीं होती। बाज़ तो ऐसे हैं कि पीते ही आदमी ठण्डा हो जाता है। यह शीशी इसी क़िस्म की है। इसे पीते ही आदमी बेहोश हो जाता है, फिर उसे होश नहीं आता।

मन्साराम ने सोचा—तब तो प्राण देना बहुत आसान है। फिर लोग क्यों इतना डरते हैं? यह शीशी कैसे मिलेगी? अगर दवा का नाम पूछ कर शहर के किसी दवा-फ़रोश से लेना चाहूँ, तो वह कभी न देगा। ऊँह, इसके मिलने में कोई दिक़्क़त नहीं। यह तो मालूम हो गया कि प्राणों का अन्त बड़ी आसानी से किया जा सकता है। मन्साराम इतना प्रसन्न हुआ, मानो कोई इनाम पा गया हो। उसके दिल पर से एक बोझ सा हट गया। चिन्ता की मेघ-राशि, जो सिर पर मँडला रही थी, छिन्न-भिन्न हो गई। महीनों के बाद आज उसे मन में एक स्फूर्ति का अनुभव हुआ।

कई लड़के थियेटर देखने जा रहे थे, निरीक्षक से आज्ञा ले ली थी। मन्साराम भी उनके साथ थियेटर देखने चला गया। ऐसा खुश था, मानो उससे ज्यादा सुखी जीव संसार में कोई नहीं है। थियेटर में नक़ल देख कर तो वह हँसते-हँसते लोट गया। बार-बार तालियाँ बजाने और 'वंसमोर !' की हाँक लगाने में सबसे पहला नम्बर उसी का था। गाना सुन कर वह मस्त हो जाता था, और 'ओहो हो !' करके चिल्ला उठता था। दर्शकों की निगाहें बार-बार उसकी तरफ़ उठ जाती थीं। थियेटर के पात्र भी उसी की ओर ताकते थे; और यह जानने को उत्सुक थे कि कौन महाशय इतने रसिक और भावुक हैं। उसके मित्रों को उसकी उच्छृङ्खलता पर आश्चर्य हो रहा था। वह बहुत ही शान्तचित्त, गम्भीर स्वभाव का युवक था। आज वह क्यों इतना हास्यशील हो गया है, क्यों उसके विनोद का वारापार नहीं है ?

दो बजे रात को थियेटर से लौटने पर भी उसका हास्योन्माद कम नहीं हुआ। उसने एक लड़के की चारपाई उलट दी, कई लड़कों के कमरों के द्वार बाहर से बन्द कर दिए; और उन्हें भीतर से खटखट करते सुन कर हँसता रहा। यहाँ तक कि छात्रालय के अध्यक्ष महोदय की नींद भी शोर-गुल सुन कर खुल गई; और उन्होंने मन्साराम की शरारत पर खेद प्रकट किया। कौन जानता है कि उसके अन्तस्तल में कितनी भीषण क्रान्ति हो रही है ? सन्देह के निर्दय आघात ने उसकी लज्जा और आत्म-सम्मान को कुचल डाला है ! उसे अपमान और तिरस्कार का लेश-

मात्र भी भय नहा है। यह विनोद नहीं—उसकी आत्मा का करुण विलाप है। जब और सब लड़के सो गए, तो वह भी चारपाई पर लेटा, लेकिन उसे नींद नहीं आई। एक क्षण के बाद वह उठ बैठा; और अपनी सारी पुस्तकें बाँध कर सन्दूक़ में रख दीं। जब मरना ही है तो पढ़ कर क्या होगा ? जिस जीवन में ऐसी-ऐसी बाधाएँ हैं—ऐसी-ऐसी यातनाएँ हैं, उससे मृत्यु कहीं अच्छी !

यही सोचते-सोचते तड़का हो गया। तीन रात से वह एक क्षण भी न सोया था। इस वक़्त वह उठा तो उसके पैर थर-थर काँप रहे थे; और सिर में चक्कर सा आ रहा था। आँखें जल रही थीं; और शरीर के सारे अङ्ग शिथिल हो रहे थे। दिन चढ़ता जाता था; और उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि उठ कर मुँह-हाथ धो डाले। एकाएक उसने भुङ्गी को रूमाल में कुछ लिए हुए एक कहार के साथ आते देखा। उसका कलेजा सन हो गया। हाय ईश्वर ! वह आ गईं ! अब क्या होगा ? भुङ्गी अकेले नहीं आई होगी, बग्घी ज़रूर बाहर खड़ी होगी। कहाँ तो उससे उठा न जाता था। कहाँ भुङ्गी को देखते ही दौड़ा और घबराई हुई आवाज़ में बोला—अम्माँ जी भी आई हैं क्या रे ? जब मालूम हुआ कि अम्माँ जी नहीं आईं, तब उसका चित्त शान्त हुआ। भुङ्गी ने कहा—भैया ! तुम कल गए नहीं, बहू जी तुम्हारी राह देखती रह गईं। उनसे क्यों रूठे हो भैया ? वह तो कहती हैं, मैंने उनकी कुछ भी शिकायत नहीं की है। मुझसे आज रोकर कहने

लगीं—उनके पास यह मिठाई लेती जा और कहना मेरे कारण घर क्यों छोड़ दिया है ? कहाँ रख दूँ यह थाली ?

मन्साराम ने रुखाई से कहा—थाली अपने सिर पर पटक दे, चुड़ैल वहाँ से चली है मिठाई लेकर ! ख़बरदार, जो फिर कभी इधर आई। सौग़ात लेकर चली हैं ! जाकर कह देना मुझे उनकी मिठाई नहीं चाहिए ! जाकर कह देना तुम्हारा घर है, तुम रहो ; वहाँ वे बड़े आराम से हैं। ख़ूब खाते और मौज करते हैं। सुनती है, बाबू जी के मुँह पर कहना, समझ गई ? मुझे किसी का डर नहीं है ; और जो करना चाहें कर डालें, जिससे दिल में कोई अरमान न रह जाय। कहें तो इलाहाबाद, लखनऊ, क़लकत्ता चला जाऊँ। मेरे लिए जैसे बनारस वैसे दूसरा शहर ! यहाँ क्या रक्खा है।

भुङ्गी—भैया, मिठाई रख लो, नहीं रो-रोकर मर जायँगी। सच मानो, रोकर मर जायँगी।

मन्साराम ने आँसुओं के उठते हुए वेग को दबा कर कहा—मर जायँगी, मेरी बला से ! कौन मुझे बड़ा सुख दे दिया है, जिसके लिए पछताऊँ। मेरा तो उन्होंने सर्वनाश कर दिया। कह देना मेरे पास कोई सँदेशा न भेजें, कुछ जरूरत नहीं !

भुङ्गी—भैया, तुम तो कहते हो यहाँ ख़ूब खाता हूँ और मौज करता हूँ ; मगर देह तो आधी भी नहीं रही। जैसे आए थे उसके आधे भी नहीं रहे !

मन्साराम—यह तेरी आँखों का फेर है, देखना दो-चार दिन में

मुटा कर कोल्हू हो जाता हूँ कि नहीं। उनसे यह भी कह देना कि रोना-धोना बन्द करें। जो मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खातीं, तो मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है, तो अब चैन से रहें। चली हैं प्रेम दिखाने! मैं ऐसे त्रिया-चरित्र बहुत पढ़े बैठा हूँ।

भुङ्गी चली गई। मन्साराम को उससे बातें करते ही करते कुछ ठण्ढ मालूम होने लगी थी। यह अभिनय करने के लिए उसे अपने मनोभावों को जितना दबाना पड़ा था, वह उसके लिए असाध्य था। उसका आत्म-सम्मान उसे इस कुटिल व्यापार का जल्द से जल्द अन्त कर देने के लिए बाध्य कर रहा था; पर इसका परिणाम क्या होगा? निर्मला क्या यह आघात सह सकेगी? अब तक वह मृत्यु-कल्पना करते समय किसी अन्य प्राणी का विचार न करता था; पर आज एकाएक उसे ज्ञात हुआ कि मेरे जीवन के साथ एक और प्राणी का जीवन-सूत्र भी बँधा हुआ है। निर्मला यही समझेगी कि मेरी निष्ठुरता ही ने इनकी जान ली। यह समझ कर उसका कोमल हृदय क्या फट न जाएगा? उसका जीवन तो अब भी सङ्कट में है। सन्देह के कठोर पञ्जे में फँसी हुई अबला क्या अपने को हत्यारिणी समझ कर बहुत दिन जीवित रह सकती है?

मन्साराम ने चारपाई पर लेट कर लिहाफ़ ओढ़ लिया, फिर भी मारे सर्दी से कलेजा काँप रहा था। थोड़ी ही देर में उसे ज़ोर से ज्वर चढ़ आया—वह बेहोश हो गया। इस अचेत दशा में

उसे भाँति-भाँति के स्वप्न दिखाई देने लगे। थोड़ी देर के बाद चौंक पड़ता—आँखें खुल जातीं; फिर बेहोश हो जाता।

सहसा वकील साहब की आवाज़ सुन कर वह चौंक पड़ा। हाँ, वकील साहब ही की आवाज़ थी। उसने लिहाफ़ फेंक दिया और चारपाई से उतर कर नीचे खड़ा हो गया। उसके मन में एक आवेग हुआ कि इसी वक्त इनके सामने प्राण दे दूँ। उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं मर जाऊँ, तो इन्हें सच्ची ख़ुशी होगी। शायद इसीलिए यह देखने आए हैं कि मेरे मरने में कितनी देर है। वकील साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिसमें वह गिर न पड़े; और पूछा—कैसी तबीयत है लल्लू, लेटे क्यों न रहे? लेट जाओ, लेट जाओ; तुम खड़े क्यों हो गए?

मन्साराम—मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है। आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ।

मुन्शी जी ने कुछ जवाब न दिया। लड़के की दशा देख कर उनकी आँखों से आँसू निकल आए। वह हृष्ट-पुष्ट बालक, जिसे देख कर चित्त प्रसन्न हो जाता था, अब सूख कर काँटा हो गया था। पाँच-छः दिन में ही वह इतना दुबला हो गया था कि उसे पहचानना कठिन था। मुन्शी जी ने उसे आहिस्ता से चारपाई पर लिटा दिया; और लिहाफ़ अच्छी तरह ओढ़ा कर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। कहीं लड़का हाथ से तो न जायगा? यह ख़्याल करके वह शोक से विह्वल हो गए; और स्टूल पर बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगे। मन्साराम भी लिहाफ़ में मुँह लपेटे

रो रहा था। अभी थोड़े ही दिनों पहले उसे देख कर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था ; लेकिन आज उसे इस दारुण दशा में देख कर भी वह सोच रहा है कि इसे घर ले चलूँ या नहीं। क्या यहाँ दवा नहीं हो सकती ? मैं यहाँ चौबीसों घण्टे बैठा रहूँगा। डॉक्टर साहब यहाँ हैं ही, कोई दिक़्क़त न होगी। घर ले चलने में उन्हें बाधाएँ ही बाधाएँ दिखाई देती थीं ; सबसे बड़ा भय यह था कि वहाँ निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी; और मैं मना न कर सकूँगा—यह उनके लिए असह्य था।

इतने में अध्यक्ष ने आकर कहा—मैं तो समझता हूँ, आप इन्हें अपने साथ ले जायँ। गाड़ी है ही, कोई तकलीफ़ न होगी। यहाँ अच्छी तरह देख-भाल न हो सकेगी।

मुन्शी जी—हाँ, आया तो मैं इसी ख्याल से था ; लेकिन इनकी हालत बहुत ही नाज़ुक मालूम होती है। ज़रा सी असावधानी होने से सरसाम हो जाने का भय है।

अध्यक्ष—यहाँ से उन्हें ले जाने में तो थोड़ी सी दिक़्क़त ज़रूर है ; लेकिन यह तो आप ख़ुद ही सोच सकते हैं कि घर पर जो आराम मिल सकता है, वह यहाँ किसी तरह नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त किसी बीमार लड़के को यहाँ रखना नियम-विरुद्ध भी है।

मुन्शी जी—कहिए तो मैं हेडमास्टर से आज्ञा ले लूँ। मुझे इनको यहाँ से इस हालत में ले जाना किसी तरह मुनासिब नहीं मालूम होता।

अध्यक्ष ने हेडमास्टर का नाम सुना, तो समझे कि यह महाशय मुझे धमकी दे रहे हैं। ज़रा तिनक कर बोले—हेडमास्टर नियम-विरुद्ध कोई बात नहीं कर सकते। मैं इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी कैसे ले सकता हूँ?

अब क्या हो? क्या घर ले जाना ही पड़ेगा? यहाँ रखने का तो यह बहाना था कि ले जाने से बीमारी बढ़ जाने की शङ्का है। यहाँ से ले जाकर अस्पताल में ठहराने के लिए कोई बहाना नहीं है। जो सुनेगा वह यही कहेगा कि डॉक्टर की फ़ीस बचाने के लिए लड़के को अस्पताल फेंक आए; पर अब ले जाने के सिवा और कोई उपाय न था। अगर अध्यक्ष महोदय इस वक्त रिश्वत लेने पर तैयार हो जाते, तो शायद दो-चार साल का वेतन ले लेते; लेकिन क़ायदे के पाबन्द लोगों में इतनी बुद्धि, इतनी चतुराई कहाँ! अगर इस वक्त मुन्शी जी को कोई आदमी ऐसा उज्र सुझा देता, जिसमें उन्हें मन्साराम को घर न ले जाना पड़े, तो वह आजीवन उसका एहसान मानते। सोचने का समय भी नहीं था। अध्यक्ष महोदय शैतान की तरह सिर पर सवार थे। विवश होकर मुन्शी जी ने दोनों सईसों को बुलाया; और मन्साराम को उठाने लगे। मन्साराम अर्द्ध-चेतना की दशा में था। चौंक कर बोला—क्या है? कौन है?

मुन्शी जी—कोई नहीं है; बेटा! मैं तुम्हें घर ले चलना चाहता हूँ; आओ मैं गोद में उठा लूँ।

मन्साराम—मुझे घर क्यों ले चलते हैं? मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।

मुन्शी जी—वहाँ तो रह नहीं सकते, नियम ही ऐसा है।

मन्साराम—कुछ भी हो, मैं वहाँ न जाऊँगा। मुझे और कहीं ले चलिए—किसी पेड़ के नीचे, किसी झोपड़े में, जहाँ चाहे रखिए; पर घर न ले चलिए।

अध्यक्ष ने मुन्शी जी से कहा—आप इन बातों का ख्याल न करें, यह तो होश में नहीं हैं।

मन्साराम—कौन होश में नहीं है? मैं होश में नहीं हूँ? किसी को गालियाँ देता हूँ, दाँत काटता हूँ? क्यों होश में नहीं हूँ? मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए, जो कुछ होना होगा यहीं होगा, अगर ऐसा ही है तो मुझे अस्पताल ले चलिए। मैं वहाँ पड़ा रहूँगा। जीना होगा जिऊँगा, मरना होगा मरूँगा; लेकिन घर किसी तरह भी न जाऊँगा।

यह ज़ोर पाकर मुन्शी जी फिर अध्यक्ष से मिन्नतें करने लगे; लेकिन वह क़ायदे का पाबन्द आदमी कुछ सुनता ही न था। अगर छूत की बीमारी हुई और किसी दूसरे लड़के को छूत लग गई, तो कौन उसका जवाबदेह होगा? इस तर्क के सामने मुन्शीजी की क़ानूनी दलीलें भी मात हो गईं।

आख़िर मुन्शी जी ने मन्साराम से कहा—बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इन्कार हो रहा है? वहाँ तो सभी तरह का आराम रहेगा। मुन्शी जी ने कहने को तो यह बात कह दी; लेकिन डर रहे थे कि कहीं सचमुच मन्साराम चलने पर राज़ी न हो जाय। वह मन्साराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे; और

उसकी सारी ज़िम्मेदारी मन्साराम ही के सिर डालना चाहते थे। यह अध्यक्ष के सामने की बात थी, यह इस बात की साक्षी दे सकते थे कि मन्साराम अपनी ज़िद से अस्पताल जा रहा है। मुन्शी जी का इसमें लेशमात्र भी दोष नहीं है।

मन्साराम ने झल्ला कर कहा—नहीं, नहीं, नहीं, सौ बार नहीं। मैं घर नहीं जाऊँगा। मुझे अस्पताल ले चलिए और घर के सब आदमियों को मना कर दीजिए कि मुझे देखने न आवें॥ मुझे कुछ नहीं हुआ है, बिलकुल बीमार नहीं हूँ। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपने पाँव से चल सकता हूँ।

वह उठ खड़ा हुआ और उन्मत्त की भाँति द्वार की ओर चला; लेकिन पैर लड़खड़ा गए। यदि मुन्शी जी ने सँभाल न लिया होता, तो उसे बड़ी चोट आती। दोनों नौकरों की मदद से मुन्शी जी उसे बग्घी के पास लाए और अन्दर बिठा दिया।

गाड़ी अस्पताल की ओर चली। वही हुआ जो मुन्शी जी चाहते थे। इस शोक में भी उनका चित्त सन्तुष्ट था। लड़का अपनी इच्छा से अस्पताल जा रहा था, क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं था कि घर से इसे कोई स्नेह नहीं है? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मन्साराम निर्दोष है? वह उस पर अकारण ही भ्रम कर रहे थे।

लेकिन ज़रा ही देर में इस तुष्टि की जगह उनके मन में ग्लानि का भाव जाग्रत हुआ। वह अपने प्राण-प्रिय पुत्र को घर न ले जाकर अस्पताल लिये जा रहे थे। उनके विशाल भवन में उनके

पुत्र के लिए भी जगह न थी, इस दशा में भी, जबकि उसका जीवन सङ्कट में पड़ा हुआ था, कितनी विडम्बना है ?

एक क्षण के बाद एकाएक मुन्शी जी के मन में प्रश्न उठा— कहीं मन्साराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया ? इसीलिए तो उसे घर से घृणा नहीं हो गई है ! अगर ऐसा है, तो ग़ज़ब हो जायगा !

उस अनर्थ की कल्पना ही से मुन्शी जी के रोएँ खड़े हो गए और कलेजा धक-धक करने लगा। हृदय में एक धक्का सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह आग जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेंकने के लिए जलाई थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चात्ताप और शङ्का से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रुदन की ध्वनि बाहर निकल सकती, तो सुनने वाले रो पड़ते ! उनके आँसू बाहर निकल सकते, तो उनका तार बँध जाता ! उन्होंने पुत्र के वर्ण-हीन मुख की ओर एक बार वात्सल्यपूर्ण नेत्रों से देखा, वेदना से विकल होकर उसे छाती से लगा लिया; और इतना रोए कि हिचकी बँध गई।

सामने अस्पताल का फाटक दिखाई दे रहा था !

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मुन्शी तोताराम सन्ध्या समय कचहरी से घर पहुँचे, तो निर्मला ने पूछा—उन्हें देखा, क्या हाल है? मुन्शी जी ने देखा कि निर्मला के मुख पर नाममात्र को भी शोक या चिन्ता का चिह्न नहीं है, उसका बनाव-सिङ्गार और दिनों से भी कुछ गाढ़ा हुआ है—मसलन् वह गले में हार न पहनती थी; पर आज वह भी गले में शोभा दे रहा था। झूमर से भी उसे बहुत प्रेम न था; पर आज वह भी महीन रेशमी साड़ी के नीचे, काले-काले केशों के ऊपर, फ़ानूस के दीपक की भाँति चमक रहा था।

मुन्शी जी ने मुँह फेर कर कहा—बीमार है, और क्या हाल बताऊँ?

निर्मला—तुम तो उन्हें यहाँ लाने गए थे?

मुन्शी जी ने झुँझला कर कहा—वह नहीं आया, तो क्या मैं ज़बरदस्ती उठा लाता? कितना समझाया कि बेटा घर चलो; वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ़ न होने पावेगी; लेकिन घर का नाम सुन

कर उसे जैसे दूना ज्वर हो जाता था। कहने लगा—मैं यहाँ मर जाऊँगा; लेकिन घर न जाऊँगा। आखिर मजबूर होकर अस्पताल पहुँचा आया; और क्या करता ?

रुक्मिणी भी आकर बरामदे में खड़ी हो गई थीं; बोलीं—वह जनम का हठी है, यहाँ किसी तरह न आवेगा और यह भी देख लेना, वहाँ अच्छा भी न होगा !

मुन्शी जी ने कातर स्वर में कहा—तुम दो-चार दिन के लिये वहाँ चली जाओ, तो बड़ा अच्छा हो ; बहिन ! तुम्हारे रहने से उसे तस्कीन होती रहेगी। मेरी बहिन, मेरी यह विनय मान लो। अकेले वह रो-रोकर प्राण दे देगा। बस, हाय अम्माँ ! हाय अम्माँ ! की रट लगा-लगा कर रोया करता है। मैं वहीं जा रहा हूँ, मेरे साथ ही चली चलो ! उसकी दशा अच्छी नहीं ! बहिन, वह सूरत ही नहीं रही ! देखें ईश्वर क्या करते हैं ?

यह कहते-कहते मुन्शी जी की आँखों से आँसू बहने लगे ; लेकिन रुक्मिणी अविचलित भाव से बोलीं—मैं जाने को तैयार हूँ। मेरे वहाँ रहने से अगर मेरे लाल के प्राण बच जायँ, तो मैं सिर के बल दौड़ी जाऊँ ; लेकिन मेरा कहना गिरह बाँध लो भैया ! वहाँ वह अच्छा न होगा। मैं उसे ख़ूब पहचानती हूँ। उसे कोई बीमारी नहीं है, केवल घर से निकाले जाने का शोक है। यही दुख ज्वर के रूप में प्रकट हुआ है। तुम एक नहीं, लाख दवा करो—सिविल-सर्जन को ही क्यों न दिखाओ, उसे कोई दवा असर न करेगी !

मुन्शी जी—बहिन, उसे घर से निकाला किसने है ? मैंने तो केवल उसकी पढ़ाई के ख्याल से उसे वहाँ भेजा था।

रुक्मिणी—तुमने चाहे जिस ख्याल से भेजा हो; लेकिन यह बात उसे लग गई है। मैं तो अब किसी गिनती में नहीं हूँ, मुझे किसी बात में बोलने का कोई अधिकार नहीं ! मालिक तुम, मालिकिन तुम्हारी स्त्री !! मैं तो केवल तुम्हारी रोटियों पर पड़ी हुई अभागिनी विधवा हूँ ! मेरी कौन सुनेगा और कौन पर्वाह करेगा ? लेकिन बिना बोले रहा नहीं जाता ! मन्सा तभी अच्छा होगा, जब घर आवेगा—जब तुम्हारा हृदय वही हो जायगा, जो पहले था।

यह कह कर रुक्मिणी वहाँ से चली गईं। उनकी ज्योति-हीन पर अनुभवपूर्ण आँखों के सामने जो चरित्र हो रहे थे, उनका रहस्य वह ख़ूब समझती थी; और उनका सारा क्रोध निरपराधिनी निर्मला ही पर उतरता था। इस समय भी वह यह कहते-कहते रुक गईं कि जब तक यह लक्ष्मी इस घर में रहेंगी, इस घर की दशा बिगड़ती ही जायगी; पर उसके प्रकट रूप से न कहने पर भी उसका आशय मुन्शी जी से छिपा नहीं रहा। उनके चले जाने पर मुन्शी जी ने सिर झुका लिया और सोचने लगे। उन्हें अपने ऊपर इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि दीवार से सिर पटक कर प्राणों का अन्त कर दें। उन्होंने क्यों विवाह किया था ? विवाह करने की क्या जरूरत थी , ईश्वर ने उन्हें एक नहीं, तीन-तीन पुत्र दिए थे। उनकी अवस्था भी ५० के लगभग पहुँच गई थी, फिर उन्होंने क्यों विवाह किया ? क्या इसी बहाने ईश्वर को उनका

सर्वनाश करना मन्जूर था ? उन्होंने सिर उठा कर एक बार निर्मला की सहास—पर निश्चल मूर्ति देखी और अस्पताल चले गए। निर्मला की सहास-छवि ने उनका चित्त शान्त कर दिया था। आज कई दिनों के बाद उन्हें यह शान्ति मुयस्सर हुई थी। प्रेम-पीड़ित हृदय इस दशा में क्या इतना शान्त और अविचलित रह सकता है ? नहीं, कभी नहीं ! हृदय की चोट भाव-कौशल से नहीं छिपाई जा सकती। अपने चित्त की दुर्बलता पर इस समय उन्हें अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने अकारण ही सन्देह को हृदय में स्थान देकर इतना अनर्थ किया। मन्साराम की ओर से भी उनका मन निःशङ्क हो गया। हाँ, उसकी जगह अब एक नई शङ्का उत्पन्न हो गई। क्या मन्साराम भाँप तो नहीं गया ? क्या भाँप कर ही तो घर आने से इन्कार नहीं कर रहा है ? अगर वह भाँप गया है, तो महान् अनर्थ हो जायगा। उसकी कल्पना ही से उनका मन दहल उठा। उनकी देह की सारी हड्डियाँ मानो इस हाहाकार पर पानी डालने के लिए व्याकुल हो उठीं ! उन्होंने कोचवान से घोड़े को तेज़ चलाने को कहा। आज कई दिनों के बाद उनके हृदय-मण्डल पर छाया हुआ सघन-घन फट गया था ; और प्रकाश की लहरें अन्दर से निकलने के लिये व्यग्र हो रही थीं। उन्होंने बाहर सिर निकाल कर देखा, कोचवान सो तो नहीं रहा है। घोड़े की चाल उन्हें इतनी मन्द कभी न मालूम हुई थी।

अस्पताल पहुँच कर वह लपके हुए मन्साराम के पास गए। देखा तो डॉक्टर साहब उसके सामने चिन्ता में मग्न खड़े थे।

मुन्शी जी के हाथ-पाँव फूल गए। मुँह से शब्द न निकल सका। भरभराई हुई आवाज़ में बड़ी मुश्किल से बोले—क्या हाल है, डॉक्टर साहब ? यह कहते-कहते वह रो पड़े और जब डॉक्टर साहब को उनके प्रश्न का उत्तर देने में एक क्षण का विलम्ब हुआ, तब तो उनके प्राण नहों में समा गए। उन्होंने पलङ्ग पर बैठ कर अचेत बालक को गोद में उठा लिया; और बालकों की भाँति सिसक-सिसक कर रोने लगे !! मन्साराम की देह तवे की तरह जल रही थी। मन्साराम ने एक बार आँखें खोलीं। आह ! कितनी भयङ्कर और उसके साथ ही कितनी दीन दृष्टि थी ! मुन्शी जी ने बालक को कण्ठ से लगा कर डॉक्टर से पूछा—क्या हाल है साहब, आप चुप क्यों हैं ?

डॉक्टर ने सन्दिग्ध स्वर में कहा—हाल जो कुछ है, वह आप देख ही रहे हैं। १०६ डिग्री का ज्वर है ; और मैं क्या बतलाऊँ ? अभी ज्वर का प्रकोप बढ़ता ही जाता है। मेरे किए जो कुछ हो सकता है, कर रहा हूँ। ईश्वर मालिक हैं ! जब से आप गए हैं, मैं एक मिनिट के लिए भी यहाँ से नहीं हिला। भोजन तक नहीं कर सका। हालत इतनी नाज़ुक है कि एक मिनिट में क्या हो जायगा, नहीं कहा जा सकता। यह महाज्वर है, बिलकुल होश नहीं है। रह-रह कर डिलीरियम (Delirium) का दौरा सा हो जाता है। क्या घर में इन्हें किसी ने कुछ कहा है ! बार-बार अम्माँ जी, तुम कह हो ? यही आवाज़ मुँह से निकलती है !

डॉक्टर साहब यह कह ही रहे थे कि सहसा मन्साराम उठ

कर बैठ गया ; और एक धक्के से मुन्शी जी को चारपाई के नीचे ढकेल कर उन्मत्त स्वर में बोला—क्यों धमकाते हैं ? आप मार डालिए, मार डालिए, अभी मार डालिए !! तलवार नहीं मिलती ? रस्सी का फन्दा है या वह भी नहीं ? मैं अपने गले में लगा लूँगा । हाय अम्माँ जी, तुम कहाँ हो ? यह कहते-कहते वह फिर अचेत होकर गिर पड़ा !

मुन्शी जी एक क्षण तक मन्साराम की शिथिल मुद्रा की ओर व्यथित नेत्रों से ताकते रहे; फिर सहसा उन्होंने डॉक्टर साहब का हाथ पकड़ लिया ; और अत्यन्त दीनतापूर्ण आग्रह से बोले—डॉक्टर साहब, इस लड़के को बचा लीजिए—ईश्वर के लिए बचा लीजिए, नहीं मेरा सर्वनाश हो जायगा ! मैं अमीर नहीं हूँ; लेकिन आप जो कुछ कहेंगे, वह हाजिर करूँगा ; इसे बचा लीजिए ! आप बड़े से बड़े डॉक्टरों को बुलाइए, और उनकी राय लीजिए; मैं सब खर्च दे दूँगा ! इसकी यह दशा अब नहीं देखी जाती ! हाय, मेरा होनहार बेटा !

डॉक्टर साहब ने करुण-स्वर में कहा—बाबू साहब, मैं आप से सत्य कहता हूँ कि मैं इनके लिए अपनी तरफ़ से कोई बात उठा नहीं रख रहा हूँ। अब आप दूसरे डॉक्टरों से सलाह लेने कहते हैं। मैं अभी डॉक्टर लहिरी, डॉक्टर भाटिया और डॉक्टर माथुर को बुलाता हूँ। विनायक शास्त्री को भी बुलाए लेता हूँ; लेकिन मैं आपको व्यर्थ का आश्वासन नहीं देना चाहता—हालत नाज़ुक है।

मुन्शी जी ने रोते हुए कहा—नहीं, डॉक्टर साहब, यह शब्द मुँह से न निकालिए। हालत इसके दुश्मनों की नाज़ुक हो। ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलकत्ता और बम्बई के डॉक्टरों को तार दीजिए। मैं ज़िन्दगी भर आपकी ग़ुलामी करूँगा। यही मेरे कुल का दीपक है! यही मेरे जीवन का आधार है! मेरा हृदय फटा जा रहा है! कोई ऐसी दवा दीजिए, जिससे इसे होश आ जाय। मैं ज़रा अपने कानों से उसकी बातें सुनूँ! जानूँ कि उसे क्या कष्ट हो रहा है! हाय, मेरा बच्चा!!

डॉक्टर—आप ज़रा दिल को तस्कीन दीजिए। आप बुज़ुर्ग आदमी हैं, यों हाय-हाय करने से और डॉक्टरों की फ़ौज जमा करने से कोई नतीजा न निकलेगा। शान्त होकर बैठिए, मैं शहर के लोगों को बुला रहा हूँ; देखिए, वे क्या कहते हैं? आप तो ख़ुद ही बदहवास हुए जाते हैं।

मुन्शी जी—अच्छा डॉक्टर साहब, मैं अब न बोलूँगा, ज़बान तक न खोलूँगा, आप जो चाहें करें, बच्चा अब आपके हाथ में है। आप ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। मैं इतना ही चाहता हूँ कि ज़रा इसे होश आ जाय, मुझे पहचान ले, मेरी बातें समझने लगे। क्या कोई ऐसी दवा नहीं? कोई ऐसी सञ्जीवनी बूटी नहीं? बस, मैं इससे दो-चार बातें कर लेता!

यह कहते-कहते मुन्शी जी फिर आवेश में आकर मन्साराम से बोले—बेटा, ज़रा आँखें खोलो, कैसा जी है? मैं तुम्हारे पास

बैठा हुआ रो रहा हूँ, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरा दिल तुम्हारी ओर से साफ़ है।

डॉक्टर—फिर आपने अनर्गल बातें करनी शुरू कीं। अरे साहब, आप बच्चे नहीं हैं—बुज़ुर्ग आदमी हैं, ज़रा धैर्य से काम लीजिए!

मुन्शी जी—अच्छा डॉक्टर साहब, अब न बोलूँगा, ख़ता हुई। आप जो चाहें कीजिए। मैंने सब कुछ आप पर छोड़ दिया। कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मैं इसे इतना समझा सकूँ कि मेरा दिल साफ़ है। आप ही कह दीजिए डॉक्टर साहब! कह दीजिए, तुम्हारा अभागा पिता बैठा रो रहा है। उसका दिल तुम्हारी तरफ़ से बिलकुल साफ़ है। उसे कुछ भ्रम हुआ था, वह अब दूर हो गया। बस, इतना ही कह दीजिए। मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं चुपचाप बैठा हूँ। ज़बान तक नहीं खोलता; लेकिन आप इतना ज़रूर कह दीजिए!

डॉक्टर—ईश्वर के लिए बाबू साहब! ज़रा सब्र कीजिए, वरना मुझे मजबूर होकर आपसे कहना पड़ेगा कि घर जाइए। मैं ज़रा दफ़्तर में जाकर डॉक्टरों को ख़त लिख रहा हूँ। आप चुपचाप बैठे रहिएगा।

निर्दयी डॉक्टर! जवान बेटे की यह दशा देख कर कौन पिता है, जो धैर्य से काम लेगा? मुन्शी जी बहुत गम्भीर स्वभाव के मनुष्य थे। यह भी जानते थे कि इस वक़्त हाय-हाय मचाने से कोई नतीजा नहीं; लेकिन फिर भी इस समय शान्त बैठना उनके

लिए असम्भव था। अगर दैव-गति से यह बीमारी होती, तो वह शान्त हो सकते थे, दूसरों को समझा सकते थे, ख़ुद डॉक्टरों को बुला सकते थे; लेकिन क्या यह जान कर भी वह धैर्य रख सकते थे कि यह सब आग मेरी ही लगाई हुई है? कोई पिता इतना वज्र-हृदय हो सकता है? उनका रोम-रोम इस वक़्त उन्हें धिक्कार रहा था। उन्होंने सोचा, मुझमें यह दुर्भावना उत्पन्न ही क्यों हुई? मैंने क्यों बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के ऐसी भीषण कल्पना कर डाली? अच्छा, मुझे उस दशा में क्या करना चाहिए था? जो कुछ उन्होंने किया, उसके सिवा वह और क्या करते— इसका वह निश्चय न कर सके। वास्तव में विवाह के बन्धन में पड़ना ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था। हाँ, यही सारे उपद्रव की जड़ है!

मगर मैंने यह कोई अनोखी बात नहीं की। सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं। उनका जीवन आनन्द से कटता है। आनन्द की इच्छा से ही तो हम विवाह करते हैं। इसी मुहल्ले में सैकड़ों आदमियों ने दूसरी, तीसरी, चौथी यहाँ तक कि सातवीं शादियाँ की हैं; और मुझसे भी कहीं अधिक अवस्था में! वह जब तक जिये आराम ही से जिये। यह भी नहीं हुआ कि सभी स्त्री से पहले मर गए हों। दुहाज-तिहाज होने पर भी कितने ही फिर रँडुवे हो गए। अगर मेरी जैसी दशा सब की होती, विवाह का नाम ही कौन लेता? मेरे पिता जी ही ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था; और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ से कम न

थी। हाँ, इतनी बात ज़रूर है कि तब और अब में कुछ अन्तर हो गया है। पहले स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी न होती थीं। पति चाहे कैसा ही हो, उसे पूज्य समझती थीं या यह बात हो कि पुरुष सब कुछ देख कर भी बेहयाई से काम लेता हो; अवश्य यही बात है। जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी? लेकिन मैं तो कुछ ऐसा बुड्ढा न था। मुझे देख कर कोई चालीस से अधिक नहीं बता सकता। कुछ भी हो, जवानी ढल जाने पर जवान औरत से विवाह करके कुछ न कुछ बेहयाई ज़रूर करनी पड़ती है; इसमें सन्देह नहीं! स्त्री स्वभाव से लज्जाशीला होती है। कुलटाओं की बात तो दूसरी है; पर साधारणतः स्त्री पुरुष से कहीं ज्यादा संयमशीला होती है। जोड़ का पति पाकर वह चाहे पर-पुरुष से हँसी-दिल्लगी कर ले; पर उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आँखें उठा कर न देखे, पर उसका चित्त दुखी रहता है। वह पक्की दीवार है, उसमें सबरी का असर नहीं होता। यह कच्ची दीवार है और उसी वक्त तक खड़ी रहती है, जब तक उस पर सबरी न चलाई जाय!

इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े मुन्शी जी को एक झपकी आ गई। मन के भावों ने तत्काल स्वप्न का रूप धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि उनकी पहली स्त्री मन्साराम के सामने खड़ी कह रही है—स्वामी, यह तुमने क्या किया? जिस बालक को मैंने अपना रक्त पिला-पिला कर पाला, उसको तुमने इतनी निर्दयता से मार डाला।

ऐसे आदर्श-चरित्र बालक पर तुमने इतना घोर कलङ्क लगा दिया! अब बैठे क्या बिसूरते हो? तुमने उससे हाथ धो लिया। मैं तुम्हारे निर्दय हाथों से छीन कर उसे अपने साथ लिए जाती हूँ। तुम तो इतने शक्की कभी न थे, क्या विवाह करते ही शक को भी गले बाँध लाए? इस कोमल हृदय पर इतना कठोर आघात! इतना भीषण कलङ्क! इतना बड़ा अपमान सह कर जीने वाले कोई बेहया होंगे! मेरा बेटा नहीं सह सकता। यह कहते-कहते उसने बालक को गोद में उठा लिया और चली। मुन्शी जी ने रोते हुए उसकी गोद से मन्साराम को छीनने के लिए हाथ बढ़ाया, तो आँखें खुल गईं और डॉक्टर लहिरी; डॉक्टर भाटिया आदि आधे दर्जन डॉक्टर उनके सामने खड़े दिखाई दिए!

बारहवाँ परिच्छेद

तीन दिन गुज़र गए ; और मुन्शी जी घर न आए ! रुक्मिणी दोनों वक़्त अस्पताल जाती ; और मन्साराम को देख आती थी । दोनों लड़के भी जाते थे; पर निर्मला कैसे जाती ? उसके पैरों में तो बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं । वह मन्साराम की बीमारी का हाल-चाल जानने के लिए व्यग्र रहती थी, यदि रुक्मिणी से कुछ पूछती थी, तो ताने मिलते थे; और लड़कों से पूछती, तो वे बेसिर-पैर की बातें करने लगते ! एक बार .खुद जाकर देखने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था । उसे यह भय होता था कि सन्देह ने कहीं मुन्शी जी के पुत्र-प्रेम को शिथिल न कर दिया हो, कहीं उनकी कृपणता ही तो मन्साराम के अच्छे होने में बाधक नहीं हो रही है ? डॉक्टर किसी के सगे नहीं होते , इन्हें तो अपने पैसों से काम है, मुर्दा दोज़ख में जाय या बिहिश्त में । उसके मन में प्रबल इच्छा होती

थी कि जाकर अस्पताल के डॉक्टर को एक हज़ार की थैली देकर कहें—इन्हें बचा दीजिए, यह थैली आपकी भेंट है; पर उसके पास न तो इतने रुपये ही थे, न इतना साहस ही था। अब भी यदि वह वहाँ पहुँच सकती, तो मन्साराम अच्छा हो जाता। उसकी जैसी सेवा-सुश्रूषा होनी चाहिए, वैसी नहीं हो रही है, नहीं तो क्या तीन दिन तक ज्वर ही न उतरता? यह दैहिक ज्वर नहीं, मानसिक ज्वर है और चित्त के शान्त होने ही से इसका प्रकोप शान्त हो सकता है। अगर वह वहाँ रात भर भी बैठी रह सकती; और मुन्शी जी ज़रा भी मन मैला न करते, तो कदाचित् मन्साराम को विश्वास हो जाता कि पिता जी का दिल साफ़ है; और फिर उसके अच्छे होने में देर न लगती; लेकिन ऐसा होगा? मुन्शी जी उसे वहाँ देख कर प्रसन्नचित्त रह सकेंगे? क्या अब भी उनका दिल साफ़ नहीं हुआ? यहाँ से जाते समय तो ऐसा ज्ञात हुआ था कि वह अपने प्रमाद पर पछता रहे हैं। ऐसा तो न होगा कि उसके वहाँ जाते ही मुन्शी जी का सन्देह फिर भड़क उठे; और वह बेटे की जान लेकर ही छोड़े!

इसी दुविधा में पड़े-पड़े तीन दिन गुज़र गए; और न घर में चूल्हा जला, न किसी ने कुछ खाया। लड़कों के लिये बाज़ार से पूरियाँ मँगा ली जाती थीं। रुक्मिणी और निर्मला भूखी ही सो जाती थीं। उन्हें भोजन की इच्छा ही न होती थी।

चौथे दिन जियाराम स्कूल से लौटा, तो अस्पताल होता हुआ घर आया। निर्मला ने पूछा—क्यों भैया, अस्पताल

भी गए थे ? आज क्या हाल है ? तुम्हारे भैया उठे या नहीं ?

जियाराम रुआँसा होकर बोला—अम्माँ जी, आज तो वह कुछ बोलते-चालते ही न थे। चुपचाप चारपाई पर पड़े ज़ोर-ज़ोर से हाथ-पाँव पटक रहे थे।

निर्मला के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। घबरा कर पूछा—तुम्हारे बाबू जी वहाँ न थे ?

जियाराम—थे क्यों नहीं। आज वह बहुत रोते थे !

निर्मला का कलेजा धक-धक करने लगा। पूछा—डॉक्टर लोग वहाँ न थे ?

जियाराम—डॉक्टर भी खड़े थे और आपस में कुछ सलाह कर रहे थे। सबसे बड़ा सिविल-सर्जन अङ्गरेज़ी में कह रहा था कि मरीज़ के देह में कुछ ताज़ा ख़ून डालना चाहिए। इस पर बाबू जी ने कहा—मेरी देह से जितना ख़ून चाहे ले लीजिए। सिविल-सर्जन ने हँस कर कहा—आपके ब्लॅड (Blood) से काम नहीं चलेगा। किसी जवान आदमी का ब्लॅड चाहिए, आख़िर उसने पिचकारी से कोई दवा भैया के बाज़ू में डाल दी। चार अङ्गुल से कम की सुई न रही होगी; पर भैया मिनके तक नहीं। मैंने तो मारे डर के आँखें बन्द कर लीं !

बड़े-बड़े महान् सङ्कल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं। कहाँ तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहाँ उसके मुख पर दृढ़ सङ्कल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताज़ा ख़ून देने का

निश्चय कर लिया। अगर उसके रक्त से मन्साराम के प्राण बच जायँ, तो वह बड़ी ख़ुशी से उसकी अन्तिम बूँद तक दे डालेगी। अब जिसका जो जी चाहे समझे, वह कुछ पर्वाह न करेगी। उसने जियाराम से कहा—तुम लपक कर एक एक्का बुला लो, मैं अस्पताल जाऊँगी।

जियाराम—वहाँ तो इस वक्त बहुत से आदमी होंगे। ज़रा रात हो जाने दीजिए!

निर्मला—नहीं, तुम अभी एक्का बुला लो!

जियाराम—कहीं बाबू जी बिगड़ें न!

निर्मला—बिगड़ने दो! तुम अभी जाकर सवारी लाओ।

जियाराम—मैं कह दूँगा, अम्माँ जी ही ने मुझसे सवारी मँगवाई थी।

निर्मला—कह देना!

जियाराम तो उधर ताँगा लाने गया, इधर इतनी देर में निर्मला ने सिर में कङ्घी की, जूड़ा बाँधा, कपड़े बदले, आभूषण पहने, पान खाया और द्वार पर आकर ताँगे की राह देखने लगी।

रुक्मिणी अपने कमरे में बैठी हुई थी। उसे इस तैयारी से आते देख कर बोली—कहाँ जाती हो बहू?

निर्मला—ज़रा अस्पताल तक जाती हूँ।

रुक्मिणी—वहाँ जाकर क्या करोगी?

निर्मला—कुछ नहीं, करूँगी क्या? करने वाले तो भगवान् हैं। देखने को जी चाहता है।

रुक्मिणी—मैं कहती हूँ मत जाओ !

निर्मला ने विनीत भाव से कहा—अभी चली आऊँगी, दीदी जी ! जियाराम कह रहे हैं कि इस वक़्त उनकी हालत अच्छी नहीं है ! जी नहीं मानता, आप भी चलिए न !

रुक्मिणी—मैं देख आई हूँ। इतना ही समझ लो कि अब बाहरी खून पहुँचने ही पर जीवन की आशा है। कौन अपना ताज़ा खून देगा; और क्यों देगा ? उसमें भी तो प्राणों का भय है।

निर्मला—इसीलिए तो मैं जाती हूँ। मेरे खून से क्या काम न चलेगा ?

रुक्मिणी—चलेगा क्यों नहीं, जवान ही का खून तो चाहिए; लेकिन तुम्हारे खून से मन्सा की जान बचे, इससे यह कहीं अच्छा है कि उसे पानी में बहा दिया जाय !

ताँगा आ गया। निर्मला और जियाराम दोनों जा बैठे ! ताँगा चला !

रुक्मिणी द्वार पर खड़ी देर तक रोती रही। आज पहली बार उसे निर्मला पर दया आई। उसका बस होता तो वह निर्मला को बाँध रखती। करुणा और सहानुभूति का आवेश उसे कहाँ लिए जाता है, यह वह अप्रकट रूप से देख रही थी। आह ! यह दुर्भाग्य-प्रेरणा है, यह सर्वनाश का मार्ग है !

निर्मला अस्पताल पहुँची, तो दीपक जल चुके थे। डॉक्टर लोग अपनी-अपनी राय देकर विदा हो चुके थे। मन्साराम का ज्वर कुछ कम हो गया था। वह टकटकी लगाए द्वार की ओर देख

रहा था। उसकी दृष्टि उन्मुक्त आकाश की ओर लगी हुई थी, मानो किसी देवता की प्रतीक्षा कर रहा हो। वह कहाँ है, किस दशा में है, इसका उसे कुछ ज्ञान न था!

सहसा निर्मला को देखते ही वह चौंक कर उठ बैठा। उसकी समाधि टूट गई। उसकी विलुप्त चेतना प्रदीप्त हो गई। उसे अपनी स्थिति का—अपनी दशा का ज्ञान हो गया, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो। उसने आँखें फाड़ कर निर्मला को देखा और मुँह फेर लिया।

एकाएक मुन्शी जी तीव्र स्वर में बोले—तुम यहाँ क्या करने आईं? निर्मला अवाक् रह गई। वह बतलाए कि क्या करने आई! इतने सीधे से प्रश्न का भी वह क्या कोई जवाब न दे सकी! वह क्या करने आई? इतना जटिल प्रश्न किसके सामने आया होगा? घर का आदमी बीमार है, उसे देखने आई है, यह बात क्या बिना पूछे मालूम न हो सकती थी? फिर यह प्रश्न क्यों?

वह हतबुद्धि सी खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई हो! उसने दोनो लड़कों से मुन्शी जी के शोक और सन्ताप की बातें सुन कर यह अनुमान किया था कि अब उनका दिल साफ़ हो गया है। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह भ्रम था। हाँ, वह महा भ्रम था। अगर वह जानती कि आँसुओं की वृष्टि ने भी सन्देह की अग्नि शान्त नहीं की, तो वह यहाँ कदापि न आती। वह कुढ़-कुढ़ कर मर जाती; पर घर से बाहर पाँव न निकालती!!

मुन्शी जी ने फिर वही प्रश्न किया—तुम यहाँ क्यों आईं?

निर्मला ने निःशङ्क भाव से उत्तर दिया—आप यहाँ क्या करने आए हैं ?

मुन्शी जी के नथने फड़कने लगे। वह झल्ला कर चारपाई से उठ और निर्मला का हाथ पकड़ कर बोले—तुम्हारे यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं। जब मैं बुलाऊँ तब आना, समझ गईं।

अरे! यह क्या अनर्थ हुआ? मन्साराम जो चारपाई से हिल भी न सकता था, उठ कर खड़ा हो गया और निर्मला के पैरों पर गिर कर रोते हुए बोला—अम्माँ जी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ? मैं आपका स्नेह कभी न भूलूँगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूँ। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा। मैं आपको अपनी माता समझता रहा। आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो; लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं; और मैंने आपको सदैव इसी दृष्टि से देखा......अब नहीं बोला जाता; अम्माँ जी, क्षमा कीजिए! यह अन्तिम भेंट है!!

निर्मला ने अश्रु-प्रवाह को रोकते हुए कहा—तुम ऐसी बातें क्यों करते हो? दो-चार दिन में अच्छे हो जाओगे!

मन्साराम ने क्षीण स्वर में कहा—अब जीने की इच्छा नहीं; और न बोलने की शक्ति ही है!

यह कहते-कहते मन्साराम अशक्त होकर वहीं ज़मीन पर लेट

गया। निर्मला ने पति की ओर निर्भय नेत्रों से देखते हुए कहा—डॉक्टरों ने क्या सलाह दी ?

मुन्शी जी—सब के सब भङ्ग खा गए हैं। कहते हैं ताजा .खून चाहिए।

निर्मला—ताज़ा .खून मिल जाय, तो प्राण-रक्षा हो सकती है ?

मुन्शी जी ने निर्मला की ओर तीव्र नेत्रों से देख कर कहा—मैं ईश्वर नहीं हूँ: और न डॉक्टरों ही को ईश्वर समझता हूँ।

निर्मला—ताज़ा .खून तो ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं !

मन्शी जी—आकाश के तारे भी तो अलभ्य नहीं ! मुँह के सामने खन्दक क्या चीज़ है !

निर्मला—मैं अपना .खून देने को तैयार हूँ ! डॉक्टर को बुलाइए !!

मुन्शी जी ने विस्मित होकर कहा—तुम !

निर्मला—हाँ ! क्या मेरे .खून से काम न चलेगा ?

मुन्शी जी—तुम अपना .खून दोगी ! नहीं, तुम्हारे खून की ज़रूरत नहीं ! इसमें प्राणों का भय है !!

निर्मला—मेरे प्राण और किस दिन काम आवेंगे ?

मुन्शी जी ने सजल नेत्र होकर कहा—नहीं निर्मला, उनका मूल्य अब मेरी निगाहों में बहुत बढ़ गया है ! आज तक वह मेरे भोग की वस्तु थी; आज से वह मेरी भक्ति की वस्तु है। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, क्षमा करो !

तेरहवाँ परिच्छेद

जो कुछ होना था हो गया, किसी की कुछ न चली डॉक्टर साहब निर्मला की देह से रक्त निकालने की चेष्टा कर ही रहे थे कि मन्साराम अपने उज्ज्वल चरित्र की अन्तिम झलक दिखा कर इस भ्रम-लोक से विदा हो गया! कदाचित् इतनी देर तक उसके प्राण निर्मला ही की राह देख रहे थे। उसे निष्कलङ्क सिद्ध किए बिना वे देह को कैसे त्याग देते? अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया! मुन्शी जी को निर्मला के निर्दोष होने का विश्वास हो गया; पर कब? जब हाथ से तीर निकल चुका था—जब मुसाफ़िर ने रिकाब में पाँव डाल लिये थे!

पुत्र-शोक से मुन्शी जी को जीवन भार-स्वरूप हो गया! उस दिन से फिर उनके ओंठों पर हँसी न आई! यह जीवन अब उन्हें व्यर्थ सा जान पड़ता था! कचहरी जाते; मगर मुक़दमों की पैरवी करने नहीं, केवल दिल बहलाने के लिए! घण्टे-दो घण्टे में वहाँ से उकता कर चले आते। खाने बैठते तो कौर मुँह में न जाता!

निर्मला अच्छी से अच्छी चीजें पकाती; पर मुन्शी जी दो-चार कौर से अधिक न खा सकते! ऐसा जान पड़ता कि कौर मुँह से निकला आता है! मन्साराम के कमरे की ओर जाते ही उनका हृदय टूक-टूक हो जाता था! जहाँ उनकी आशाओं का दीपक जलता रहता था, वहाँ अब अन्धकार छाया हुआ था! उनके दो पुत्र अब भी थे; लेकिन जब दूध देती हुई गाय मर गई, तो बछिया का क्या भरोसा? जब फलने-फूलने वाला वृक्ष गिर पड़ा, तो नन्हे-नन्हे पौधों से क्या आशा? यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं; लेकिन दुख इस बात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम यह बात याद आ जाती, तो ऐसा मालूम होता था कि उनकी छाती फट जायगी—मानो हृदय बाहर निकल पड़ेगा!

निर्मला को पति से सच्ची सहानुभूति थी। जहाँ तक हो सकता था, वह उनको प्रसन्न रखने की फ़िक्र रखती थी; और भूल कर भी पिछली बातें ज़बान पर न लाती थी। मुन्शी जी उससे मन्साराम की कोई चर्चा करते शरमाते थे। उनकी कभी-कभी ऐसी इच्छा होती कि एक बार निर्मला से अपने मन के सारे भाव खोल कर कह दूँ; लेकिन लज्जा ज़बान रोक लेती थी। इस भाँति उन्हें वह सान्त्वना भी न मिलती थी, जो अपनी व्यथा कह डालने से—दूसरों को अपने ग़म में शरीक कर लेने से—प्राप्त होती है। मवाद बाहर न निकल कर अन्दर ही अन्दर अपना विष फैलाता जाता था—दिन-दिन देह घुलती जाती थी!

इधर कुछ दिनों से मुन्शी जी और उन डॉक्टर साहब में

जिन्होंने मन्साराम की दवा की थी, याराना हो गया था। बेचारे कभी-कभी आकर मुन्शी जी को समझाया करते, कभी-कभी अपने साथ हवा खिलाने के लिए खींच ले जाते! उनकी स्त्री भी दो-चार बार निर्मला से मिलने आई थी। निर्मला भी कई बार उनके घर हो आई थी; मगर वहाँ से जब वह लौटती, तो कई दिन तक उदास रहती। उस दम्पति का सुखमय जीवन देख कर उसे अपनी दशा पर दुःख हुए बिना न रहता था। डॉक्टर साहब को कुल २००) मिलते थे; पर इतने ही में दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। घर में केवल एक महरी थी, गृहस्थी का बहुत सा काम स्त्री को अपने ही हाथों करना पड़ता था। गहने भी उसकी देह पर बहुत कम थे; पर उन दोनों में वह प्रेम था, जो धन को तृण बराबर पर्वाह नहीं करता! पुरुष को देख कर स्त्री का चेहरा खिल उठता था। स्त्री को देख कर पुरुष निहाल हो जाता था। निर्मला के घर में धन इससे कहीं अधिक था—आभूषणों से उसकी देह फटी पड़ती थी—घर का कोई काम उसे अपने हाथ से न करना पड़ता था; पर निर्मला सम्पन्न होने पर भी अधिक दुखी थी; और सुधा विपन्न होने पर भी सुखी! सुधा के पास कोई ऐसी वस्तु थी, जो निर्मला के पास न थी; जिसके सामने उसे अपना वैभव तुच्छ जान पड़ता था। यहाँ तक कि वह सुधा के घर गहने पहन कर जाते शरमाती थी!

एक दिन निर्मला डॉक्टर साहब के घर आई, तो उसे बहुत उदास देख कर सुधा ने पूछा—बहिन, आज बहुत उदास हो, वकील साहब की तबीयत तो अच्छी है न?

निर्मला—क्या कहूँ सुधा! उनकी दशा दिन-दिन ख़राब होती जाती है—कुछ कहते नहीं बनता—न जाने ईश्वर को क्या मन्ज़ूर है?

सुधा—हमारे बाबू जी तो कहते हैं कि उन्हें कहीं जल-वायु बदलने के लिए जाना ज़रूरी है, नहीं तो कोई भयङ्कर रोग खड़ा हो जायगा। कई बार वकील साहब से कह भी चुके हैं; पर वह यही कह दिया करते हैं कि मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ—मुझे कोई शिकायत नहीं। आज तुम कहना!

निर्मला—जब डॉक्टर साहब की नहीं सुनते, तो मेरी क्या सुनेंगे?

यह कहते-कहते निर्मला की आँखें डबडबा गईं; और वह शङ्का, जो इधर महीनों से उसके हृदय को विकल करती रहती थी, मुँह से निकल पड़ी। अब तक उसने उस शङ्का को छिपाया था; पर अब न छिपा सकी। बोली—बहिन, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं मालूम होते! देखें, भगवान् क्या करते हैं?

सुधा—तुम आज उनसे ख़ूब ज़ोर देकर कहना कि कहीं जल-वायु बदलने चलिए। दो-चार महीने बाहर रहने से बहुत सी बातें भूल जाएँगी। मैं तो समझती हूँ, शायद मकान बदल डालने से भी उनका शोक कुछ कम हो जायगा। तुम कहीं बाहर जा भी तो न सकोगी! यह कौन सा महीना है?

निर्मला—आठवाँ महीना बीत रहा है। यह चिन्ता तो मुझे और भी मारे डालती है। मैंने तो इसके लिए ईश्वर से कभी

प्रार्थना नहीं की थी ! यह बला मेरे सिर न जाने क्यों मढ़ दी ? मैं बड़ी अभागिनी हूँ बहिन ! विवाह के एक महीने पहले पिता जी का देहान्त हो गया । उनके मरते ही मेरे सिर सनीचर सवार हुए ! जहाँ पहले विवाह की बातचीत पक्की हुई थी, उन लोगों ने आँखें फेर लीं । बेचारी अम्माँ जी को हार कर मेरा विवाह यहाँ करना पड़ा । अब छोटी बहिन का विवाह होने वाला है । देखें, उसकी नाव किस घाट जाती है ?

सुधा—जहाँ पहले विवाह की बातचीत हुई थी, उन लोगों ने इन्कार क्यों कर दिया ?

निर्मला—यह तो वे ही जानें; पिता जी ही न रहे, तो सोने की गठरी कौन देता ?

सुधा—यह तो नीचता है ! कहाँ के रहने वाले थे ?

निर्मला—लखनऊ के । नाम तो याद नहीं, आबकारी के कोई बड़े अफ़सर थे ।

सुधा ने गम्भीर भाव से पूछा—और उनका लड़का क्या करता था ?

निर्मला—कुछ नहीं, कहीं पढ़ता था; पर बड़ा होनहार था ।

सुधा ने सिर नीचा करके कहा—उसने अपने पिता से कुछ न कहा ? वह तो जवान था, क्या अपने बाप को दबा न सकता था ?

निर्मला—अब यह मैं क्या जानूँ बहिन ! सोने की गठरी किसे प्यारी नहीं होती ? जो पण्डित मेरे यहाँ से सन्देशा लेकर

गया था, उसने तो कहा था कि लड़का ही इन्कार कर रहा है! लड़के की माँ अलबत्ता देवी थी। उसने पुत्र और पति दोनों ही को समझाया; पर उसकी कुछ न चली!

सुधा—मैं तो उस लड़के को पाती, तो ख़ूब आड़े हाथों लेती!

निर्मला—मेरे भाग्य में तो जो लिखा था, वह हो चुका! बेचारी कृष्णा पर न जाने क्या बीतेगी?

सन्ध्या समय निर्मला के जाने के बाद जब डॉक्टर साहब बाहर से आए, तो सुधा ने कहा—क्यों जी, तुम उस आदमी को क्या कहोगे, जो एक जगह विवाह ठीक कर लेने के बाद फिर लोभ-वश किसी दूसरी जगह सम्बन्ध कर ले?

डॉक्टर सिन्हा ने स्त्री की ओर कुतूहल से देख कर कहा—ऐसा नहीं करना चाहिए; और क्या?

सुधा—यह क्यों नहीं कहते कि यह घोर नीचता है—परले सिरे का कमीनापन है।

सिन्हा—हाँ, यह कहने में भी मुझे इन्कार नहीं!

सुधा—किसका अपराध बड़ा है? वर का या वर के पिता का?

सिन्हा की समझ में अभी तक नहीं आया कि सुधा के इन प्रश्नों का आशय क्या है। विस्मय से बोले—जैसी स्थिति हो। अगर वर पिता के आधीन हो, तो पिता ही का अपराध समझो!

सुधा—आधीन होने पर भी क्या जवान आदमी का अपना कोई कर्त्तव्य नहीं है? अगर उसे अपने लिए नए कोट की ज़रूरत हो,

तो वह पिता के विरोध करने पर भी उसे रो-धोकर बनवा लेता है! क्या ऐसे महत्व के विषय में वह अपनी आवाज़ पिता के कानों तक नहीं पहुँचा सकता? यह कहो कि वर और उसका पिता दोनों ही अपराधी हैं; परन्तु वर अधिक। बूढ़ा आदमी सोचता है—मुझे तो सारा खर्च सँभालना पड़ेगा, कन्या-पक्ष से जितना ऐंठ सकूँ, उतना ही अच्छा! मगर यह वर का धर्म है कि वह यदि बिलकुल स्वार्थ के हाथों बिक नहीं गया है, तो अपने आत्म-बल का परिचय दे! अगर वह ऐसा नहीं करता, तो मैं कहूँगी कि वह लोभी भी है और कायर भी! दुर्भाग्यवश ऐसा ही एक प्राणी मेरा पति है; और मेरी समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में उसका तिरस्कार करूँ?

सिन्हा ने हिचकिचाते हुए कहा—वह...वह...वह दूसरी बात थी। लेन-देन का कारण नहीं था; बिलकुल दूसरी बात थी! कन्या के पिता का देहान्त हो गया था। ऐसी दशा में हम लोग क्या करते? यह भी सुनने में आया था कि कन्या में कोई ऐब है। वह बिलकुल दूसरी बात थी; मगर तुमसे यह कथा किसने कही?

सुधा—कह दो कि वह कन्या कानी थी, कुबड़ी थी या नाइन के पेट की थी या भ्रष्टा थी! इतनी कसर क्यों छोड़ दी? भला सुनूँ तो, उस कन्या में क्या ऐब था?

सिन्हा—मैं ने देखा तो था नहीं, सुनने में आया था कि उस में कोई ऐब है।

सुधा—सबसे बड़ा ऐब यही था कि उसके पिता का स्वर्ग-वास हो गया था; और वह कोई लम्बी-चौड़ी रक़म न दे सकती थी ! इतना स्वीकार करते क्यों झेंपते हो ? मैं कुछ तुम्हारे कान तो न काट लूँगी। अगर दो-चार फ़िक़रे कहूँ, तो इस कान से सुन कर उस कान से उड़ा देना ! ज्यादा ची-चपड़ करूँ, तो छड़ी से काम ले सकते हो। औरत-ज़ात डण्डे ही से ठीक रहती है। अगर उस कन्या में कोई ऐब था, तो मैं कहूँगी कि लक्ष्मी भी बेऐब नहीं ! तुम्हारी तक़दीर खोटी थी; बस ! और क्या ? तुम्हें तो मेरे पाले पड़ना था !

सिन्हा—तुमसे किसने कहा कि वह ऐसी थी और वैसी थी ? जैसे तुमने किसी से सुन कर मान लिया, वैसे ही हम लोगों ने भी सुन कर मान लिया !

सुधा—मैं ने सुन कर नहीं मान लिया ! अपनी आँखों देखा। ज्यादा बखान क्या करूँ, मैं ने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी !!

सिन्हा ने व्यग्र होकर पूछा—क्या वह यहीं कहीं है ? सच बताओ उसे कहाँ देखा ? क्या तुम्हारे घर आई थी ?

सुधा—हाँ, मेरे घर आई थी; और एक बार नहीं, कई बार आ चुकी है। मैं भी उसके यहाँ कई बार जा चुकी हूँ। वकील साहब की बीवी वही कन्या है, जिसे आपने ऐबों के कारण त्याग दिया !

सिन्हा—सच ?

सुधा—बिलकुल सच ! आज अगर उसे मालूम हो जाय कि

आप वही महा-पुरुष हैं, तो शायद फिर इस घर में क़दम न रक्खे। ऐसी सुशीला, घर के कामों में ऐसी निपुण और ऐसी परम सुन्दरी स्त्री इस शहर में दो ही चार होंगी। तुम मेरा बखान करते हो! मैं उसकी लौंडी बनने के योग्य भी नहीं हूँ! घर में ईश्वर का दिया हुआ सब कुछ है; मगर जब प्राणी ही मेल का नहीं, तो और सब रह कर क्या करेगा? धन्य है, उसके धैर्य को कि उस बुड्ढे खूसट वकील के साथ जीवन के दिन काट रही है! मैंने तो कब का ज़हर खा लिया होता! मगर मन की व्यथा कहने ही से थोड़े ही प्रकट होती है। हँसती है, बोलती है, गहने-कपड़े पहनती है; पर रोयाँ-रोयाँ रोया करती है।

सिन्हा—वकील साहब की ख़ूब शिकायत करती होगी?

सुधा—शिकायत क्यों करेगी? क्या वह उसके पति नहीं हैं? संसार में अब उसके लिए जो कुछ हैं, वकील साहब हैं! वह बुड्ढे हों या रोगी, पर हैं तो उसके स्वामी ही! कुलवती स्त्रियाँ पति की निन्दा नहीं करतीं—यह कुलटाओं का काम है। वह उनकी दशा देख कर कुढ़ती हैं; पर मुँह से कुछ नहीं कहतीं!

सिन्हा—इन वकील साहब को क्या सूझी थी, जो इस उम्र में ब्याह करने चले?

सुधा—ऐसे आदमी न हों, तो ग़रीब क्वाँरियों की नाव कौन पार लगाये? तुम और तुम्हारे साथी बिना भारी गठरी लिए बात नहीं करते, तो फिर ये बेचारी किसके घर जायँ! तुमने

यह बड़ा भारी अन्याय किया है; और तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा! ईश्वर उसका सुहाग अमर करे; लेकिन वकील साहब को कहीं कुछ हो गया, तो बेचारी का जीवन ही नष्ट हो जायगा। आज तो वह बहुत रोती थी। तुम लोग सचमुच बड़े निर्दयी हो! मैं तो अपने सोहन का विवाह किसी ग़रीब लड़की से करूँगी।

डॉक्टर साहब ने यह पिछला वाक्य नहीं सुना! वह घोर चिन्ता में पड़ गए। उनके मन में यह प्रश्न उठ-उठ कर उन्हें विकल करने लगा—कहीं वकील साहब को कुछ हो गया तो? आज उन्हें अपने स्वार्थ का भयङ्कर स्वरूप दिखाई दिया! वास्तव में यह उन्हीं का अपराध था। अगर उन्होंने पिता से ज़ोर देकर कहा होता कि मैं और कहीं विवाह न करूँगा, तो क्या वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देते?

सहसा सुधा ने कहा—कहो तो कल निर्मला से तुम्हारी मुलाक़ात करा दूँ। वह भी ज़रा तुम्हारी सूरत देख ले। वह कुछ बोलेगी तो न; पर कदाचित् एक दृष्टि में वह तुम्हारा इतना तिरस्कार कर देगी, जिसे तुम कभी न भूल सकोगे! बोलो, कल मिला दूँ? तुम्हारा बहुत संक्षिप्त परिचय भी करा दूँगी।

सिन्हा ने कहा—नहीं सुधा, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, कहीं ऐसा ग़ज़ब न करना! नहीं तो मैं सच कहता हूँ, घर छोड़ कर भाग जाऊँगा!

सुधा—जो काँटा बोया है, उसका फल खाते क्यों इतना डरते

हो ? जिसकी गर्दन पर कटार चलाई है, ज़रा उसे तड़पते भी तो देखो ! मेरे दादा जी ने पाँच हज़ार दिये न ! अभी छोटे भाई के विवाह में पाँच-छः हज़ार और मिल जायँगे। फिर तो तुम्हारे बराबर धनी संसार में कोई दूसरा न होगा ? ग्यारह हज़ार बहुत होते हैं; बाप रे बाप ! ग्यारह हज़ार !! उठा-उठा कर रखने लगे, तो महीनों लग जायँ । अगर लड़के उड़ाने भी लगें, तो तीन पीढ़ियों तक चले। कहीं से बातचीत हो रही है या नहीं ? इस परिहास से डॉक्टर साहब इतना झेंपे कि सिर तक न उठा सके। उनका सारा वाक्-चातुर्य ग़ायब हो गया। नन्हा सा मुँह निकल आया, मानो मार पड़ गई हो। इसी वक़्त किसी ने डॉक्टर साहब को बाहर से पुकारा। बेचारे जान लेकर भागे। स्त्री कितनी परिहास-कुशल होती है—इसका आज परिचय मिल गया !

रात को डॉक्टर साहब शयन करते हुए सुधा से बोले—निर्मला की तो कोई बहिन और है न ?

सुधा—हाँ, आज उसकी चर्चा तो करती थी। उसकी चिन्ता अभी से सवार हो रही है। अपने ऊपर तो जो कुछ बीतना था, बीत चुका; बहिन की फ़िक्र में पड़ी हुई है ! माँ के पास तो अब और भी कुछ नहीं रहा; मजबूरन किसी ऐसे ही बूढ़े बाबा के गले वह भी मढ़ दी जायगी।

सिन्हा—निर्मला तो अब अपनी माँ की मदद कर सकती है।

सुधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—तुम भी कभी-कभी बिलकुल बे सिर-पैर की बातें करने लगते हो। निर्मला बहुत करेगी, तो दो-

चार सौ रुपये दे देगी, और क्या कर सकती है ? वकील साहब का यह हाल हो रहा है, उसे भी तो अभी पहाड़ सी उम्र काटनी है। फिर कौन जाने उनके घर का क्या हाल है। इधर छः महीने से बेचारे घर बैठे हैं। रुपये आकाश से थोड़े ही बरसते हैं। दस-बीस हजार होंगे भी तो बैङ्क में होंगे, कुछ निर्मला के पास तो रक्खे न होंगे। हमारा २००) महीने का खर्च है, तो क्या उनका ४००) महीने का भी न होगा ?

सुधा को तो नींद आ गई; पर डॉक्टर साहब बहुत देर तक करवटें बदलते रहे ! फिर कुछ सोच कर उठे और मेज पर बैठ कर एक पत्र लिखने लगे !

चौदहवाँ परिच्छेद

तीनों बातें एक ही साथ हुईं—निर्मला की कन्या ने जन्म लिया, कृष्णा का विवाह निश्चित हुआ; और मुन्शी तोतारामका मकान नीलाम हो गया ! कन्या का जन्म तो साधारण बात थी ! यद्यपि निर्मला की दृष्टि में यह उसके जीवन की सबसे महान् घटना थी; लेकिन शेप दोनों घटनाएँ असाधारण थीं ! कृष्णा का विवाह ऐसे सम्पन्न घराने में क्यों कर ठीक हुआ ? उसकी माता के पास तो दहेज के नाम कौड़ी भी न थी ; और इधर बूढ़े सिन्हा-साहब जो अब पेन्शन लेकर घर आ गये थे, बिरादरी में महा लोभी मशहूर थे । वह अपने पुत्र का विवाह ऐसे दरिद्र घराने में करने पर कैसे राज़ी हुए ? किसी को सहसा विश्वास न आता था । इससे भी बड़े आश्चर्य की बात मुन्शी जी के मकान का नीलाम होना था । लोग मुन्शी जी को अगर लखपती नहीं, तो बड़ा आदमी अवश्य समझते थे । उनका मकान कैसे नीलाम हुआ ? बात यह थी कि मुन्शी जी ने एक महाजन से

कुछ रुपये क़र्ज़ लेकर एक गाँव रहन रक्खा था। उन्हें आशा थी कि साल आध साल में यह रुपये पटा देंगे। फिर दस-पाँच साल में उस गाँव पर भी क़ब्ज़ा कर लेंगे। वह ज़मींदार असल और सूद के कुछ रुपये अदा करने में असमर्थ हो जायगा। इसी भरोसे पर मुन्शी जी ने वह मामला किया था। गाँव बहुत बड़ा था—चार-पाँच सौ रुपया नफ़ा होता था; लेकिन मन की सोची मन ही में रह गई। मुन्शी जी दिल को बहुत समझाने पर भी कचहरी न जा सके। पुत्र-शोक ने उनमें कोई काम करने की शक्ति ही नहीं छोड़ी! कौन ऐसा हृदय-शून्य पिता है; जो अपने पुत्र की गर्दन पर तलवार चला कर चित्त को शान्त करले?

महाजन के पास जब साल भर तक सूद न पहुँचा; और न उसके बार-बार बुलाने पर मुन्शी जी उसके पास गये—यहाँ तक कि पिछली बार उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया कि हम किसी के गुलाम नहीं हैं; साहू जी जो चाहें करें, तब साहू जी को गुस्सा आ गया। उसने नालिश कर दी। मुन्शी जी पैरवी करने भी न गये। एकतरफ़ा डिग्री हो गई! यहाँ घर में रुपये कहाँ रक्खे थे? इतने ही दिनों में मुन्शी जी की साख भी उठ गई थी। वह रुपये का कोई प्रबन्ध न कर सके। आख़िर मकान नीलाम पर चढ़ गया। निर्मला सौर में थी। यह ख़बर सुनी, तो कलेजा सन्न सा हो गया! जीवन में और कोई सुख न होने पर भी धनाभाव की चिन्ताओं से मुक्त थी! धन मानव-जीवन में अगर सर्व-प्रधान वस्तु नहीं, तो वह उसके बहुत निकट की वस्तु अवश्य है। अब और

अभावों के साथ यह चिन्ता भी उसके सिर सवार हुई, उसने दाई द्वारा कहला भेजा मेरे सब गहने बेच कर घर को बचा लीजिये; लेकिन मुन्शी जी ने यह प्रस्ताव किसी तरह स्वीकार न किया।

उस दिन से मुन्शी जी और भी चिन्ता-ग्रस्त रहने लगे। जिस धन का सुख भोगने के लिए उन्होंने विवाह किया था, वह अब अतीत की स्मृति-मात्र था। वह मारे ग्लानि के अब निर्मला को अपना मुँह तक न दिखा सकते थे। उन्हें अब उस अन्याय का अनुमान हो रहा था, जो उन्होंने निर्मला के साथ किया था, और कन्या के जन्म ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी—सर्वनाश ही कर डाला!

बारहवें दिन सौर से निकल कर निर्मला नवजात शिशु को गोद में लिए पति के पास गई। वह इस अभाव में भी इतनी प्रसन्न थी, मानो उसे कोई चिन्ता नहीं है! बालिका को हृदय से लगा कर वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गई थी! शिशु के विकसित और हर्ष-प्रदीप्त नेत्रों को देख कर उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था! मातृत्व के इस उद्गार में उसके सारे क्लेश विलीन हो गए थे! वह शिशु को पति की गोद में देकर निहाल हो जाना चाहती थी, लेकिन मुन्शी जी कन्या को देख कर सहम उठे। गोद में लेने के लिए उनका हृदय हुलसाया नहीं; पर उन्होंने एक बार उसे करुण-नेत्रों से देखा; और फिर सिर झुका लिया। शिशु की सूरत मन्साराम से बिलकुल मिलती थी!

निर्मला ने उनके मन का भाव कुछ और ही समझा! उसने

शत-गुण स्नेह से लड़की को हृदय से लगा लिया; मानो उनसे कह रही है— अगर तुम इसके बोझ से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारा साया भी न पड़ने दूँगी। जिस रत्न को मैं ने इतनी तपस्या के बाद पाया है, उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता ? वह उसी क्षण शिशु को गोद से चिपटाए हुए अपने कमरे में चली आई; और देर तक रोती रही ! उसने पति की इस उदासीनता को समझने की ज़रा भी चेष्टा न की; नहीं तो शायद वह उन्हें इतना कठोर न समझती। उसके सिर पर उत्तर-दायित्व का इतना बड़ा भार कहाँ था, जो उसके पति पर आ पड़ा था ? क्या वह सोचने की चेष्टा करती, तो इतना भी उसकी समझ में न आता ?

मुन्शी जी को एक ही क्षण में अपनी भूल मालूम हो गई। माता का हृदय प्रेम में इतना अनुरक्त रहता है कि भविष्य की चिन्ता और बाधाएँ उसे ज़रा भी भयभीत नहीं करतीं ! उसे अपने अन्तःकरण में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होता है, जो बाधाओं को उसके सामने परास्त कर देती है । मुन्शी जी तुरन्त दौड़े हुए घर में आए; और शिशु को गोद में लेकर बोले—मुझे याद आता है, मन्सा भी ऐसा ही था—बिलकुल ऐसा ही !

निर्मला—दीदी जी भी तो यही कहती हैं !

मुन्शी जी—बिलकुल वही बड़ी-बड़ी आँखें और लाल-लाल ओंठ हैं। ईश्वर ने मुझे मेरा मन्साराम इस रूप में दे दिया। वही माथा है, वही मुँह, वही हाथ-पाँव ! ईश्वर, तुम्हारी लीला अपार है !!

सहसा रुक्मिणी भी आ गईं। मुन्शी जी को देखते ही बोलीं—देखो बाबू, मन्साराम है कि नहीं? वही आया है! कोई लाख कहे, मैं न मानूँगी, साफ़ मन्साराम है। साल भर के लगभग हो भी तो गया।

मुन्शी जी—बहिन, एक-एक अङ्ग मिलता है! बस, भगवान् ने मुझे मेरा मन्साराम दे दिया। (शिशु से) क्यों री, तू मन्साराम ही है? छोड़ कर जाने का नाम न लेना, नहीं फिर खींच लाऊँगा! कैसे निष्ठुर होकर भागे थे। आख़िर पकड़ लाया कि नहीं? बस कह दिया, अब मुझे छोड़ कर जाने का नाम न लेना। देखो बहिन, कैसा टुकुर-टुकुर ताक रही है?

उसी क्षण मुन्शी जी ने फिर से अभिलाषाओं का भवन बनाना शुरू कर दिया। मोह ने उन्हें फिर संसार की ओर खींचा। मानव-जीवन! तू कितना क्षण-भङ्गुर है; पर तेरी कल्पनाएँ कितनी दीर्घायु! वही तोताराम जो संसार से विरक्त हो रहे थे, जो रात-दिन मृत्यु का आवाहन किया करते थे, तिनके का सहारा पाकर तट पर पहुँचने के लिए पूरी शक्ति से हाथ-पाँव मार रहे हैं।

मगर तिनके का सहारा पाकर कोई तट पर पहुँचा है?

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

निर्मला को यद्यपि अपने ही घर के झंझटों से अवकाश न था; पर कृष्णा के विवाह का सन्देशा पाकर वह किसी तरह न रुक सकी। उसकी माता ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। सबसे बड़ा आकर्षण यह था कि कृष्णा का विवाह उसी घर में हो रहा था, जहाँ निर्मला का विवाह पहले तय हुआ था। आश्चर्य यही था कि इस बार बिना कुछ दहेज लिए कैसे विवाह होने पर तैयार हो गए। निर्मला को कृष्णा के विषय में बड़ी चिन्ता रहती थी। समझती थी—मेरी ही तरह वह भी किसी के गले मढ़ दी जायगी। बहुत चाहती थी कि माता की कुछ सहायता करूँ, जिससे कृष्णा के लिए कोई योग्य वर मिले; लेकिन इधर वकील साहब के घर बैठ जाने और महाजन के नालिश कर देने से उसका हाथ भी तङ्ग था। ऐसी दशा में यह ख़बर पाकर उसे बड़ी शान्ति मिली। चलने की तैयारी कर दी,

वकील साहब स्टेशन तक पहुँचाने आए। नन्हीं बच्ची से उन्हें बहुत प्रेम था। छोड़ते ही न थे; यहाँ तक कि निर्मला के साथ चलने को तैयार हो गए; लेकिन विवाह से एक महीने पहले उनका ससुराल जा बैठना निर्मला को उचित न मालूम हुआ।

निर्मला ने अपनी माता से अब तक अपनी विपत्ति-कथा न कही थी। जो बात हो गई, उसका रोना रोकर माता को कष्ट देने और रुलाने से क्या फायदा? इसलिए उसकी माता समझती थी, निर्मला बड़े आनन्द से है। अब जो निर्मला की सूरत देखी, तो मानो उसके हृदय पर धक्का सा लग गया। लड़कियाँ ससुराल से घुल कर नहीं आतीं; फिर निर्मला जैसी लड़की, जिसको सुख की सभी सामग्रियाँ प्राप्त थीं! उसने कितनी ही लड़कियों को दौज की चन्द्रमा की भाँति ससुराल जाते और पूर्णचन्द्र बन कर आते देखा था! मन में कल्पना कर रक्खी थी, निर्मला का रङ्ग निखर गया होगा, देह भर कर सुडौल हो गई होगी—अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोभा कुछ और ही हो गई होगी। अब जो देखा, तो वह आधी भी न रही थी! न यौवन की चञ्चलता थी, न वह विहँसित छवि, जो हृदय को मोह लेती है! वह कमनीयता, वह सुकुमारता जो विलासमय जीवन से आ जाती है, यहाँ नाम को न थी। मुख पीला, चेष्टा गिरी हुई, अङ्ग शिथिल, उन्नीसवें ही वर्ष में बुड्ढी हो गई थी। जब माँ-बेटियाँ रो-धोकर शान्त हुई, तो माता ने पूछा—क्यों री, तुझे वहाँ खाने को न मिलता था? इससे कहीं अच्छी तो तू यहीं थी। वहाँ तुझे क्या तकलीफ़ थी?

कृष्णा ने हँस कर कहा—वहाँ मालिकिन थी कि नहीं। मालिकिन को दुनिया भर की चिन्ताएँ रहती हैं, भोजन कब करें ?

निर्मला—नहीं अम्माँ, वहाँ का पानी मुझे रास नहीं आता—तबीयत भारी रहती है।

माता—वकील साहब न्यौते में आएँगे न ? तब पूछूँगी कि आपने फूल सी लड़की ले जाकर उसकी यह गत बना डाली। अच्छा, अब यह बता कि तूने यहाँ रुपए क्यों भेजे थे ? मैंने तो तुमसे कभी न माँगे थे। लाख गई-गुज़री हूँ; लेकिन बेटी का धन खाने की नीयत नहीं !

निर्मला ने चकित होकर पूछा—किसने रुपए भेजे थे ? अम्माँ ! मैंने तो नहीं भेजे !

माता—झूठ न बोल। तूने ५००) के नोट नहीं भेजे थे ?

कृष्णा—भेजे नहीं थे, तो क्या आसमान से आ गए ? तुम्हारा नाम साफ़ लिखा था। मोहर भी वहीं की थी।

निर्मला—तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ, मैंने रुपए नहीं भेजे। यह कब की बात है ?

माता—अरे यही दो-ढाई महीने हुए होंगे। मगर तूने नहीं भेजे, तो आए कहाँ से ?

निर्मला—यह मैं क्या जानूँ ? मगर मैंने रुपए नहीं भेजे। हमारे यहाँ तो जब से जवान बेटा मरा है, कचहरी ही नहीं जाते। मेरा हाथ तो आप ही तङ्ग था, रुपए कहाँ से आते ?

माता—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ! वहाँ और कोई

तेरा सगा-सम्बन्धी तो नहीं है? वकील साहब ने तुमसे छिपा कर तो नहीं भेजे?

निर्मला—नहीं अम्माँ, मुझे तो विश्वास नहीं।

माता—इसका पता लगाना चाहिए। मैंने सारे रुपए कृष्णा के गहने-कपड़े में खर्च कर डाले। यही बड़ी मुश्किल हुई।

दोनों लड़की में किसी विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ; और कृष्णा उधर फ़ैसला करने चली गई, तो निर्मला ने माता से कहा—इस विवाह की बात सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कैसे हुआ अम्माँ?

माता—यहाँ जो सुनता है, दाँतों उँगली दबाता है। जिन लोगों ने पक्की की-कराई बात फेर दी; और केवल थोड़े से रुपए के लोभ से! वे अब बिना कुछ लिए कैसे विवाह करने पर तैयार हो गये, समझ में नहीं आता। उन्होंने खुद ही पत्र भेजा। मैंने साफ़ लिख दिया कि मेरे पास देने-लेने को कुछ नहीं है; कुश-कन्या ही से आपकी सेवा कर सकती हूँ।

निर्मला—इसका कुछ जवाब नहीं दिया?

माता—शास्त्री जी पत्र लेकर गए थे। वह तो यह कहते थे कि अब मुन्शी जी कुछ लेने के इच्छुक नहीं हैं। अपनी पहली वादा-खिलाफ़ी पर कुछ लज्जित भी हैं। मुन्शी जी से तो इतनी उदारता की आशा न थी, मगर सुनती हूँ उनके बड़े पुत्र बहुत सज्जन आदमी हैं। उन्होंने कह-सुन कर बाप को राज़ी किया है।

निर्मला—पहले तो वह महाशय भी थैली चाहते थे न?

माता—हाँ, मगर अब तो शास्त्री जी कहते थे कि दहेज के नाम से चिढ़ते हैं। सुना है, यहाँ विवाह न करने पर पछताते भी थे। रुपए के लिए बात छोड़ी थी; और रुपए ख़ूब पाए; पर स्त्री पसन्द नहीं!

निर्मला के मन में उस पुरुष को देखने की बड़ी प्रबल उत्कण्ठा हुई, जो उसकी अवहेलना करके अब उसकी बहिन का उद्धार करना चाहता है। प्रायश्चित्त सही; लेकिन कितने ऐसे प्राणी हैं, जो इस तरह प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं। उनसे बातें करने के लिए नम्र शब्दों में उनका तिरस्कार करने के लिए, अपनी अनुपम छवि दिखा कर उन्हें और भी जलाने के लिए निर्मला का हृदय अधीर हो उठा। रात को दोनों बहिनें एक ही कमरे में सोईं। मुहल्ले में, किन-किन लड़कियों का विवाह हो गया, कौन-कौन सी लड़कोरी हुईं, किस-किस का विवाह धूम-धाम से हुआ, किस-किस के पति कन्या की इच्छानुकूल मिले, कौन कितने और कैसे गहने चढ़ावे में लाया—इन्हीं विषयों पर दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। कृष्णा बार-बार चाहती थी कि बहिन के घर का कुछ हाल पूछूँ; मगर निर्मला उसे कुछ पूछने का अवसर न देती थी। वह जानती थी कि यह जो बातें पूछेगी, उसके बताने में मुझे सङ्कोच होगा। आख़िर एक बार कृष्णा पूछ ही बैठी—जीजा जी भी आएँगे न?

निर्मला—आने को कहा तो है।

कृष्णा—अब तो तुमसे प्रसन्न रहते हैं न, या अब भी वही हाल है। मैं तो सुना करती थी, दुहाज पति अपनी स्त्री को प्राणों

से भी प्रिय समझता है, यहाँ बिलकुल उलटी बात देखी। आखिर किस बात पर बिगड़ते रहते हैं?

निर्मला—अब मैं किसी के मन की बात क्या जानूँ?

कृष्णा—मैं तो समझती हूँ, तुम्हारी रुखाई से वह चिढ़ते होंगे। तुम तो यहीं से जली हुई गई थीं। वहाँ भी उन्हें कुछ कहा होगा?

निर्मला—यह बात नहीं है कृष्णा; मैं सौगन्द खाकर कहती हूँ, जो मेरे मन में उनकी ओर से जरा भी मैल हो। मुझसे जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूँ। अगर उनकी जगह कोई देवता भी होता, तो भी मैं इससे ज्यादा और कुछ न कर सकती। उन्हें भी मुझसे प्रेम है, बराबर मेरा मुँह देखते रहते हैं; लेकिन जो बात उनके और मेरे क़ाबू से बाहर है, उसके लिए वह क्या कर सकते हैं; और मैं क्या कर सकती हूँ? न वह जवान हो सकते हैं, न मैं बुढ़िया हो सकती हूँ। जवान बनने के लिए वह न जाने कितने रस और भस्म खाते रहते हैं, मैं बुढ़िया बनने के लिए दूध-घी सब छोड़े बैठी हूँ। सोचती हूँ, मेरे दुबलेपन ही से अवस्था का भेद कुछ कम हो जाय; लेकिन न उन्हें पौष्टिक पदार्थों से कोई लाभ होता है; न मुझे उपवासों से! जब से मन्साराम का देहान्त हो गया है, तबसे उनकी दशा और भी खराब हो गई है।

कृष्णा—मन्साराम को तो तुम भी बहुत प्यार किया करती थीं।

निर्मला—वह लड़का ही ऐसा था कि जो देखता था, प्यार करता था। ऐसी बड़ी-बड़ी डोरेदार आँखें मैं ने किसी की नहीं देखीं।

कमल की भाँति मुख हरदम खिला रहता था। ऐसा साहसी कि अगर अवसर आ पड़ता, तो आग में फाँद जाता। कृष्णा, मैं तुमसे सच कहती हूँ, जब वह मेरे पास आकर बैठ जाता था, तो मैं अपने को भूल जाती थी। जी चाहता था, यह हरदम सामने बैठा रहे: और मैं देखा करूँ! मेरे मन में पाप का लेश भी न था। अगर एक क्षण के लिए भी मैं ने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो, तो मेरी आँखें फूट जायँ; पर न जाने क्यों उसे अपने पास देख कर मेरा हृदय फूला न समाता था। इसीलिए मैंने पढ़ने का स्वाँग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूँ कि अगर उसके मन में पाप होता, तो मैं उसके लिए सब कुछ कर सकती थी।

कृष्णा—अरे बहिन, चुप रहो; कैसी बातें मुँह से निकालती हो।

निर्मला—हाँ, यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है; और है भी बुरी; लेकिन मनुष्य की प्रकृति को तो कोई बदल नहीं सकता। तूही बता—एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाय, तो तू क्या करेगी?

कृष्णा—बहिन, मैं तो जहर खाकर सो रहूँ। मुझसे तो उसका मुँह भी न देखते बने!

निर्मला—तो बस यही समझ ले। उस लड़के ने कभी मेरी ओर आँख उठा कर नहीं देखा; लेकिन बुड्ढे शक्की तो होते ही हैं—तुम्हारे जीजा उस लड़के के दुश्मन हो गए; और आखिर उसकी जान लेकर ही छोड़ी। जिस दिन उसे मालूम हो गया कि पिता जी के मन में मेरी ओर से सन्देह है, उसी दिन से उसे ज्वर

चढ़ा, जो जान लेकर ही उतरा। हाय! उस अन्तिम समय का दृश्य आँखों से नहीं उतरता! मैं अस्पताल गई थी, वह ज्वर में बेहोश पड़ा था—उठने की शक्ति न थी; लेकिन ज्योंही मेरी आवाज़ सुनी, चौंक कर उठ बैठा; और माता-माता कह कर मेरे पैरों पर गिर पड़ा! (रो कर) कृष्णा, उस समय ऐसा जी चाहता था कि अपने प्राण निकाल कर उसे दे दूँ। मेरे पैरों पर ही वह मूर्च्छित हो गया; और फिर आँखें न खोलीं। डॉक्टर ने उसकी देह में ताज़ा ख़ून डालने का प्रस्ताव किया था, यही सुन कर मैं दौड़ी गई थी; लेकिन जब तक डॉक्टर लोग वह क्रिया आरम्भ करें, उसके प्राण निकल गए!

कृष्णा—ताज़ा रक्त पड़ जाने से उसकी जान बच जाती?

निर्मला—कौन जानता है! लेकिन मैं तो अपने रुधिर की अन्तिम बूँद देने को तैयार थी। उस दशा में भी उसका मुख-मण्डल दीपक की भाँति चमकता था। अगर वह मुझे देखते ही दौड़ कर मेरे पैरों पर न गिर पड़ता—पहले कुछ रक्त देह में पहुँच जाता, तो शायद बच जाता।

कृष्णा—तो तुमने उन्हें उसी वक़्त लेटा क्यों न दिया?

निर्मला—अरे पगली, तू अभी तक बात नहीं समझी। वह मेरे पैरों पर गिर कर और माता-पुत्र का सम्बन्ध दिखा कर, अपने बाप के दिल से वह सन्देह निकाल देना चाहता था। केवल इसीलिए वह उठा था। मेरा क्लेश मिटाने के लिए उसने प्राण दिए और उसकी वह इच्छा पूरी हो गई। तुम्हारे जीजा जी उसी

दिल से सीधे हो गए। अब तो उनकी दशा पर मुझे दया आती है। पुत्र-शोक उनके प्राण लेकर छोड़ेगा। मुझ पर सन्देह करके मेरे साथ जो अन्याय किया है, अब उसका प्रतिशोध कर रहे हैं। अब की उनकी सूरत देख कर तू डर जायगी। बूढ़े बाबा हो गए हैं। कमर भी कुछ झुक चली है।

कृष्णा—बुड्ढे लोग इतने शक्की क्यों होते हैं; बहिन ?

निर्मला—यह जाकर बुड्ढों से पूछ !

कृष्णा—मैं तो समझती हूँ, उनके दिल में हरदम एक चोर सा बैठा रहता होगा कि मैं इस युवती को प्रसन्न नहीं रख सकता। इसीलिए ज़रा-ज़रा सी बात पर उन्हें शक होने लगता है।

निर्मला—जानती तो है, फिर मुझसे क्यों पूछती है ?

कृष्णा—इसीलिए बेचारा स्त्री से दबता भी होगा। देखने वाले समझते होंगे कि यह बहुत प्रेम करता है।

निर्मला—तूने इतने ही दिनों में इतनी बातें कहाँ से सीख लीं ? इन बातों को जाने दे, बता तुझे अपना वर पसन्द है ? उसकी तस्वीर तो देखी होगी ?

कृष्णा—हाँ, आई तो थी। लाऊँ, देखोगी ?

एक क्षण में कृष्णा ने तस्वीर लाकर निर्मला के हाथ में रख दी। निर्मला ने मुस्करा कर कहा—तू बड़ी भाग्यवान् है !

कृष्णा—अम्माँ जी ने भी बहुत पसन्द किया।

निर्मला—तुझे पसन्द है कि नहीं, सो कह ; दूसरों की बात न चला।

कृष्णा—(लजाती हुई) शक्ल-सूरत तो बुरी नहीं है, स्वभाव का हाल ईश्वर जाने। शास्त्री जी तो कहते थे, ऐसे सुशील और चरित्रवान् युवक कम होंगे।

निर्मला—यहाँ से तेरी तस्वीर भी गई थी ?

कृष्णा—गई तो थी, शास्त्री जी ही तो ले गए थे।

निर्मला—उन्हें पसन्द आई ?

कृष्णा—अब किसी के मन की बात मैं क्या जानूँ ? शास्त्री जी तो कहते थे, बहुत ख़ुश हुए थे।

निर्मला—अच्छा बता, तुझे क्या उपहार दूँ। अभी से बता दे, जिसमें बनवा रक्खूँ।

कृष्णा—जो तुम्हारा जी चाहे दे देना। उन्हें पुस्तकों से बहुत प्रेम है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें मँगवा देना।

निर्मला—उनके लिए नहीं पूछती, तेरे लिए पूछती हूँ।

कृष्णा—अपने ही लिए तो मैं भी कह रही हूँ।

निर्मला—(तस्वीर की तरफ़ देखती हुई) कपड़े सब खद्दर के मालूम होते हैं।

कृष्णा—हाँ, खद्दर के बड़े प्रेमी हैं। सुनती हूँ कि पीठ पर खद्दर लाद कर देहातों में बेचने जाया करते हैं। व्याख्यान देने में भी चतुर हैं।

निर्मला—तब तो तुझे भी खद्दर पहनना पड़ेगा। तुझे तो मोटे कपड़ों से चिढ़ है ?

कृष्णा—जब उन्हें मोटे कपड़े अच्छे लगते हैं, तो मुझे क्यों चिढ़ होगी ; मैं ने तो चर्ख़ा चलाना सीख लिया है।

निर्मला—सच ! सूत निकाल लेती है ?

कृष्णा—हाँ बहिन, थोड़ा-थोड़ा निकाल लेती हूँ। जब वह खद्दर के इतने प्रेमी हैं; तो चर्ख़ा भी जरूर चलाते होंगे। मैं न चला सकूँगी, तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

इस तरह बातें करते-करते दोनों बहिनें सोईं। कोई दो बजे रात को बच्ची रोई, तो निर्मला की नींद खुली। देखा तो कृष्णा की चारपाई ख़ाली पड़ी थी। निर्मला को आश्चर्य हुआ कि इतनी रात गए कृष्णा कहाँ चली गई। शायद पानी-वानी पीने गई हो। मगर पानी तो सिरहाने रक्खा हुआ है, फिर कहाँ गई है ? उसने दो-तीन बार उसका नाम लेकर आवाज़ दी; पर कृष्णा का पता न था। तब तो निर्मला घबरा उठी। उसके मन में भाँति-भाँति की शङ्काएँ होने लगीं। सहसा उसे ख़्याल आया कि शायद अपने कमरे में न चली गई हो। बच्ची सो गई, तो वह उठ-कर कृष्णा के कमरे के द्वार पर आई। उसका अनुभव ठीक था। कृष्णा अपने कमरे में थी। सारा घर सो रहा था; और वह बैठी चर्ख़ा चला रही थी। इतनी तन्मयता से शायद उसने थियेटर भी न देखा होगा। निर्मला दङ्ग रह गई ! अन्दर जाकर बोली—यह क्या कर रही है रे, यह चर्ख़ा चलाने का समय है ?

कृष्णा चौंक कर उठ बैठी ; और सङ्कोच से सिर झुका कर बोली—तुम्हारी नींद कैसे खुल गई ? पानी-वानी तो मैंने रख दिया था।

निर्मला—मैं कहती हूँ, दिन को तुझे समय नहीं मिलता, जो पिछली रात को चर्खा लेकर बैठी है ?

कृष्णा—दिन को तो फ़ुरसत ही नहीं मिलती।

निर्मला—(सूत देख कर) सूत तो बहुत महीन है।

कृष्णा—कहाँ बहिन, यह सूत तो मोटा है। मैं बारीक सूत कात कर उनके लिए एक साफ़ा बनाना चाहती हूँ। यही मेरा उपहार होगा।

निर्मला—बात तो तूने ख़ूब सोची है। इससे अधिक मूल्यवान् वस्तु उनकी दृष्टि में और क्या होगी ? अच्छा उठ इस वक़्त; कल कातना ! कहीं बीमार पड़ जायगी ; तो यह सब धरा रह जायगा।

कृष्णा—नहीं मेरी बहिन, तुम चल कर सोओ ; मैं अभी आती हूँ। निर्मला ने अधिक आग्रह नहीं किया—लेटने चली गई। मगर किसी तरह नींद न आई। कृष्णा की यह उत्सुकता और यह उमङ्ग देख कर उसका हृदय किसी अलक्षित आकांक्षा से आन्दोलित हो उठा। ओह ! इस समय इसका हृदय कितना प्रफुल्लित हो रहा है ! अनुराग ने इसे कितना उन्मत्त कर रक्खा है। तब उसे अपने विवाह की याद आई। जिस दिन तिलक गया था, उसी दिन से उसकी सारी चञ्चलता, सारी सजीविता बिदा हो गई थी ! वह अपनी कोठरी में बैठी अपनी क़िस्मत को रोती थी ; और ईश्वर से विनय करती थी कि प्राण निकल जायँ ! अपराधी जैसे दण्ड की प्रतीक्षा करता है, उसी भाँति वह विवाह की प्रतीक्षा

करती थी, उस विवाह की—जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएँ विलीन हो जायँगी, जब मण्डप के नीचे बने हुए हवन-कुण्ड में उसकी आशाएँ जल कर भस्म हो जायँगी !!

सोलहवाँ परिच्छेद

महीना कटते देर न लगी! विवाह का शुभ-मुहूर्त आ पहुँचा! मेहमानों से घर भर गया। मुन्शी तोताराम एक दिन पहले ही आ गए; और उनके साथ निर्मला की सहेली भी आई। निर्मला ने तो बहुत आग्रह न किया था—वह खुद ही आने को उत्सुक थी। निर्मला को सबसे बड़ी उत्कण्ठा यही थी कि वर के बड़े भाई के दर्शन करूँगी, और हो सका, तो उनकी सुबुद्धि पर धन्यवाद दूँगी!

सुधा ने हँस कर कहा—तुम उनसे बोल सकोगी?

निर्मला—क्यों, बोलने में क्या हानि है। अब तो दूसरा ही सम्बन्ध हो गया। और मैं न बोल सकूँगी, तो तुम तो हो ही!

सुधा—न भाई, मुझसे यह न होगा। मैं पराये मर्द से नहीं बोल सकती। न जाने कैसे आदमी हों?

निर्मला—आदमी तो बुरे नहीं हैं; और फिर तुम्हें उनसे कुछ

विवाह तो करना नहीं, जरा सा बोलने में क्या हानि है? डॉक्टर साहब यहाँ होते तो मैं तुम्हें आज्ञा दिला देती।

सुधा—जो लोग हृदय के उदार होते हैं, क्या चरित्र के भी अच्छे होते हैं? पराई स्त्री को घूरने में तो किसी मर्द को सङ्कोच नहीं होता।

निर्मला—अच्छा न बोलना, मैं ही बातें कर लूँगी, घूर लेंगे जितना उनसे घूरते बनेगा; बस, अब तो राजी हुई।

इतने में कृष्णा आकर बैठ गई। निर्मला ने मुस्करा कर कहा—सच बता कृष्णा, तेरा मन इस वक्त क्यों उचाट हो रहा है?

कृष्णा—जीजा जी बुला रहे हैं, पहले जाकर सुन आओ, पीछे गप्पें लड़ाना। बहुत बिगड़ रहे हैं।

निर्मला—क्या है, तूने कुछ पूछा नहीं?

कृष्णा—कुछ बीमार से मालूम होते हैं। बहुत दुबले हो गए हैं।

निर्मला—तो जरा बैठ कर उनका मन बहला देती, यहाँ दौड़ी क्या चली आई। यह कहो ईश्वर ने कृपा की, नहीं तो ऐसा ही पुरुष तुझे भी मिलता। जरा बैठ कर बातें तो करो। बुड्ढे बातें बड़ी लच्छेदार करते हैं। जवान इतने डींगियल नहीं होते!

कृष्णा—नहीं बहिन, तुम जाओ; मुझसे तो वहाँ नहीं बैठा जाता।

निर्मला चली गई, तो सुधा ने कृष्णा से कहा—अब तो बारात आ गई होगी। द्वार-पूजा क्यों नहीं होती?

कृष्णा—क्या जाने बहिन, शास्त्री जी सामान इकट्ठा कर रहे हैं।

सुधा—सुना है, दूल्हा की भावज बड़ी कड़े स्वभाव की स्त्री है।

कृष्णा—कैसे मालूम ?

सुधा—मैं ने सुना है, इसलिए चेताए देती हूँ। चार बातें ग़म खाकर रहना होगा।

कृष्णा—मेरी झगड़ने की आदत ही नहीं। जब मेरी तरफ़ से कोई शिकायत ही न पावेंगी, तो क्या अनायास ही बिगड़ेंगी ?

सुधा—हाँ, सुना तो ऐसा ही है। झूठमूठ लड़ा करती हैं।

कृष्णा—मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूँ—नम्रता पत्थर को भी मोम कर देती है।

सहसा शोर मचा—बारात आ रही है। दोनों रमणियाँ खिड़की के सामने आ बैठीं। एक क्षण में निर्मला भी आ पहुँची।

वर के बड़े भाई को देखने की उसे बड़ी उत्सुकता हो रही थी।

सुधा ने कहा—कैसे पता चलेगा कि बड़े भाई कौन हैं ?

निर्मला—शास्त्री जी से पूछूँ तो मालूम हो। हाथी पर तो कृष्णा के ससुर महाशय हैं। अच्छा, डॉक्टर साहब यहाँ कैसे आ पहुँचे। वह घोड़े पर क्या हैं, देखती नहीं हो ?

सुधा—हाँ, हैं तो वही।

निर्मला—उन लोगों से मित्रता होगी। कोई सम्बन्ध तो नहीं है ?

सुधा—अब भेंट हो, तो पूछूँ; मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

निर्मला—पालकी में जो महाशय बैठे हुए हैं, वह तो दूल्हा के भाई जैसे नहीं दीखते।

सुधा—बिलकुल नहीं, मालूम होता है, सारी देह में पेट ही पेट है।

निर्मला—दूसरे हाथी पर कौन बैठा हुआ है, समझ में नहीं आता।

सुधा—कोई हो, दूल्हा का भाई नहीं हो सकता। उसकी उम्र नहीं देखती हो—चालीस के ऊपर होगी।

निर्मला—शास्त्री जी तो इस वक्त द्वार-पूजा की फ़िक्र में हैं, नहीं तो उनसे पूछती।

संयोग से नाई आ गया। सन्दूक़ों की कुञ्जियाँ निर्मला ही के पास थीं। इस वक्त द्वार-चार के लिए कुछ रुपए की जरूरत थी, माता ने भेजा था। यह नाई भी पण्डित मोटेराम जी के साथ तिलक लेकर गया था। निर्मला ने कहा—क्या अभी रुपए चाहिए?

नाई—हाँ बहिन जी, चल कर दे दीजिए।

निर्मला—अच्छा चलती हूँ। पहले यह बता, तू दूल्हा के बड़े भाई को पहचानता है?

नाई—पहचानता काहे नहीं, वह क्या सामने हैं।

निर्मला—कहाँ, मैं तो नहीं देखती?

नाई—अरे, वह क्या घोड़े पर सवार हैं? वही तो हैं।

निर्मला ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, घोड़े पर दूल्हा के भाई हैं! पहचानता है या अटकल से कह रहा है?

नाई—अरे बहिन जी, क्या इतना भूल जाऊँगा ? अभी तो जल-पान का सामान दिए चला आता हूँ ।

निर्मला—अरे, यह तो डॉक्टर साहब हैं, मेरे पड़ोस में रहते हैं ।

नाई—हॉ-हाँ, वही तो डॉक्टर साहब हैं ।

निर्मला ने सुधा की ओर देख कर कहा—सुनती हो बहिन इसकी बातें ?

सुधा ने हँसी रोक कर कहा—झूठ बोलता है ।

नाई—अच्छा साहब, झूठ ही सही; अब बड़ों के मुँह कौन लगे । अभी शास्त्री जी से पुछवा दूँगा, तब तो मानिएगा ?

नाई के आने में देर हुई, तो मोटेराम ख़ुद आँगन में आकर शोर मचाने लगे—इस घर की मर्याद रखना ईश्वर ही के हाथ है । नाई घण्टे भर से आया हुआ है, और अभी तक रुपए नहीं मिले ।

निर्मला—ज़रा यहाँ चले आइएगा; शास्त्री जी ? कितने रुपए दरकार हैं, निकाल दूँ ?

शास्त्री जी भुनभुनाते और ज़ोर-ज़ोर से हाँफते हुए ऊपर आए; और एक लम्बी साँस लेकर बोले—क्या है ? यह बातों का समय नहीं है । जल्दी से रुपए निकाल दो ।

निर्मला—लीजिए, निकाल तो रही हूँ । अब क्या मुँह के बल गिर पड़ूँ । पहले यह बताइए कि दूल्हा के बड़े भाई कौन हैं ।

शास्त्री जी—राम-राम, इतनी सी बात के लिए मुझे आकाश पर लटका दिया । नाई क्या न पहचानता था ?

निर्मला—नाई तो कहता है कि वह जो घोड़े पर सवार हैं, वही है।

शास्त्री जी—तो फिर और किसे बता दे ? वही तो हैं ही।

नाई—घड़ी भर से कह रहा हूँ; पर बहिन जी मानती ही नहीं। निर्मला ने सुधा की ओर स्नेह, ममता, विनोद और कृत्रिम तिरस्कार की दृष्टि से देख कर कहा—अच्छा, तो तुम्हीं अब तक मेरे साथ यह त्रिया-चरित्र खेल रही थीं। मैं जानती तो तुम्हें यहाँ बुलाती ही नहीं। ओफ्फोह ! बड़ा गहरा पेट है तुम्हारा !! तुम महीनों से मेरे साथ यह शरारत करती चली आती हो; और कभी भूल से भी इस विषय का एक शब्द तुम्हारे मुँह से नहीं निकला। मैं तो दो-चार ही दिन में उबल पड़ती।

सुधा—तुम्हें मालूम हो जाता, तो तुम मेरे यहाँ आती ही क्यों ?

निर्मला—ग़ज़ब रे गजब, मैं डॉक्टर साहब से कई बार बातें कर चुकी हूँ। तुम्हारे ऊपर यह सारा पाप पड़ेगा। देखी कृष्णा तूने अपनी जेठानी की शरारत ? यह ऐसी मायाविनी हैं, इनसे डरती रहना !

कृष्णा—मैं तो ऐसी देवी के चरण धो-धोकर माथे चढ़ाऊँगी। धन्य भाग कि उनके दर्शन हुए ?

निर्मला—अब समझ गई। रुपए भी तुम्हीं ने भेजवाए होंगे। अब सिर हिलाया तो सच कहती हूँ, मार बैठूँगी।

सुधा—अपने घर बुला कर मेहमान का अपमान नहीं किया जाता।

निर्मला—देखो तो अभी कैसी-कैसी खबरें लेती हूँ। मैं ने तुम्हारा मान रखने को जरा सा लिख दिया था; और तुम सचमुच आ पहुँचीं। भला वहाँ वाले क्या कहते होंगे?

सुधा—सब से कह कर आई हूँ।

निर्मला—अब तुम्हारे पास कभी न आऊँगी। इतना तो इशारा कर देतीं कि डॉक्टर साहब से परदा रखना।

सुधा—उनके देख लेने ही से कौन बुराई हो गई। न देखते तो अपनी क़िस्मत को रोते कैसे? जानते कैसे कि लोभ में पड़ कर कैसी चीज खो दी! अब तो तुम्हें देख कर लाला जी हाथ मल कर रह जाते हैं। मुँह से तो कुछ नहीं कहते; पर मन में अपनी भूल पर पछताते हैं।

निर्मला—अब तुम्हारे घर कभी न जाऊँगी।

सुधा—अब पिण्ड नहीं छूट सकता। मैंने कौन तुम्हारे घर की राह नहीं देखी है।

द्वार-पूजा समाप्त हो चुकी थी। मेहमान लोग बैठे जल-पान कर रहे थे। मुन्शी तोताराम की बग़ल में ही डॉक्टर सिन्हा बैठे हुए थे। निर्मला ने कोठे पर चिक की आड़ से उन्हें बैठे देखा; और कलेजा थाम कर रह गई। एक आरोग्य, यौवन और प्रतिभा का देवता था, दूसरा......इस विषय में कुछ न कहना ही उचित है।

निर्मला ने डॉक्टर साहब को सैकड़ों ही बार देखा था; पर आज उसके हृदय में जो विचार उठे, वे कभी न उठे थे। बार-बार यही जी चाहता था कि बुला कर ख़ूब फटकारूँ, ऐसे-ऐसे ताने मारूँ कि वह

भी याद करें, रुला-रुला कर छोड़ूँ; मगर सहम करके रह जाती थी। बारात जनवासे चली गई थी। भोजन की तैयारी हो रही थी। निर्मला भोजन के थाल चुनने में व्यस्त थी, सहसा महरी ने आकर कहा—बिट्टी, तुम्हें सुधा रानी बुला रही हैं। तुम्हारे कमरे में बैठी हैं।

निर्मला ने थाल छोड़ दिए और घबराई हुई सुधा के पास आई, मगर अन्दर क़दम रखते ही ठिठक गई—डॉक्टर सिन्हा खड़े थे।

सुधा ने मुस्करा कर कहा—लो बहिन, बुला दिया। अब जितना चाहो, फटकारो। मैं दरवाजा रोके खड़ी हूँ, भाग नहीं सकते।

डॉक्टर साहब ने गम्भीर भाव से कहा—भागता कौन है. यहाँ तो सिर झुकाए खड़ा हूँ।

निर्मला ने हाथ जोड़ कर कहा—इसी तरह सदा कृपा-दृष्टि रखिएगा, भूल न जाइएगा! यही मेरी विनय है!!

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

कृष्णा के विवाह के बाद सुधा चली गई; लेकिन निर्मला मैके ही में रह गई। वकील साहब बार-बार लिखते थे; पर वह न जाती थी। वहाँ जाने को उसका जी ही न चाहता था। वहाँ कोई ऐसी चीज न थी, जो उसे खींच ले जाय। यहाँ माता की सेवा और छोटे भाइयों की देख-भाल में उसका समय बड़े आनन्द से कट जाता था। वकील साहब खुद आते, तो शायद वह जाने पर राजी हो जाती; लेकिन इस विवाह में मुहल्ले की कई स्त्रियों ने उनकी वह दुर्गति की थी कि बेचारे आने का नाम ही न लेते थे। सुधा ने भी कई बार पत्र लिखा; पर निर्मला ने उससे भी हीले-हवाले किए। आखिर एक दिन सुधा ने नौकर को साथ लिया; और स्वयं आ धमकी !

जब दोनों गले मिल चुकीं, तो सुधा ने कहा—तुम्हें तो वहाँ जाते मानो डर लगता है।

निर्मला—हाँ बहिन, डर तो लगता है। ब्याह की गई तीन साल में आई; अब की तो वहाँ उम्र ही खतम हो जायगी; फिर कौन बुलाता है; और कौन आता है ?

सुधा—आने को क्या हुआ; जब जी चाहे चली आना। वहाँ वकील साहब बेचैन हो रहे हैं।

निर्मला—बहुत बेचैन, रात को शायद नींद न आती हो ?

सुधा—बहिन, तुम्हारा कलेजा पत्थर का है। उनकी दशा देख कर तरस आता है। कहते थे, घर में कोई पूछने वाला नहीं, न कोई लड़का न बाला, किससे जी बहलावें ? जब से दूसरे मकान में उठ आए हैं, बहुत दुखी रहते हैं।

निर्मला—लड़के तो ईश्वर के दिए दो-दो हैं।

सुधा—उन दोनों की तो बड़ी शिकायत करते थे। जियाराम तो अब बात ही नहीं सुनता—तुरकी बतुरकी जवाब देता है। रहा छोटा, वह भी उसी के कहने में है। बेचारे बड़े लड़के को याद करके रोया करते हैं !

निर्मला—जियाराम तो शरीर न था, वह बदमाशी कब से सीख गया ? मेरी तो कोई बात न टालता था—इशारे पर काम करता था।

सुधा—क्या जानें बहिन ! सुना, कहता है आप ही ने भैया को ज़हर देकर मार डाला—आप हत्यारे हैं। कई बार तुमसे विवाह करने के लिए ताने दे चुका है। ऐसी-ऐसी बातें कहता है कि

वकील साहब रो पड़ते हैं। अरे और तो क्या कहूँ, एक दिन पत्थर उठा कर मारने दौड़ा था !

निर्मला ने गम्भीर चिन्ता में पड़ कर कहा—यह लड़का तो बड़ा शैतान निकला। उससे यह किसने कहा कि उसके भाई को उन्होंने ज़हर दे दिया है।

सुधा—वह तुम्हीं से ठीक होगा।

निर्मला को यह नई चिन्ता पैदा हुई ! अगर जिया का यही रङ्ग है—अपने बाप से लड़ने पर तैयार रहता है, तो मुझसे क्यों दबने लगा ? वह रात को बड़ी देर तक इसी फ़िक्र में डूबी रही। मन्साराम की आज उसे बहुत याद आई। उसके साथ ज़िन्दगी आराम से कट जाती। इस लड़के का जब अपने पिता के सामने ही यह हाल है, तो उनके पीछे उसके साथ कैसे निबाह होगा। घर हाथ से निकल ही गया। कुछ न कुछ क़र्ज़ अभी सिर पर होगा ही ! आमदनी का यह हाल !! ईश्वर ही बेड़ा पार लगावेंगे ! आज पहली बार निर्मला को बच्ची की फ़िक्र पैदा हुई ! इस बेचारी का न जाने क्या हाल होगा ? ईश्वर ने यह विपत्ति भी सिर डाल दी ! मुझे तो इसकी ज़रूरत न थी। जन्म ही लेना था, तो किसी भाग्यवान् के घर जन्म लेती। बच्ची उसकी छाती से लिपटी हुई सो रही थी। माता ने उसको और भी चिमटा लिया, मानो कोई उसके हाथ से उसे छीने लिए जाता है !!

निर्मला के पास ही सुधा की चारपाई भी थी। निर्मला तो चिन्ता-सागर में ग़ोता खा रही थी; और सुधा मीठी नींद का

आनन्द उठा रही थी। क्या उसे अपने बालक की फ़िक्र सताती है? मृत्यु तो बूढ़े और जवान का भेद नहीं करती; फिर सुधा को क्यों कोई चिन्ता नहीं सताती। उसे तो कभी भविष्य की चिन्ता से उदास नहीं देखा!

सहसा सुधा की नींद खुल गई। उसने निर्मला को अभी तक जागते देखा, तो बोली—अरे! अभी तुम सोई नहीं?

निर्मला—नींद ही नहीं आती!

सुधा—आँखें बन्द कर लो, आप ही नींद आ जायगी। मैं तो चारपाई पर आते ही मर सी जाती हूँ। वह जागते भी हैं, तो खबर नहीं होती। न जाने मुझे क्यों इतनी नींद आती है? शायद कोई रोग है।

निर्मला—हाँ, बड़ा भारी रोग है। इसे राज-रोग कहते हैं। डॉक्टर साहब से कहो—दवा शुरू कर दें।

सुधा—तो आखिर जाग कर क्या सोचूँ। कभी-कभी मैके की याद आ जाती है, तो उस दिन ज़रा देर में आँख लगती है।

निर्मला—डॉक्टर साहब की याद नहीं आती?

सुधा—कभी नहीं, उनकी याद क्यों आए? जानती हूँ कि टेनिस खेल कर आए होंगे; खाना खाया होगा और आराम से लेटे होंगे।

निर्मला—लो, सोहन भी जाग गया। जब तुम जाग गईं, तो भला वह क्यों सोने लगा?

सुधा—हाँ बहिन, इसकी अजीब आदत है। मेरे साथ सोता

है और मेरे ही साथ जागता है। उस जन्म का कोई तपस्वी है। देखो, इसके माथे पर तिलक का कैसा निशान है। बाँहों पर भी ऐसे ही निशान हैं। जरूर कोई तपस्वी है।

निर्मला—तपस्वी लोग तो चन्दन-तिलक नहीं लगाते। उस जन्म का कोई धूर्त पुजारी होगा। क्यों रे, तू कहाँ का पुजारी था? बता!

सुधा—इसका ब्याह मैं बच्ची से करूँगी!

निर्मला—चलो बहिन, गाली देती हो। बहिन से भी भाई का ब्याह होता है?

सुधा—मैं तो करूँगी, चाहे कोई कुछ कहे। ऐसी सुन्दर बहू और कहाँ पाऊँगी। जरा देखो तो बहिन, इसकी देह कुछ गर्म है या मुझ ही को मालूम होती है!

निर्मला ने सोहन का माथा छूकर कहा—नहीं, नहीं, देह गर्म है। यह ज्वर कब आ गया? दूध तो पी रहा है न?

सुधा—अभी सोया था, तब तो देह ठण्ढी थी। शायद सर्दी लग गई, ओढ़ा कर सुलाए देती हूँ। सवेरे तक ठीक हो जायगा।

सवेरा हुआ तो सोहन की दशा और भी खराब हो गई। उसकी नाक बहने लगी; और बुखार और भी तेज़ हो गया। आँखें चढ़ गईं और सिर झुक गया। न वह हाथ पैर हिलाता था, न हँसता-बोलता था; बस चुपचाप पड़ा था। ऐसा मालूम होता था कि उसे इस वक्त किसी का बोलना अच्छा नहीं लगता।

कुछ-कुछ खाँसी भी आने लगी। अब तो सुधा घबराई। निर्मला की भी राय हुई कि डॉक्टर साहब को बुलाया जाय; लेकिन उसकी बूढ़ी माता ने कहा—डॉक्टर-हकीम का यहाँ कुछ काम नहीं। साफ़ तो देख रही हूँ कि बच्चे को नजर लग गई है। भला डॉक्टर आकर क्या करेगा?

सुधा—अम्माँ जी, भला यहाँ नजर कौन लगा देगा? अभी तक तो बाहर कहीं गया भी नहीं!

माता—नजर कोई लगाता नहीं बेटी, किसी-किसी आदमी की दीठ ही बुरी होती है—आप ही आप लग जाती है। कभी-कभी माँ-बाप तक की नजर लग जाती है। जबसे आया है, एक बार भी नहीं रोया। चोंचले बच्चों की यही गति होती है। मैं तो इसे हुमकते देख कर डरी थी कि कुछ न कुछ अनिष्ट होने वाला है। आँखें नहीं देखती हो कितनी चढ़ गई हैं। यही नजर की सबसे बड़ी पहिचान है।

बुढ़िया महरी और पड़ोस की पण्डिताइन ने इस कथन का अनुमोदन कर दिया। बस, मँहगू ओझा बुला लिया गया। मँहगू ने आकर बच्चे का मुँह देखा और हँस कर बोला—मालिकिन, यह दीठ है और कुछ नहीं। जरा पतली-पतली तीलियाँ तो मँगवा दीजिए। भगवान् ने चाहा, तो सन्झा तक बच्चा हँसने-खेलने लगेगा।

सरकण्डे के पाँच टुकड़े लाए गए। मँहगू ने उन्हें बराबर करके एक डोरे से बाँध दिया और कुछ बुदबुदा कर उसी पोले

हाथों से पाँच बार सोहन का सिर सुहलाया। अब जो देखा, तो पाँचों तीलियाँ छोटी-बड़ी हो गई थीं। सब स्त्रियाँ यह कौतुक देख कर दङ्ग रह गईं। अब नज़र में किसे सन्देह हो सकता था? मँहगू ने फिर बच्चे को तीलियों से सुहलाना शुरू किया। अब की तीलियाँ बराबर हो गईं। केवल थोड़ा सा अन्तर रह गया। यह इस बात का प्रमाण था कि नज़र का असर अब थोड़ा सा और रह गया है। मँहगू सबको दिलासा देकर शाम को फिर आने का वायदा करके चला गया। बालक की दशा दिन को और भी ख़राब हो गई। खाँसी का ज़ोर हो गया। शाम के समय मँहगू ने आकर फिर तीलियों का तमाशा किया। इस वक्त पाँचों तीलियाँ बराबर निकलीं। स्त्रियाँ निश्चिन्त हो गईं; लेकिन सोहन को सारी रात खाँसते गुज़री। यहाँ तक कि कई बार उसकी आँखें उलट गईं। सुधा और निर्मला दोनों ने बैठ कर सबेरा किया। ख़ैर, रात कुशल से कट गई। अब वृद्धा माता जी नया रङ्ग लाईं। मँहगू नज़र न उतार सका, इसलिए अब किसी मौलवी से फूँक डलवाना ज़रूरी हो गया। सुधा फिर भी अपने पति को सूचना न दे सकी। महरी सोहन को एक चादर से लपेट कर एक मस्जिद में ले गई; और फूँक डलवा लाई। शाम को भी फूँक छोड़ी गई; पर सोहन ने सिर न उठाया। रात आ गई, सुधा ने आज मन में निश्चय किया कि रात कुशल से बीतेगी, तो प्रातःकाल पति को तार दूँगी।

लेकिन रात कुशल से न बीतने पाई! आधी रात जाते-जाते

बच्चा हाथ से निकल गया !! सुधा की जीवन-सम्पत्ति देखते-देखते उसके हाथों से छिन गई !!!

वही जिसके विवाह का दो दिन पहले विनोद हो रहा था, आज सारे घर को रुला रहा है। जिसकी भोली-भाली सूरत देख कर माता की छाती फूल उठती थी, उसी को देख कर आज माता की छाती फटी जाती है। सारा घर सुधा को समझाता था; पर उसके आँसू न थमते थे, सब्र न होता था। सबसे बड़ा दुख इस बात का था कि पति को कौन मुँह दिखाऊँगी। उन्हें ख़बर तक न दी!

रात ही को तार दे दिया गया; और दूसरे दिन डॉक्टर सिन्हा नौ बजते-बजते मोटर पर आ पहुँचे। सुधा ने उनके आने की ख़बर पाई, तो और भी फूट-फूट कर रोने लगी। बालक की जल-क्रिया हुई, डॉक्टर साहब कई बार अन्दर आए; किन्तु सुधा उनके पास न गई। उनके सामने कैसे जाय? उन्हें कौन मुँह दिखाए? उसने अपनी नादानी से उनके जीवन का रत्न छीन कर दरिया में डाल दिया। अब उनके पास जाते उसकी छाती के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे। बालक को उसकी गोद में देख कर पति की आँखें चमक उठती थीं। बालक उमक कर पिता की गोद में चला जाता था। माता फिर बुलाती, तो पिता की छाती से चिमट जाता था; और लाख चुमकारने-दुलारने पर बाप की गोद न छोड़ता था। तब माँ कहती थी—बड़ा मतलबी है। आज वह किसे गोद में लेकर पति के पास जायगी! उसकी सूनी गोद

देख कर कहीं वह चिल्ला कर रो न पड़े ! पति के सम्मुख जाने की अपेक्षा उसे मर जाना कहीं आसान जान पड़ता था । वह एक क्षण के लिए भी निर्मला को न छोड़ती थी कि कहीं पति से सामना न हो जाय !

निर्मला ने कहा—बहिन, अब जो होना था वह तो हो ही चुका; अब उनसे कब तक भागती फिरोगी । रात ही को चले जायँगे; अम्माँ कहती थीं ।

सुधा ने सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—कौन मुँह लेकर उनके पास जाऊँ ? मुझे डर लग रहा है कि उनके सामने जाते ही मेरे पाँव न थर्राने लगें और मैं गिर न पड़ूँ !

निर्मला—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। तुम्हें सँभाले रहूँगी ।

सुधा—मुझे छोड़ कर भाग तो न आओगी ?

निर्मला—नहीं-नहीं, भागूँगी नहीं ।

सुधा—मेरा कलेजा तो अभी से उमड़ा आता है । मैं इतना घोर वज्रपात होने पर भी बैठी हूँ, मुझे यही आश्चर्य हो रहा है ! सोहन को वह बहुत प्यार करते थे; बहिन ! न जाने उनके चित्त की क्या दशा होगी । मैं उन्हें ढाढ़स क्या दूँगी, आप ही रोती रहूँगी । क्या रात ही को चले जायँगे ?

निर्मला—हाँ, अम्माँ जी कहती थीं, छुट्टी नहीं ली है । दोनों सहेलियाँ मर्दाने कमरे की ओर चलीं; लेकिन कमरे के द्वार पर पहुँच कर सुधा ने निर्मला को विदा कर दिया । अकेली कमरे में दाख़िल हुई ।

डॉक्टर साहब घबरा रहे थे कि न जाने सुधा की क्या दशा

हो रही है! भाँति-भाँति की शङ्काएँ मन में आ रही थीं! जाने को तैयार तो बैठे थे; लेकिन जी न चाहता था! जीवन शून्य सा मालूम होता था। मन ही मन कुढ़ रहे थे, अगर ईश्वर को इतनी जल्दी यह पदार्थ देकर छीन लेना था, तो दिया ही क्यों था? उन्होंने तो कभी सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना न की थी। वह आजन्म निस्सन्तान रह सकते थे; पर सन्तान पाकर उससे वञ्चित हो जाना उन्हें असह्य जान पड़ता था! क्या सचमुच मनुष्य ईश्वर का खिलौना है? यही मानव-जीवन का महत्व है! वह केवल बालकों का घरोंदा है, जिसके बनने का न कोई हेतु है, न बिगड़ने का। फिर बालकों को भी तो अपने घरोंदों से—अपनी काग़ज़ की नावों से—अपने लकड़ी के घोड़ों से ममता होती है! अच्छे खिलौने को वह जान के पीछे छिपा कर रखते हैं। अगर ईश्वर बालक ही है, तो विचित्र बालक है!

किन्तु बुद्धि तो ईश्वर का यह रूप स्वीकार नहीं करती। अनन्त सृष्टि का कर्त्ता उद्दण्ड बालक नहीं हो सकता। हम उसे उन सारे गुणों से विभूषित करते हैं, जो हमारी बुद्धि की पहुँच से बाहर हैं। खिलाड़ीपन तो उन महान् गुणों में नहीं! क्या हँसते-खेलते बालकों का प्राण हर लेना कोई खेल है? क्या ईश्वर ऐसे पैशाचिक खेल खेलता है?

सहसा सुधा दबे पाँव कमरे में दाखिल हुई! डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए और उसके समीप आकर बोले—तुम कहाँ थीं सुधा? मैं तुम्हारी राह देख रहा था!

सुधा की आँखों में कमरा तैरता हुआ जान पड़ा। पति की गर्दन में हाथ डाल कर उसने उनकी छाती पर सिर रख दिया और रोने लगी; लेकिन इस अश्रु-प्रवाह में उसे असीम धैर्य और सान्त्वना का अनुभव हो रहा था। पति के वक्षस्थल से लिपटी हुई वह अपने हृदय में एक विचित्र स्फूर्ति और बल का सञ्चार होते हुए पाती थी, मानो पवन से थरथराता हुआ दीपक अञ्चल की आड़ में आ गया हो!

डॉक्टर साहब ने रमणी के अश्रु-सिञ्चित कपोलों को दोनों हाथों में लेकर कहा—सुधा, तुम इतना छोटा दिल क्यों करती हो? सोहन अपने जीवन में जो कुछ करने आया था, वह कर चुका था; फिर वह क्यों बैठा रहता। जैसे कोई वृक्ष जल और प्रकाश से बढ़ता है; लेकिन पवन के प्रबल झोंकों ही से सुदृढ़ होता है, उसी भाँति प्रणय भी दुख के आघातों ही से विकास पाता है। खुशी में साथ हँसने वाले बहुतेरे मिल जाते हैं। रञ्ज में जो साथ रोये, वही हमारा सच्चा मित्र है। जिन प्रेमियों को साथ रोना नहीं नसीब हुआ, वे मुहब्बत के मजे क्या जानें? सोहन की मृत्यु ने आज हमारे द्वैत को बिलकुल मिटा दिया। आज ही हमने एक दूसरे का सच्चा स्वरूप देखा है!

सुधा ने सिसकते हुए कहा—मैं नजर के धोखे में थी। हाय! तुम उसका मुँह भी नहीं देखने पाए!! न जाने इन दिनों उसे इतनी समझ कहाँ से आ गई थी। जब मुझे रोते देखता, तो अपने कष्ट भूल कर मुस्करा देता। तीसरे ही दिन मेरे लाड़ले की आँखें बन्द हो गईं। कुछ दवा-दर्पन भी न करने पाई।

यह कहते-कहते सुधा के आँसू फिर उमड़ आए। डॉक्टर सिन्हा ने उसे सीने से लगा कर करुणा से काँपती हुई आवाज़ में कहा—प्रिये, आज तक कोई ऐसा बालक या वृद्ध न मरा होगा, जिसके घर वालों को उसके दवा-दर्पन की लालसा पूरी हो गई हो!

सुधा—निर्मला ने मेरी बड़ी मदद की! मैं तो एकाध झपकी ले भी लेती थी; पर उनकी आँखें नहीं झपकीं। रात-रात लिए बैठी या टहलाती रहती थी। उसके एहसान कभी न भूलूँगी। क्या तुम आज ही जा रहे हो?

डॉक्टर—हाँ, छुट्टी लेने का मौक़ा न था। सिविल-सर्जन शिकार खेलने गया हुआ था।

सुधा—यह सब हमेशा शिकार ही खेला करते हैं?

डॉक्टर—राजाओं का और काम ही क्या है?

सुधा—मैं तो आज न जाने दूँगी।

डॉक्टर—जी तो मेरा भी नहीं चाहता।

सुधा—तो मत जाओ; तार दे दो! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। निर्मला को भी लेती चलूँगी।

सुधा वहाँ से लौटी, तो उसके हृदय का बोझ हलका हो गया था! पति की प्रेमपूर्ण कोमल वाणी ने उसके सारे शोक और सन्ताप को हरण कर लिया था। प्रेम में असीम विश्वास है, असीम धैर्य है; और असीम बल है!!

अठारहवाँ परिच्छेद

जब हमारे ऊपर कोई बड़ी विपत्ति आ पड़ती है, तो उससे हमें केवल दुख ही नहीं होता—हमें दूसरों के ताने भी सहने पड़ते हैं। जनता को हमारे ऊपर टिप्पणियाँ करने का वह सुअवसर मिल जाता है, जिसके लिए वह हमेशा बेचैन रहती है। मन्साराम क्या मरा, मानो समाज को उन पर आवाजें कसने का बहाना मिल गया। भीतर की बातें कौन जाने? प्रत्यक्ष बात यह थी कि यह सब सौतेली माँ की करतूत है। चारों तरफ यही चर्चा थी—ईश्वर न करे, लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो—अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरनी हो, वह बच्चों के रहते हुए अपना दूसरा ब्याह करे। ऐसा कभी नहीं देखा कि सौत के आने पर घर तबाह न हो गया हो। वही बाप, जो बच्चों पर जान देता था, सौत के आते ही उन्हीं बच्चों का दुश्मन हो जाता है—उसकी मति ही बदल जाती है। ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौत के बच्चों को अपना समझा हो!

मुश्किल यह थी कि लोग इन टिप्पणियों पर ही सन्तुष्ट न होते थे। कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें अब जियाराम और सियाराम से विशेष स्नेह हो गया था। वे दोनों बालकों से बड़ी सहानुभूति प्रकट करते; यहाँ तक कि दो-एक महिलाएँ तो उनकी माता के शील और स्वभाव को याद करके आँसू बहाने लगती थीं। हाय-हाय! बेचारी क्या जानती थी कि उसके मरते ही उसके लाड़लों की यह दुर्दशा होगी! अब दूध-मक्खन काहे को मिलता होगा?

जियाराम कहता—मिलता क्यों नहीं?

महिला कहती—मिलता है, अरे बेटा! मिलना भी कई तरह का होता है। पानी वाला दूध टके सेर का मँगा कर रख दिया, पियो चाहे न पियो—कौन पूछता है? नहीं तो बेचारी नौकर से दूध दुहवा कर मँगवाती थी, वह तो चेहरा ही कह देता है। दूध की सूरत छिपी नहीं रहती—वह सूरत ही नहीं रही!

जियाराम को अपनी माँ के समय के दूध का स्वाद तो याद था नहीं, जो इस आक्षेप का उत्तर देता; और न उस समय की अपनी सूरत ही याद थी, चुपका रह जाता। इन शुभाकांक्षाओं का असर भी पड़ना स्वाभाविक था। जियाराम को अपने घर वालों से चिढ़ होती जाती थी। मुन्शी जी मकान नीलाम हो जाने के बाद दूसरे घर में उठ आए, तो किराए की फ़िक्र हुई। निर्मला ने मक्खन बन्द कर दिया। जब वह आमदनी ही नहीं रही, तो वह ख़र्च कैसे रहता? दोनों कहार अलग कर दिए गए, जियाराम को

पढ़ाने वाले मास्टर को भी जवाब दे दिया गया। जियाराम को यह कतर-ब्योंत बुरी लगती थी। जब निर्मला मैके चली गई, तो मुन्शी जी ने दूध भी बन्द कर दिया। नवजात कन्या की चिन्ता अभी से उनके सिर सवार हो गई थी!

जियाराम ने बिगड़ कर कहा—दूध बन्द करने से तो आपका महल बन रहा होगा, भोजन भी बन्द कर दीजिए!

मुन्शी जी—दूध पीने का शौक़ है, तो जाकर दुहा क्यों नहीं लाते। पानी के पैसे तो मुझसे न दिए जायँगे!

जियाराम—मैं दूध दुहाने जाऊँ, कोई स्कूल का लड़का देख ले तब?

मुन्शी जी—तब कुछ नहीं, कह देना अपने लिए दूध लिए जाता हूँ। दूध लाना कोई चोरी नहीं है।

जियाराम—चोरी नहीं है! आप ही को कोई दूध लाते देख ले, तो आपको शर्म न आएगी?

मुन्शी जी—बिलकुल नहीं! मैं ने तो इन्हीं हाथों से पानी खींचा है, अनाज की गठरियाँ लाया हूँ। मेरे बाप लखपती नहीं थे।

जियाराम—मेरे बाप तो ग़रीब नहीं हैं, मैं क्यों दूध दुहाने जाऊँ? आख़िर आपने कहारों को क्यों जवाब दे दिया?

मुन्शी जी—क्या तुम्हें इतना भी नहीं सूझता कि मेरी आमदनी अब पहली सी नहीं रही, इतने नादान तो नहीं हो।

जियाराम—आख़िर आपकी आमदनी क्यों कम हो गई?

मुन्शी जी—जब तुम्हें अक़्ल ही नहीं है, तो क्या समझाऊँ?

यहाँ जिन्दगी से तङ्ग आ गया हूँ, मुक़दमे कौन ले; और ले भी तो तैयार कौन करे? वह दिल ही नहीं रहा। अब तो जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा हूँ। सारे अर्मान लल्लू के साथ चले गए!

जियाराम—अपने ही हाथों न?

मुन्शी जी ने चीख़ कर कहा—अरे अहमक़! यह ईश्वर की मर्ज़ी थी! अपने हाथों कोई अपना गला काटता है।

जियाराम—ईश्वर तो आपका विवाह करने न आया था।

मुन्शी जी अब ज़ब्त न कर सके; लाल-लाल आँखें निकाल कर बोले—क्या तुम आज लड़ने के लिए कमर बाँध कर आए हो? आख़िर किस बिरते पर? मेरी रोटियाँ तो नहीं चलाते। जब इस क़ाबिल हो जाना, तो मुझे उपदेश देना। तब मैं सुन लूँगा। अभी तुमको मुझे उपदेश देने का अधिकार नहीं है। कुछ दिनों अदब और तमीज़ सीखो। तुम मेरे सलाहकार नहीं हो कि मैं जो काम करूँ, उसमें तुमसे सलाह लूँ। मेरी पैदा की हुई दौलत है, उसे जैसे चाहूँ ख़र्च कर सकता हूँ। तुमको ज़बान खोलने का भी हक़ नहीं है। अगर फिर तुमने मुझसे ऐसी बेअदबी की, तो नतीजा बुरा होगा। जब मन्साराम जैसा रत्न खोकर मेरे प्राण न निकले, तो तुम्हारे बग़ैर मैं मर न जाऊँगा; समझ गए!

यह कड़ी फटकार पाकर भी जियाराम वहाँ से न टला। निःशङ्क भाव से बोला—तो क्या आप चाहते हैं कि हमें चाहे कितनी ही तकलीफ़ हो, मुँह न खोलें! मुझसे तो यह न होगा।

भाई साहब को अदब और तमीज का जो इनाम मिला, उसकी मुझे भूख नहीं! मुझ में जहर खाकर प्राण देने की हिम्मत नहीं! ऐसे अदब को दूर ही से दण्डवत् करता हूँ!

मुन्शी जी—तुम्हें ऐसी बातें करते हुए शर्म नहीं आती?

जियाराम—लड़के अपने बुज़ुर्गों ही की नक़ल करते हैं।

मुन्शी जी का क्रोध शान्त हो गया! जियाराम पर उसका कुछ भी असर न होगा, इसका उन्हें यक़ीन हो गया। उठ कर टहलने चले गए। आज उन्हें सूचना मिल गई कि इस घर का शीघ्र ही सर्वनाश होने वाला है!!

उस दिन से पिता और पुत्र में किसी न किसी बात पर रोज़ ही एक झपट हो जाती। मुन्शी जी ज्यों-ज्यों तरह देते थे, जियाराम और भी शेर होता जाता था। एक दिन जियाराम ने रुक्मिणी से यहाँ तक कह डाला—बाप है, यह समझ कर छोड़ देता हूँ, नहीं तो मेरे ऐसे-ऐसे साथी हैं कि चाहूँ तो भरे बाज़ार में पिटवा दूँ। रुक्मिणी ने मुन्शी जी से कह दिया। मुन्शी जी ने प्रकट रूप से तो बेपरवाई ही दिखाई; पर उनके मन में शङ्का समा गई। शाम को सैर करना छोड़ दिया। यह नई चिन्ता सवार हो गई। इसी भय से निर्मला को भी न बुलाते थे कि यह शैतान उसके साथ भी यही बर्ताव करेगा। जियाराम एक बार दबी ज़बान कह भी चुका था—देखूँ, अब की कैसे इस घर में आती हैं। दूर ही से न दुत्कार दूँ, तो जियाराम नाम नहीं। बुड्ढे मियाँ कर ही क्या लेंगे। मुन्शी जी भी ख़ूब समझ गए थे कि मैं इसका कुछ भी नहीं

कर सकता। कोई बाहर का आदमी होता, तो उसे पुलिस और क़ानून के शिकञ्जे में कसते। अपने लड़के को क्या करें? सच कहा है—आदमी हारता है, तो अपने लड़कों ही से!

एक दिन डॉक्टर सिन्हा ने जियाराम को बुला कर समझाना शुरू किया। जियाराम उनका अदब करता था। चुपचाप बैठा सुनता रहा। जब डॉक्टर साहब ने अन्त में पूछा, आख़िर तुम चाहते क्या हो? तो वह बोला—साफ़-साफ़ कह दूँ न? बुरा तो न मानिएगा?

सिन्हा—नहीं, जो कुछ तुम्हारे दिल में हो, साफ़-साफ़ कह दो।

जियाराम—तो सुनिए, जब से भैया मरे हैं, मुझे पिता जी की सूरत देख कर क्रोध आता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ने भैया की हत्या की है; और एक दिन मौक़ा पाकर हम दोनों भाइयों की भी हत्या करेंगे। अगर इनकी यह इच्छा न होती, तो ब्याह ही क्यों करते?

डॉक्टर साहब ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोक कर कहा—तुम्हारी हत्या करने के लिए उन्हें ब्याह करने की क्या जरूरत थी? यह बात मेरी समझ में नहीं आई। बिना विवाह किए भी तो वह हत्या कर सकते थे!

जियाराम—कभी नहीं! उस वक़्त तो उनका दिल ही कुछ और था—हम लोगों पर जान देते थे। अब मुँह तक नहीं देखना चाहते। इनकी यही इच्छा है कि उन दोनों प्राणियों के सिवा घर में और

कोई न रहे। अब जो लड़के होंगे उनके रास्ते से हम लोगों को हटा देना चाहते हैं, यही उन दोनों आदमियों की दिली मन्शा है। हमें तरह-तरह की तकलीफें देकर भगा देना चाहते हैं! इसीलिए आजकल मुक़दमे नहीं लेते। हम दोनों भाई आज मर जायँ, तो फिर देखिए कैसी बहार होती है।

डॉक्टर—अगर तुम्हें भगाना ही होता, तो कोई इल्ज़ाम लगा कर घर से निकाल न देते?

जिया०—इसके लिए पहले ही से तैयार बैठा हुआ हूँ।

डॉक्टर—सुनूँ, क्या तैयारी की है?

जिया०—जब मौक़ा आएगा, देख लीजिएगा।

यह कह कर जियाराम चलता हुआ। डॉक्टर सिन्हा ने बहुत पुकारा; पर उसने फिर कर देखा भी नहीं।

कई दिन के बाद डॉक्टर साहब की जियाराम से फिर मुलाक़ात हो गई। डॉक्टर साहब सिनेमा के प्रेमी थे, और जियाराम की तो जान ही सिनेमा में बसती थी। डॉक्टर साहब ने सिनेमा पर आलोचना करके जियाराम को बातों में लगा लिया, और अपने घर लाए। भोजन का समय आ गया था, दोनों आदमी साथ ही भोजन करने बैठे। जियाराम को यहाँ भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा; बोला—मेरे यहाँ तो जब से महाराज अलग हुआ, खाने का मज़ा ही जाता रहा। बुआ जी पक्का वैष्णवी भोजन बनाती हैं। ज़बरदस्ती खा लेता हूँ; पर खाने की तरफ़ ताकने का जी नहीं चाहता।

डॉक्टर—मेरे यहाँ तो जब घर में खाना पकता है, तो इससे कहीं स्वादिष्ट होता है। तुम्हारी बुआ जी प्याज़-लहसुन न छूती होंगी।

जिया०—हाँ साहब, उबाल कर रख देती हैं, लाला जी को इसकी पर्वाह ही नहीं कि कोई खाता है या नहीं। इसीलिए तो महाराज को अलग किया है। अगर रुपए नहीं हैं, तो रोज़ गहने कहाँ से बनते हैं?

डॉक्टर—यह बात नहीं है जियाराम, उनकी आमदनी सचमुच बहुत कम हो गई है। तुम उन्हें बहुत दिक़ करते हो।

जिया०—(हँस कर) मैं उन्हें दिक़ करता हूँ! मुझसे क़सम ले लीजिए, जो कभी उनसे बोलता भी हूँ। मुझे बदनाम करने का उन्होंने बीड़ा उठा लिया है। बेसबब, बेवजह पीछे पड़े रहते हैं। यहाँ तक कि मेरे दोस्तों से भी उन्हें चिढ़ है। आप ही सोचिए, दोस्तों के बग़ैर कोई ज़िन्दा रह सकता है। मैं कोई लुच्चा नहीं हूँ कि लुच्चों की सुहबत रक्खूँ; मगर आप दोस्तों ही के पीछे मुझे रोज़ सताया करते हैं। कल तो मैंने साफ़ कह दिया—मेरे दोस्त मेरे घर आएँगे, किसी को अच्छा लगे या बुरा! जनाब, कोई हो; हर वक्त की धौंस नहीं सह सकता!!

डॉक्टर—मुझे तो भई उन पर बड़ी दया आती है। यह ज़माना उनके आराम करने का था। एक तो बुढ़ापा उस पर जवान बेटे का शोक; स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं। ऐसा आदमी क्या कर सकता है? वह जो कुछ थोड़ा-बहुत करता है, वही बहुत है। तुम अभी और कुछ नहीं कर सकते, तो कम से कम अपने

आचरण से तो उन्हें प्रसन्न रख सकते हो। बुड्ढों को प्रसन्न करना बहुत कठिन काम नहीं। यक़ीन मानो—तुम्हारा हँस कर बोलना ही उन्हें .खुश करने को काफ़ी है। इतना पूछने में तुम्हारा क्या ख़र्च होता है—बाबू जी, आपकी तबीयत कैसी है? वह तुम्हारी यह उद्दण्डता देख कर मन ही मन कुढ़ते रहते हैं। मैं तुमसे सच कहता हूँ, कई बार रो चुके हैं! उन्होंने मान लो शादी करने में ग़लती की। इसे वह भी स्वीकार करते हैं; लेकिन तुम अपने कर्त्तव्य से क्यों मुँह मोड़ते हो। वह तुम्हारे पिता हैं, तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए। एक बात भी ऐसी मुँह से न निकालनी चाहिए, जिससे उनका दिल दुखे। उन्हें यह ख़्याल करने का मौक़ा ही क्यों दो कि सब मेरी कमाई खाने वाले हैं, बात पूछने वाला कोई नहीं। मेरी उम्र तुमसे कहीं ज़्यादा है जियाराम; पर आज तक मैंने अपने पिता जी की किसी बात का जवाब नहीं दिया! वह आज भी मुझे डाटते हैं, सिर झुका कर सुन लेता हूँ। जानता हूँ, यह जो कुछ कहते हैं, मेरे भले ही को कहते हैं। माता-पिता से बढ़ कर हमारा हितैषी और कौन हो सकता है? उनके ऋण से कौन मुक्त हो सकता है?

जियाराम बैठा रोता रहा! अभी उसके सद्भावों का सम्पूर्णतः लोप न हुआ था। अपनी दुर्जनता उसे साफ़ नज़र आ रही थी। इतनी ग्लानि उसे बहुत दिनों से न आई थी। रोकर डॉक्टर साहब से कहा—मैं बहुत ही लज्जित हूँ। दूसरों के बहकाने में आ गया था। अब आप मेरी ज़रा भी

शिकायत न सुनेंगे। आप पिता जी से मेरे अपराध क्षमा करा दीजिए। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूँ। उन्हें मैंने बहुत सताया। उनसे कहिए—मेरे अपराध क्षमा कर दें, नहीं मैं मुँह में कालिख लगा कर कहीं निकल जाऊँगा—डूब मरूँगा!

डॉक्टर साहब अपनी उपदेश-कुशलता पर फूले न समाए। जियाराम को गले लगा कर बिदा किया!

जियाराम घर पहुँचा, तो ग्यारह बज गये थे। मुन्शी जी भोजन करके अभी बाहर आए थे। उसे देखते ही बोले—जानते हो कै बजे हैं? बारह का वक़्त है!

जियाराम ने बड़ी नम्रता से कहा—डॉक्टर सिन्हा मिल गए। उनके साथ उनके घर तक चला गया। उन्होंने खाने के लिए ज़िद की; मजबूरन् खाना पड़ा। इसी से देर हो गई।

मुन्शी जी—डॉक्टर सिन्हा से दुखड़े रोने गए होंगे या और कोई काम था?

जियाराम की नम्रता का चौथा भाग उड़ गया; बोला—दुखड़े रोने की मेरी आदत नहीं है।

मुन्शी जी—ज़रा भी नहीं, तुम्हारे मुँह में तो ज़बान ही नहीं। मुझसे जो लोग तुम्हारी बातें कहा करते हैं, वह गढ़ा करते होंगे?

जियाराम—और दिनों की मैं नहीं कहता; लेकिन आज डॉक्टर सिन्हा के यहाँ मैंने कोई बात ऐसी नहीं की, जो इस वक़्त आपके सामने न कर सकूँ।

मुन्शी जी—बड़ी ख़ुशी की बात है। बेहद ख़ुशी हुई ! आज से गुरु-दीक्षा ले ली है क्या ?

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और ग़ायब हो गया। सिर उठा कर बोला—आदमी बिना गुरु-दीक्षा लिए हुए भी अपनी बुराइयों पर लज्जित हो सकता है। अपना सुधार करने के लिए गुरु-मन्त्र कोई ज़रूरी चीज़ नहीं।

मुन्शी जी—अब तो लुच्चे न जमा होंगे ?

जियाराम—आप किसी को लुच्चा क्यों कहते हैं, जब तक ऐसा कहने के लिए आपके पास कोई प्रमाण नहीं ?

मुन्शी जी—तुम्हारे दोस्त सब लुच्चे-लफङ्गे हैं। एक भी भला आदमी नहीं। मैं तुमसे कई बार कह चुका कि उन्हें यहाँ मत जमा किया करो; पर तुमने सुना नहीं। आज मैं आख़िरी बार कहे देता हूँ कि अगर तुमने उन शोहदों को जमा किया, तो मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और ग़ायब हो गया। फड़क कर बोला—अच्छी बात है; पुलिस की सहायता लीजिए ! देखें पुलिस क्या करती है ? मेरे दोस्तों में आधे से ज़्यादा पुलिस के अफ़सरों ही के बेटे हैं। जब आप ही मेरा सुधार करने पर तुले हुए हैं, तो मैं व्यर्थ क्यों कष्ट उठाऊँ !

यह कहता हुआ जियाराम अपने कमरे में चला गया, और एक क्षण के बाद हारमोनियम के मीठे स्वरों की आवाज़ बाहर आने लगी !

सहृदयता का जलाया हुआ दीपक निर्दय व्यङ्ग के एक झोंके से बुझ गया ! अड़ा हुआ घोड़ा चुमकारने से जोर मारने लगा था; पर हण्टर पड़ते ही फिर अड़ गया और गाड़ी को पीछे ढकेलने लगा !!

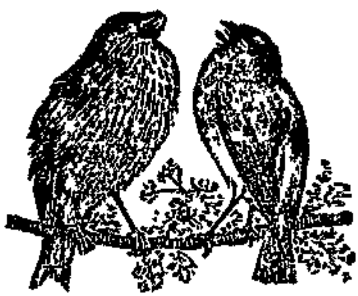

उन्नीसवाँ परिच्छेद

अब की सुधा के साथ निर्मला को भी आना पड़ा। वह तो मैके में कुछ दिन और रहना चाहती थी, लेकिन शोकातुरा सुधा अकेले कैसे रहती। उसकी ख़ातिर आना ही पड़ा।

रुक्मिणी ने भुङ्गी से कहा—देखती है, बहू मैके से कैसी निखर कर आई है।

भुङ्गी ने कहा—दीदी, माँ के हाथ की रोटियाँ लड़कियों को बहुत अच्छी लगती हैं।

रुक्मिणी—ठीक कहती है भुङ्गी, खिलाना तो कुछ माँ ही जानती है।

निर्मला को ऐसा मालूम हुआ कि घर का कोई आदमी उसके आने से .खुश नहीं। मुन्शी जी ने ख़ुशी तो बहुत दिखाई; पर हृदयगत चिन्ता को न छिपा सके। बच्ची का नाम सुधा ने आशा रख दिया था। वह आशा की मूर्ति सी थी भी। देख कर सारी

चिन्ता भाग जाती थी। मुन्शी जी ने उसे गोद में लेना चाहा, तो रोने लगी, दौड़ कर माँ से लिपट गई; मानो पिता को पहचानती ही नहीं। मुन्शी जी ने मिठाइयों से उसे परचाना चाहा! घर में कोई नौकर तो था नहीं, जाकर सियाराम से दो आने की मिठाइयाँ लाने को कहा। जियाराम भी बैठा हुआ था। बोल उठा—हम लोगों के लिए तो कभी मिठाइयाँ नहीं आतीं।

मुन्शी जी ने झुँझलाकर कहा—तुम लोग बच्चे नहीं हो।

जियाराम—और क्या बूढ़े हैं। मिठाइयाँ मँगवा कर रख दीजिए, तो मालूम हो कि बच्चे हैं या बूढ़े। निकालिए चार आने और। आशा की बदौलत हमारे नसीब भी जागें।

मुन्शी जी—मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं हैं। जाओ सिया, जल्द आना।

जिया०—सिया नहीं जायगा। किसी का ग़ुलाम नहीं है। आशा अपने बाप की बेटी है, तो वह भी अपने बाप का बेटा है।

मुन्शी जी—क्या फ़ुजूल की बातें करते हो। नन्हीं सी बच्ची की बराबरी करते तुम्हें शर्म नहीं आती। जाओ सियाराम, ये पैसे लो।

जिया०—मत जाना सिया! तुम किसी के नौकर नहीं हो।

सिया बड़ी दुविधा में पड़ गया। किसका कहना माने? अन्त में उसने जियाराम का कहना मानने का निश्चय किया। बाप ज्यादा से ज्यादा घुड़क देंगे, जिया तो मारेगा, फिर वह किसके पास फ़रियाद लेकर जायगा। बोला—मैं न जाऊँगा।

मुन्शी जी ने धमका कर कहा—अच्छा, तो मेरे पास फिर कोई चीज माँगने मत आना।

मुन्शी जी ख़ुद बाजार चले गए; और एक रुपए की मिठाई लेकर लौटे। दो आने की मिठाई माँगते हुए उन्हें शर्म आई। हलवाई उन्हें पहचानता था। दिल में क्या कहेगा?

मिठाई लिए हुए मुन्शी जी अन्दर चले गए। सियाराम ने मिठाई का बड़ा सा दोना देखा, तो बाप का कहना न मानने का उसे दुःख हुआ। अब वह किस मुँह से मिठाई लेने अन्दर जायगा। बड़ी भूल हुई। वह मन ही मन जियाराम के चाँटों की चोट और मिठाई की मिठास में तुलना करने लगा।

सहसा भुङ्गी ने दो तश्तरियाँ दोनों के सामने लाकर रख दीं। जियाराम ने बिगड़ कर कहा—इसे उठा ले जा।

भुङ्गी काहे को बिगड़ते हो बाबू, क्या मिठाई अच्छी नहीं लगती?

जिया०—मिठाई आशा के लिए आई है, हमारे लिए नहीं आई। ले जा, नहीं तो मैं सड़क पर फेंक दूँगा। हम तो पैसे-पैसे के लिए रटते रहते हैं; और यहाँ रुपयों की मिठाई आती है।

भुङ्गी—तुम ले लो सिया बाबू, यह न लेंगे न सही। सियाराम ने डरते-डरते हाथ बढ़ाया था कि जियाराम ने डाँट कर कहा—मत छूना मिठाई, नहीं तो हाथ तोड़ कर रख दूँगा। लालची कहीं का। सियाराम यह घुड़की सुन कर सहम उठा। मिठाई खाने की हिम्मत न पड़ी। निर्मला ने यह कथा सुनी तो

दोनों लड़कों को मनाने चली। मुन्शी जी ने कड़ी क़सम रखा दी।

निर्मला—आप समझते नहीं हैं। यह सारा गुस्सा मुझ पर है।

मुन्शी जी—गुस्ताख़ हो गया है। इस ख़्याल से कोई सख़्ती नहीं करता कि लोग कहेंगे बिना माँ के बच्चों को सताते हैं, नहीं तो सारी शरारत घड़ी भर में निकाल दूँ।

निर्मला—इसी बदनामी का मुझे भी तो डर है।

मुन्शी जी—अब न डरूँगा, जिसके जी में जो आए कहे।

निर्मला—पहले तो यह ऐसे न थे।

मुन्शी जी—अजी कहता है कि आपके लड़के मौजूद थे, आपने शादी क्यों की? यह कहते भी इसे सङ्कोच नहीं होता कि आप लोगों ने मन्साराम को विष दे दिया। लड़का नहीं है, शत्रु है।

जियाराम द्वार पर छिप कर खड़ा था। स्त्री-पुरुष में मिठाई के विषय में क्या बातें होती हैं, यही सुनने वह आया था। मुन्शी जी का अन्तिम वाक्य सुन कर उससे न रहा गया। बोल उठा—शत्रु न होता तो आप उसके पीछे क्यों पड़ते। आप जो इस वक़्त कह रहे हैं, वह मैं बहुत पहले से समझे बैठा हूँ। भैया न समझे थे, धोखा खा गए। हमारे साथ आप की दाल न गलेगी। सारा ज़माना कह रहा है कि भाई साहब को ज़हर दिया गया। मैं कहता हूँ तो क्यों आपको गुस्सा आता है?

निर्मला तो सन्नाटे में आ गई। मालूम हुआ किसी ने उसकी देह पर अङ्गारे डाल दिए। मुन्शी जी ने डाँट कर जियाराम को

चुप करना चाहा; पर जियाराम निःशङ्क खड़ा ईंटों का जवाब पत्थर से देता रहा। यहाँ तक कि निर्मला को भी उस पर क्रोध आ गया। यह कल का छोकरा न किसी काम का न काज का, यों खड़ा टर्रा रहा है; जैसे घर भर का पालन-पोषण यही करता हो। त्योरियाँ चढ़ा कर बोली—बस, अब बहुत हुआ जियाराम, मालूम हो गया कि तुम बड़े लायक़ हो, बाहर जाकर बैठो।

मुन्शी जी अब तक तो ज़रा दब-दब कर बोलते रहे, निर्मला की शह पाई तो दिल बढ़ गया। दाँत पीस कर लपके और इसके पहले कि निर्मला उनके हाथ पकड़ सके, एक थप्पड़ चला ही दिया। थप्पड़ निर्मला के मुँह पर पड़ा, वही सामने पड़ी। माथा चकरा गया। मुन्शी जी के सूखे हुए हाथों में भी इतनी शक्ति है, इसका वह अनुमान न कर सकती थी। सिर पकड़ कर बैठ गई। मुन्शी जी का क्रोध और भी भड़क उठा, फिर घूँसा चलाया; पर अब की जियाराम ने उनका हाथ पकड़ लिया; और पीछे ढकेल कर बोला—दूर से बातें कीजिए; क्यों नाहक़ अपनी बेइज़्ज़ती करवाते हैं। अम्माँ जी का लिहाज़ कर रहा हूँ, नहीं तो दिखा देता।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। मुन्शी जी संज्ञा-शून्य से खड़े रहे। इस वक्त अगर जियाराम पर दैवी वज्र गिर पड़ता, तो शायद उन्हें हार्दिक आनन्द होता। जिस पुत्र को कभी गोद में लेकर निहाल हो जाते थे, उसी के प्रति आज भाँति-भाँति की दुष्कल्पनाएँ मन में आ रही थीं।

रुक्मिणी अब तक तो अपनी कोठरी में थी। अब आकर

बोली—बेटा अपने बराबर का हो गया, तो उस पर हाथ न छोड़ना चाहिए।

मुन्शी जी ने ओंठ चबा कर कहा—मैं इसे घर से निकाल कर छोड़ूँगा। भीख माँगे या चोरी करे, मुझसे कोई मतलब नहीं।

रुक्मिणी—नाक किसकी कटेगी?

मुन्शी—इसकी चिन्ता नहीं।

निर्मला—मैं जानती कि मेरे आने से यह तूफ़ान खड़ा हो जायगा, तो भूल कर भी न आती। अब भी भला है, मुझे भेज दीजिए। इस घर में मुझसे रहा न जायगा।

रुक्मिणी—तुम्हारा बहुत लिहाज़ करता है बहू! नहीं, तो आज अनर्थ ही हो जाता।

निर्मला—अब और क्या अनर्थ होगा दीदी जी? मैं तो फूँक-फूँक कर पाँव रखती हूँ; फिर भी अपयश लग ही जाता है। अभी घर में पाँव रखते देर नहीं हुई; और यह हाल हो गया। ईश्वर ही कुशल करें।

रात को भोजन करने कोई न उठा। अकेले मुन्शी जी ने खाया। निर्मला को आज एक नई चिन्ता हो गई थी—जीवन कैसे पार लगेगा? अपना ही पेट होता, तो विशेष चिन्ता न थी। अब तो एक नई विपत्ति गले पड़ गई थी। वह सोच रही थी—मेरी बच्ची के भाग्य में क्या लिखा है राम?

बीसवाँ परिच्छेद

चिन्ता में नींद कब आती है ! निर्मला चारपाई पर पड़ी करवटें बदल रही थी । कितना चाहती थी कि नींद आ जाय; पर नींद ने आने की क़सम सी खाली थी । चिराग़ बुझा दिया था, खिड़की के दरवाज़े खोल दिये थे, टिक-टिक करने वाली घड़ी भी दूसरे कमरे में रख आई थी; पर नींद का नाम न था । जितनी बातें सोचनी थीं, सब सोच चुकी—चिन्ताओं का भी अन्त हो गया; पर पलकें न झपकीं, तब उसने फिर लैम्प जलाया ; और एक पुस्तक पढ़ने लगी । दो ही चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि झपकी आ गई । किताब खुली रह गई ।

सहसा जियाराम ने कमरे में क़दम रक्खा । उसके पाँव थर-थर काँप रहे थे । उसने कमरे में ऊपर-नीचे देखा । निर्मला सोई हुई थी, उसके सिरहाने ताक पर एक छोटा-सा पीतल का सन्दूक़चा रक्खा हुआ था । जियाराम दबे पाँव गया, धीरे से सन्दूक़चा उतारा और बड़ी तेज़ी से कमरे के बाहर निकला ! उसी वक्त़ निर्मला की आँखें खुल

गई। चौंक कर उठ खड़ी हुई। द्वार पर आकर देखा। कलेजा धक से हो गया! क्या यह जियाराम है? मेरे कमरे में क्या करने आया था? कहीं मुझे धोखा तो नहीं हुआ? शायद दीदी जी के कमरे से आया हो। यहाँ उसका काम ही क्या था? शायद मुझसे कुछ कहने आया हो; और सोता देख कर चला गया हो; लेकिन इस वक्त क्या कहने आया होगा? इसकी नीयत क्या है? उसका दिल काँप उठा!

मुन्शी जी ऊपर छत पर सो रहे थे। मुँडेर न होने के कारण निर्मला ऊपर न सो सकती थी। उसने सोचा, चल कर उन्हें जगाऊँ; पर जाने की हिम्मत न पड़ी। शक्की आदमी हैं, न जाने क्या समझ बैठें; और क्या करने पर तैयार हो जायँ! आकर फिर वही पुस्तक पढ़ने लगी। सवेरे पूछने पर आप ही मालूम हो जायगा। कौन जाने मुझे धोखा ही हुआ हो। नींद में कभी धोखा हो जाता है; लेकिन सवेरे पूछने का निश्चय करने पर भी उसे फिर नींद नहीं आई।

सवेरे वह जल-पान लेकर स्वयं जियाराम के पास गई, तो वह उसे देख कर चौंक पड़ा। रोज़ तो भुङ्गी आती थी, आज यह क्यों आ रही हैं? निर्मला की ओर ताकने की उसकी हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ने उसकी ओर विश्वासपूर्ण नेत्रों से देख कर पूछा—रात को तुम मेरे कमरे में गए थे?

जियाराम ने विस्मय दिखा कर कहा—मैं! भला मैं रात को क्या करने जाता? क्या कोई गया था?

निर्मला ने इस भाव से कहा, मानो उसे उसकी बात का पूरा विश्वास हो गया—हाँ, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई मेरे कमरे से निकला। मैं ने उसका मुँह तो न देखा ; पर उसकी पीठ देख कर अनुमान किया कि शायद तुम किसी काम से आए हो। इसका पता कैसे चले कौन था? कोई था जरूर, इसमें कोई सन्देह नहीं।

जियाराम अपने को निरपराध सिद्ध करने की चेष्टा कर कहने लगा—मैं तो रात को थियेटर देखने चला गया था। वहाँ से लौटा तो एक मित्र के घर लेट रहा। थोड़ी देर हुई लौटा हूँ। मेरे साथ और भी कई मित्र थे। जिससे जी चाहे पूछ लें। हाँ भाई, मै बहुत डरता हूँ। ऐसा न हो कोई चीज़ गायब हो गई हो, तो मेरा नाम लगे। चोर को तो कोई पकड़ नहीं सकता। मेरे मत्थे जायगी। बाबू जी को आप जानती हैं, मुझे मारने दौड़ेंगे।

निर्मला—तुम्हारा नाम क्यों लगेगा? अगर तुम्हीं होते तो भी तुम्हें कोई चोरी नहीं लगा सकता। चोरी दूसरे की चीज़ की की जाती है, अपनी चीज की चोरी कोई नहीं करता।

अभी तक निर्मला की निगाह अपने सन्दूक़चे पर न पड़ी थी। भोजन बनाने लगी। जब वकील साहब कचहरी चले गए, तो वह सुधा से मिलने चली। इधर कई दिनों से मुलाक़ात न हुई थी। फिर रात वाली घटना पर विचार-परिवर्त्तन भी करना था। भुङ्गी से कहा—कमरे में से गहनों का बक्स उठा ला।

भुङ्गी ने लौट कर कहा—वहाँ तो कहीं सन्दूक़ नहीं है। कहाँ रक्खा था?

निर्मला ने चिढ़ कर कहा—एक बार में तो तेरा काम ही कभी नहीं होता। वहाँ छोड़ कर और जायगा कहाँ? आलमारी में देखा था?

भुङ्गी—नहीं बहू जी, आलमारी में तो नहीं देखा, झूठ क्यों बोलूँ।

निर्मला मुस्करा पड़ी। बोली—जा देख, जल्दी आ। एक क्षण में भुङ्गी फिर खाली हाथ लौट आई—आलमारी में भी तो नहीं है। अब जहाँ बताओ, वहाँ देखूँ।

निर्मला झुँझला कर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—तुझे ईश्वर ने आँखें ही न जाने किसलिए दीं। देख उसी कमरे में से लाती हूँ कि नहीं।

भुङ्गी भी पीछे-पीछे कमरे में गई। निर्मला ने ताक़ पर निगाह डाली, आलमारी खोल कर देखी, चारपाई के नीचे झाँक कर देखा, फिर कपड़ों का बड़ा सन्दूक़ खोल कर देखा। बक्स का कहीं पता नहीं। आश्चर्य हुआ—आख़िर बक्स गया कहाँ?

सहसा रात वाली घटना बिजली की भाँति उसकी आँखों के सामने चमक गई। कलेजा उछल पड़ा। अब तक निश्चिंत होकर खोज रही थी। अब ताप सी चढ़ आई। बड़ी उतावली से चारों ओर खोजने लगी। कहीं पता नहीं। जहाँ खोजना चाहिए था, वहाँ भी खोजा; और जहाँ नहीं खोजना चाहिए था, वहाँ भी खोजा। इतना बड़ा सन्दूक़चा बिछावन के नीचे कैसे छिप जाता; पर बिछावन भी झाड़ कर देखा। क्षण-क्षण मुख की कान्ति मलिन

होती जाती थी। प्राण नहों में समाते जाते थे। अन्त को निराश होकर उसने छाती पर एक घूँसा मारा; और रोने लगी।

गहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता। इन्हीं का उसे बल और गर्व होता है। निर्मला के पास पाँच-छः हजार के गहने थे। जब उन्हें पहन कर वह निकलती थी, तो उतनी देर के लिए उल्लास से उसका हृदय खिला रहता था। एक-एक गहना मानो विपत्ति और बाधा से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र था। अभी रात ही उसने सोचा था। जियाराम की लौंडी बन कर वह न रहेगी। ईश्वर न करें—वह किसी के सामने हाथ फैलाए। इस खेवे से वह अपनी नाव को भी पार लगा देगी; और अपनी बच्ची को भी किसी न किसी घाट पहुँचा देगी। उसे किस बात की चिन्ता है। इन्हें तो कोई उससे न छीन लेगा। आज ये मेरे सिङ्गार हैं, कल को मेरे आधार हो जायँगे। इस विचार से उसके हृदय को कितनी सान्त्वना मिली थी? वही सम्पत्ति आज उसके हाथ से निकल गई! अब वह निराधार थी। संसार में उसे कोई अवलम्ब, कोई सहारा न था। उसकी आशाओं का आधार जड़ से कट गया, वह फूट-फूट कर रोने लगी। ईश्वर! तुमसे इतना भी न देखा गया! मुझ दुखिया को तुमने यों ही अपङ्ग बना दिया था, अब आँखें भी फोड़ दीं! अब वह किसके सामने हाथ फैलाएगी, किसके द्वार पर भीख माँगेगी। पसीने से उसकी देह भीग गई, रोते-रोते आँखें सूज गईं। निर्मला सिर नीचा किए रो

रही थी, रुक्मिणी उसे धीरज दिला रही थी; लेकिन उसके आँसू न थमते थे ! शोक की ज्वाला कम न होती थी।

तीन बजे जियाराम स्कूल से लौटा। निर्मला उसके आने की ख़बर पाकर विक्षिप्त की भाँति उठी; और उसके कमरे के द्वार पर बोली—भैया, दिल्लगी की हो तो दे दो। दुखिया को सता कर क्या पाओगे ?

जियाराम एक क्षण के लिए कातर हो उठा। चौर-कला में उसका यह पहला ही प्रयास था। वह कठोरता जिसे हिंसा में मनोरञ्जन होता है, अभी तक उसे प्राप्त न हुई थी। यदि उसके पास सन्दूक़चा होता; और उसे फिर इतना मौक़ा मिलता कि उसे उसी ताक पर रख आवे, तो कदाचित् वह उस मौक़े को न छोड़ता; लेकिन सन्दूक़चा उसके हाथ से निकल चुका था। यारों ने उसे सराफ़े में पहुँचा दिया था; और औने-पौने बेच भी डाला था। चोरी की झूठ के सिवा और कौन रक्षा कर सकता है। बोला—भला, अम्माँ जी, मैं आपसे ऐसी दिल्लगी करूँगा। आप अभी तक मुझ पर शक करती जा रही हैं। मैं कह चुका कि मैं रात को घर पर न था; लेकिन आपको यक़ीन ही नहीं आता ! बड़े दुख की बात है कि आप मुझे इतना नीच समझती हैं।

निर्मला ने आँसू पोंछते हुए कहा—मैं तुम्हारे ऊपर शक नहीं करती; भैया ! तुम्हें चोरी नहीं लगाती। मैंने समझा शायद दिल्लगी की हो !

जियाराम पर वह चोरी का सन्देह कैसे कर सकती थी ? दुनिया यही तो कहेगी कि लड़के की माँ मर गई है, तो उस पर

चोरी का इल्जाम लगाया जा रहा है। मेरे मुँह में तो कालिख लगेगी।

जियाराम ने आश्वासन देते हुए कहा—चलिए मैं तो देखूँ, आखिर ले कौन गया? चोर आया किस रास्ते से?

भुङ्गी—भैया, तुम भी चोरों के आने को कहते हो। चूहे के बिल से तो निकल ही आते हैं, यहाँ तो चारों ओर खिड़कियाँ ही हैं।

जियाराम—ख़ूब अच्छी तरह तलाश कर लिया है?

निर्मला—सारा घर तो छान मारा; अब कहाँ खोजने कहते हो।

जियाराम—आप लोग सो भी तो जाती हैं मुर्दों से बाज़ी लगा कर।

चार बजे मुन्शी जी घर में आए तो निर्मला की दशा देख कर पूछा—कैसी तबीयत है? कहीं दर्द तो नहीं है? यह कह कर उन्होंने आशा को गोद में उठा लिया।

निर्मला कोई जवाब तो न दे सकी, फिर रोने लगी!

भुङ्गी ने कहा—ऐसा कभी नहीं हुआ था। मेरी सारी उमर इसी घर में कट गई। आज तक एक पैसे की चोरी नहीं हुई। दुनिया यही कहेगी कि भुङ्गी का काम है, अब तो भगवान् ही पत-पानी रक्खें।

मुन्शी जी अचकन के बटन खोल रहे थे। फिर बटन बन्द करते हुए बोले—क्या हुआ? क्या कोई चीज चोरी हो गई?

भुङ्गी—बहू जी के सारे गहने उठ गए।

मुन्शी जी—रक्खे कहाँ थे ?

निर्मला ने सिसकियाँ लेते हुए रात की सारी घटना बयान कर दी; पर जियाराम की सूरत के आदमी को अपने कमरे सें निकलने की बात न कही। मुन्शी जी ने ठण्ढी साँस भर कर कहा—ईश्वर भी बड़ा अन्यायी है; जो मरे हैं, उन्हीं को मारता है। मालूम होता है, अदिन आ गए हैं। मगर चोर आया तो आया किधर से ? कहीं सेंध नहीं पड़ी, और किसी तरफ़ से आने का रास्ता नहीं। मैंने तो कोई ऐसा पाप भी न किया था, जिसकी मुझे यह सज़ा मिल रही हो। बार-बार कहता रहा—गहने का सन्दूक़चा ताक़ पर मत रक्खो; लेकिन कौन सुनता है।

निर्मला—मैं क्या जानती थी कि यह ग़ज़ब टूट पड़ेगा।

मुन्शीजी—इतना तो जानती थीं कि सब दिन बराबर नहीं जाते। आज बनवाने जाऊँ, तो दस हज़ार से कम न लगेंगे; और आजकल अपनी जो दशा है, वह तुमसे छिपी नहीं, ख़र्च भर को मुश्किल से मिलता है, गहने कहाँ से बनेंगे। जाता हूँ पुलिस में इत्तिला कर आता हूँ; पर मिलने की कोई उम्मीद न समझो।

निर्मला ने आपत्ति के भाव से कहा—जब जानते हैं कि पुलिस में इत्तिला करने से कुछ न होगा, तो क्यों जा रहे हैं ?

मुन्शी जी—दिल नहीं मानता; और क्या ? इतना बड़ा नुक़सान उठा कर चुपचाप तो नहीं बैठा जाता।

निर्मला—मिलने वाले होते तो जाते ही क्यों ? तक़दीर में न थे, तो कैसे रहते ?

मुन्शी जी—तक़दीर में होंगे, तो मिल जाँयगे; नहीं तो गए तो हैं ही।

मुन्शी जी कमरे से निकले। निर्मला ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—मैं कहती हूँ मत जाओ; कहीं ऐसा न हो लेने के देने पड़ जाँय।

मुन्शी जी ने हाथ छुड़ा कर कहा—तुम भी कैसी बच्चों की सी ज़िद कर रही हो। दस हज़ार का नुक़सान ऐसा नहीं है, जिसे मैं यों ही उठा लूँ। मैं रो नहीं रहा हूँ; पर मेरे हृदय पर जो कुछ बीत रही है, वह मैं ही जानता हूँ। यह चोट मेरे कलेजे पर लगी है! मुन्शी जी और कुछ न कह सके। गला फँस गया। वह तेज़ी से कमरे से निकल आए; और थाने पर जा पहुँचे। थानेदार उनका बहुत लिहाज़ करता था। उसे एक बार रिशवत के मुक़दमे से बरी करा चुके थे। उनके साथ ही तफ़तीश करने आ पहुँचा। नाम था अलायार ख़ाँ।

शाम हो गई थी। थानेदार ने मकान के अगवाड़े-पिछवाड़े घूम-घूम कर देखा। अन्दर जाकर निर्मला के कमरे को ग़ौर से देखा। ऊपर की मुंडेर की जाँच की। मुहल्ले के दो-चार आदमियों से चुपके-चुपके कुछ बातें कीं; और तब मुन्शी जी से बोला—जनाब, ख़ुदा की क़सम यह किसी बाहर के आदमी का काम नहीं। ख़ुदा की क़सम अगर कोई बाहर का आदमी निकले, तो

आज से थानेदारी करना छोड़ दूँ। आप के घर में कोई मुलाज़िम तो ऐसा नहीं है, जिस पर आप को शुबहा हो ?

मुन्शी जी—घर में तो आजकल सिर्फ़ एक महरी है।

थानेदार—अजी वह पगली है। यह किसी बड़े शातिर का काम है, ख़ुदा की क़सम।

मुन्शी जी—तो घर में और कौन है ? मेरे दोनों लड़के हैं, स्त्री है; और बहन है। इनमें से किस पर शक करूँ।

थानेदार—ख़ुदा की क़सम घर ही के किसी आदमी का काम है, चाहे वह कोई हो। इन्शाअल्लाह दो-चार दिन में मैं आप को इसकी ख़बर दूँगा। यह तो नहीं कह सकता कि माल भी सब मिल जायगा; पर ख़ुदा की क़सम चोर को ज़रूर पकड़ दिखाऊँगा।

थानेदार चला गया, तो मुन्शी जी ने आकर निर्मला से उसकी बातें कहीं। निर्मला सहम उठी। बोली—आप थानेदार से कह दीजिए तफ़तीश न करे, आपके पैरों पड़ती हूँ।

मुन्शी जी—आख़िर क्यों ?

निर्मला—अब क्यों बताऊँ ? वह कह रहा है कि घर ही के किसी आदमी का काम है।

मुन्शी जी—उसे बकने दो।

जियाराम अपने कमरे में बैठा हुआ भगवान् को याद कर रहा था। उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सुन चुका था कि पुलिस वाले चेहरे से भाँप जाते हैं। बाहर निकलने की हिम्मत

न पड़ती थी। दोनों आदमियों में क्या बातें हो रही हैं, यह जानने के लिए वह छटपटा रहा था। ज्योंही थानेदार चला गया; और भुङ्गी किसी काम से बाहर निकली, जियाराम ने पूछा—थानेदार क्या कह रहा था; भुङ्गी ?

भुङ्गी ने पास आकर कहा—डाढ़ीजार कहता था, घर ही के किसी आदमी का काम है ; बाहर का कोई नहीं है।

जियाराम—दादा जी ने कुछ नहीं कहा ?

भुङ्गी—कुछ तो नहीं कहा, खड़े 'हूँ-हूँ' करते रहे। घर में एक भुङ्गी ही ग़ैर है न; और तो सब अपने ही हैं।

जियाराम—मैं भी तो ग़ैर हूँ, तू ही क्यों !

भुङ्गी—तुम ग़ैर काहे को हो भैया ?

जियाराम—बाबू जी ने थानेदार से कहा नहीं, घर में किसी पर उनका शुबहा नहीं है ?

भुङ्गी—कुछ तो कहते नहीं सुना। बेचारे थानेदार ने भले ही कहा—भुङ्गी तो पागल है, वह क्या चोरी करेगी। बाबू जी तो मुझे फँसाए ही देते थे।

जियाराम—तब तो तू भी निकल गई। अकेला मैं ही रह गया। तू ही बता, तूने मुझे उस दिन घर में देखा था ?

भुङ्गी—नहीं भैया, तुम तो ठेठर देखने गए थे।

जिया०—गवाही देगी न ?

भुङ्गी—यह क्या कहते हो भैया। बहू जी तपतीस बन्द करा देंगी।

जिया०—सच ?

भुङ्गी—हाँ भैया, बार-बार कहती हैं कि तपतीस न कराओ। गहने गए जाने दो; पर बाबू जी मानते ही नहीं।

पाँच-छः दिन तक जियाराम ने पेट भर भोजन नहीं किया। कभी दो-चार कौर खा लेता, कभी कह देता भूख नहीं है। उसके चेहरे का रङ्ग उड़ा रहता था। रातें जागते कटतीं। प्रति क्षण थानेदार की शङ्का बनी रहती थी। यदि वह जानता कि मामला इतना तूल खींचेगा, तो कभी ऐसा काम न करता। उसने तो समझा था—किसी चोर पर शुबहा होगा। मेरी तरफ़ किसी का ध्यान भी न जायगा; पर अब भण्डा फूटता हुआ मालूम होता था। अभागा थानेदार जिस ढङ्ग से छान-बीन कर रहा था, उससे जियाराम को बड़ी शङ्का हो रही थी।

सातवें दिन सन्ध्या समय जियाराम घर लौटा, तो बहुत चिन्तित था। आज तक उसे बचने की कुछ न कुछ आशा थी। माल अभी तक कहीं बरामद न हुआ था; पर आज उसे माल के बरामद होने की ख़बर मिल गई थी। इसी दम थानेदार कॉन्सटेबिलों को लिए हुए आता होगा। बचने का कोई उपाय नहीं। थानेदार रिशवत देने से सम्भव है, मुक़दमे को दबा दे। रुपए हाथ में थे; पर क्या बात छिपी रहेगी। अभी माल बरामद नहीं हुआ, फिर भी सारे शहर में अफ़वाह थी कि बेटे ने ही माल उड़ाया है। माल मिल जाने पर तो गली-गली बात फैल जायगी। फिर वह किसी को मुँह न दिखा सकेगा!

मुन्शी जी कचहरी से लौटे, तो बहुत घबराए हुए थे। सिर थाम कर चारपाई पर बैठ गए।

निर्मला ने कहा—कपड़े क्यों नहीं उतारते? आज तो और दिनों से देर हो गई है।

मुन्शी जी—क्या कपड़े उतारूँ? तुमने कुछ सुना?

निर्मला—क्या बात है? मैं ने तो कुछ नहीं सुनी।

मुन्शी जी—माल बरामद हो गया। अब जिया का बचना मुश्किल है।

निर्मला को आश्चर्य नहीं हुआ। उसके चेहरे से ऐसा जान पड़ा मानो उसे यह बात मालूम थी। बोली—मैं तो पहले ही कह रही थी कि थाने में इत्तला मत कीजिए।

मुन्शी जी—तुम्हें जिया पर शक था?

निर्मला—शक क्यों नहीं था; मैंने उन्हें अपने कमरे से निकलते देखा था।

मुन्शी जी—फिर तुमने मुझसे क्यों न कह दिया?

निर्मला—यह बात मेरे कहने की न थी। आपके दिल में जरूर ख्याल आता कि यह ईर्ष्या वश आक्षेप लगा रही है। कहिए, यह ख्याल होता या नहीं। झूठ न बोलिएगा।

मुन्शी जी—सम्भव है, मैं इन्कार नहीं कर सकता। उस दशा में भी तुम्हें मुझसे कह देना चाहिए था। रिपोर्ट की नौबत न आती। तुमने अपनी नेकनामी की तो फ़िक्र की, यह न सोचा कि परिणाम

क्या होगा। मैं अभी थाने से चला आता हूँ। अलायार खाँ आता ही होगा।

निर्मला ने हताश होकर पूछा—फिर अब ?

मुन्शी जी ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—फिर जैसी भगवान् की इच्छा। हज़ार-दो हज़ार रुपए रिशवत देने के लिए होते, तो शायद मामला दब जाता; पर मेरी हालत तो तुम जानती हो। तक़दीर खोटी है; और कुछ नहीं ! पाप तो मैंने किए हैं, दण्ड कौन भोगेगा ? एक लड़का था उसकी वह दशा हुई, दूसरे की यह दशा हो रही है। नालायक़ था, गुस्ताख़ था, कामचोर था; पर था तो अपना ही लड़का, कभी न कभी चेत ही जाता। यह चोट अब न सही जायगी।

निर्मला—अगर कुछ दे-दिला कर जान बच सके, तो मैं रुपए का प्रबन्ध कर दूँ ?

मुन्शी जी—कर सकती हो ? कितने रुपये दे सकती हो ?

निर्मला—कितना दरकार होगा ?

मुन्शी जी—एक हज़ार से कम में तो शायद बातचीत न हो सके। मैंने एक मुक़दमे में उससे १०००) लिए थे। वह कसर आज निकालेगा।

निर्मला—हो जायगा। आप अभी थाने जाइए।

मुन्शी जी को थाने में बड़ी देर लगी। एकान्त में बातचीत करने का बहुत देर में मौक़ा मिला। अलायार खाँ पुराना घाघ था, बड़ी मुश्किल से अण्टी पर चढ़ा। पाँच सौ रुपए लेकर भी एहसान

का बोझ सिर पर लाद ही दिया। काम हो गया। लौट कर निर्मला से बोले—लो भई, बाज़ी मार ली। रुपए तुमने दिए; पर काम मेरी ज़बान ही ने किया। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से राज़ी हो गया। यह भी याद रहेगी। जियाराम भोजन कर चुका है?

निर्मला—कहाँ, वह तो अभी घूम कर लौटे ही नहीं।

मुन्शी जी—बारह तो बज रहे होंगे।

निर्मला—कई दफ़े जा-जाकर देख आई। कमरे में अँधेरा पड़ा हुआ है।

मुन्शी जी—और सियाराम?

निर्मला—वह तो खा-पीकर सोए हैं।

मुन्शी जी—उससे पूछा नहीं जिया कहाँ गया है।

निर्मला—वह तो कहते हैं, मुझसे कुछ कह कर नहीं गए।

मुन्शी जी को कुछ शङ्का हुई। सियाराम को जगा कर पूछा—तुमसे जियाराम ने कुछ कहा नहीं, कब तक लौटेगा! गया कहाँ है?

सियाराम ने सिर खुजलाते और आँखें मलते हुए कहा—मुझसे कुछ नहीं कहा।

मुन्शी जी—कपड़े सब पहन कर गया है?

सिया०—जी नहीं, कुर्ता और धोती।

मुन्शी जी—जाते वक़्त ख़ुश था?

सिया०—ख़ुश तो नहीं मालूम होते थे। कई बार अन्दर आने का इरादा किया; पर देहरी ही से लौट गए। कई मिनिट तक

सायबान में खड़े रहे। चलने लगे तो आँखें पोंछ रहे थे। इधर कई दिन से अक्सर रोया करते थे।

मुन्शी जी ने ऐसी ठण्ढी साँस ली, मानो जीवन में अब कुछ नहीं रहा; और निर्मला से बोले—तुमने किया तो अपने समझ में भले ही के लिए; पर कोई शत्रु भी मुझ पर इससे कठोर आघात न कर सकता था। जियाराम सच कहता था कि विवाह करना ही मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल थी!

और किसी समय ऐसे कठोर शब्द सुन कर निर्मला तिलमिला जाती; पर इस समय वह स्वयं अपनी भूल पर पछता रही थी। अगर जियाराम की माता होती, तो क्या वह यह सङ्कोच करती? कदापि नहीं; बोली—ज़रा डॉक्टर साहब के यहाँ क्यों नहीं चले जाते? शायद वहाँ बैठे हों। कई लड़के रोज़ आते हैं, उनसे पूछिए, शायद कुछ पता लग जाय। फूँक-फूँक कर चलने पर भी अपयश लग ही गया?

मुन्शी जी ने मानो खुली हुई खिड़की से कहा—हाँ, जाता हूँ; और क्या करूँगा?

मुन्शी जी बाहर आए तो देखा डॉक्टर सिन्हा खड़े हैं। चौंक कर पूछा—क्या आप देर से खड़े हैं?

डॉक्टर—जी नहीं, अभी आया हूँ। आप इस वक़्त कहाँ जा रहे हैं? साढ़े बारह हो गए हैं।

मुन्शी जी—आप ही की तरफ़ आ रहा था। जियाराम अभी तक घूम कर नहीं आया। आपकी तरफ़ तो नहीं गया था?

डॉक्टर सिन्हा ने मुन्शी जी के दोनों हाथ पकड़ लिए; और इतना कह पाए थे "भाई साहब, अब धैर्य से काम......" कि मुन्शी जी गोली खाए हुए मनुष्य की भाँति ज़मीन पर गिर पड़े !!

इक्कीसवाँ परिच्छेद

रुक्मिणी ने निर्मला से त्योरियाँ बदल कर कहा—क्या नङ्गे पाँव ही मदरसे जायगा?

निर्मला ने बच्ची के बाल गूँथते हुए कहा—मैं क्या करूँ, मेरे पास रुपए नहीं हैं।

रुक्मिणी—गहने बनवाने को रुपए जुड़ते हैं, लड़के के जूतों के लिए रुपयों में आग लग जाती है। दो तो चले ही गए, क्या तीसरे को भी रुला-रुला कर मार डालने का इरादा है?

निर्मला ने एक साँस खींच कर कहा—जिसको जीना है जिएगा, जिसको मरना है मरेगा; मैं किसी को मारने-जिलाने नहीं जाती?

आजकल एक न एक बात पर निर्मला और रुक्मिणी में रोज़ ही एक झपट हो जाती थी। जब से गहने चोरी गए हैं, निर्मला का स्वभाव बिलकुल बदल गया है! वह एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ने लगी है। सियाराम रोते-रोते चाहे जान दे दे,

मगर उसे मिठाई के लिए पैसे नहीं मिलते ; और वह बर्ताव कुछ सियाराम ही के साथ नहीं है, निर्मला स्वयं अपनी जरूरतों को टालती रहती है। धोती जब तक फट कर तार-तार न हो जाय, नई धोती नहीं आती, महीनों सिर का तेल नहीं मँगाया जाता, पान खाने का उसे शौक था, अब कई-कई दिन तक पानदान ख़ाली पड़ा रहता है, यहाँ तक कि बच्ची के लिए दूध भी नहीं आता। नन्हें से शिशु का भविष्य विराट् रूप धारण करके उसके विचार-क्षेत्र पर मँडराता रहता है।

मुन्शी जी ने अपने को सम्पूर्णतः निर्मला के हाथों में सौंप दिया है। उसके किसी काम में दख़ल नहीं देते। न जाने क्यों उससे कुछ दबे रहते हैं। वह अब बिला नाग़ा कचहरी जाते हैं। इतनी मेहनत उन्होंने जवानी में भी न की थी। आँखें ख़राब हो गई हैं, डॉक्टर सिन्हा ने रात को लिखने-पढ़ने की मुमानियत कर दी है, पाचन-शक्ति पहले ही दुर्बल थी, अब और भी ख़राब हो गई है, दम की शिकायत भी पैदा हो चली है; पर बेचारे सवेरे से आधी रात तक काम करते रहते हैं। काम करने को जी चाहे या न चाहे, तबीयत अच्छी हो या न हो, काम करना ही पड़ता है। निर्मला को उन पर ज़रा भी दया नहीं आती। वही भविष्य की भीषण चिन्ता उसके आन्तरिक सद्भावों का सर्वनाश कर रही है। किसी भिक्षुक की आवाज़ सुन कर वह झल्ला पड़ती है। वह एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं करना चाहती।

एक दिन निर्मला ने सियाराम को घी लाने के लिए बाज़ार

भेजा। भुङ्गी पर उसका विश्वास न था, उससे अब कोई सौदा न मँगाती थी। सियाराम में काट-कपट की आदत न थी। आने के पौने करना न जानता था। प्राय: बाज़ार का सारा काम उसी को करना पड़ता। निर्मला एक-एक चीज़ को तोलती, ज़रा भी कोई चीज़ तोल में कम पड़ती, तो उसे लौटा देती। सियाराम का बहुत सा समय इसी लौटा-फेरी में बीत जाता था। बाज़ार वाले उसे जल्दी कोई सौदा न देते। आज भी वही नौबत आई। सियाराम अपने विचार से तो बहुत अच्छा घी, कई दूकान देख कर लाया; लेकिन निर्मला ने उसे सूँघते ही कहा—घी खराब है; लौटा आओ।

सियाराम ने झुँझला कर कहा—इससे अच्छा घी बाज़ार में नहीं है, मैं सारी दूकानें देख कर लाया हूँ?

निर्मला—तो मैं झूठ कहती हूँ।

सिया—यह मैं नहीं कहता, लेकिन बनिया अब घी वापिस न लेगा। उसने मुझसे कहा था, जिस तरह देखना चाहो, यहीं देखो; माल तुम्हारे सामने है। बोहनी-बट्टे के वक्त मैं सौदा वापिस न लूँगा। मैं ने सूँघ कर, चख कर देख लिया। अब किस मुँह से लौटाने जाऊँ?

निर्मला ने दाँत पीस कर कहा—घी में साफ़ चरबी मिली हुई है; और तुम कहते हो घी अच्छा है। मैं इसे रसोई में न ले जाऊँगी, तुम्हारा जी चाहे लौटा दो चाहे खा जाओ।

घी की हाँडी वहीं छोड़ कर निर्मला घर में चली गई। सियाराम

क्रोध और क्षोभ से कातर हो उठा। वह कौन मुँह लेकर लौटाने जाय। बनिया साफ़ कह देगा—मैं नहीं लौटाता। तब वह क्या करेगा? आसपास के दस-पाँच बनिये और सड़क पर चलने वाले आदमी खड़े हो जायँगे। उन सभों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। बाज़ार में यों ही कोई बनिया उसे जल्द सौदा नहीं देता, वह किसी दूकान पर खड़ा नहीं होने पाता। चारों ओर से उसी पर लताड़ पड़ेगी। उसने मन ही मन झुँझला कर कहा—पड़ा रहे घी, मैं लौटाने न जाऊँगा।

मातृ-विहीन बालक के समान दुखी, दीन प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता। और सारे दुख भूल जाते हैं, बालक को माता की याद कभी नहीं भूलती। सियाराम को इस समय माता की याद आई। अम्माँ होती तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता। भैया भी चले गए, जियाराम भी चले गए, मैं ही अकेला यह विपत्ति सहने के लिए क्यों बच रहा? सियाराम की आँखों से आँसू की झड़ी लग गई। उसके शोक-कातर कण्ठ से एक गहरे निश्वास के साथ मिले हुए ये शब्द निकल आए—अम्माँ! तुम मुझे क्यों भूल गईं, क्यों मुझे नहीं बुला लेतीं।

सहसा निर्मला फिर कमरे की तरफ़ आई। उसने समझा था सियाराम चला गया होगा। उसे बैठे देखा तो गुस्से से बोली—तुम अभी तक बैठे ही हो? आखिर खाना कब बनेगा?

सियाराम ने आँखें पोंछ डालीं। बोला—मुझे स्कूल जाने को देर हो जायगी।

निर्मला—एक दिन देर ही हो जायगी, तो कौन हरज है? यह भी तो घर ही का काम है।

सिया—रोज़ तो यही धन्धा लगा रहता है। कभी वक्त पर नहीं पहुँचता। घर पर भी पढ़ने का वक्त नहीं मिलता। कोई सौदा वे दो-चार बार लौटाए नहीं लिया जाता। डाँट तो मुझ पर पड़ती है; शर्मिन्दा तो मुझे होना पड़ता है, आपको क्या?

निर्मला—हाँ, मुझे क्या? मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी; अपना होता तब तो उसे दुख होता। मैं तो ईश्वर से मनाया करती हूँ कि तुम पढ़-लिख न सको। मुझमें तो सारी बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं तुम्हारा कोई क़ुसूर नहीं। विमाता का नाम ही बुरा होता है। अपनी माँ विष भी खिलाए तो अमृत है। मैं अमृत भी पिलाऊँ तो विष हो जाय। तुम लोगों के कारण मिट्टी में मिल गई, रोते-रोते उम्र कटी जाती है; मालूम ही न हुआ कि भगवान् ने किस लिए जन्म दिया था; और तुम्हारी समझ में मैं विहार कर रही हूँ। तुम्हें सताने से मुझे मज़ा आता है। भगवान् भी नहीं पूछते कि सारी विपत्ति का अन्त हो जाता।

यह कहते-कहते निर्मला की आँखें भर आईं। अन्दर चली गई। सियाराम उसको रोते देख कर सहम उठा। उसे ग्लानि तो नहीं आई; हाँ, यह शङ्का हुई कि न जाने कौनसा दण्ड मिले। चुपके से हाँडी उठा ली; और घी लौटाने चला, इस तरह जैसे कोई कुत्ता किसी नए गाँव में जाता है। उसी कुत्ते की भाँति उसकी मनोगत वेदना उसके एक-एक भाग से प्रकट हो रही

थी। उसे देख कर साधारण बुद्धि का मनुष्य भी अनुमान कर सकता था कि यह अनाथ है।

सियाराम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, आने वाले संग्राम के भय से उसकी हृदय-गति बढ़ती जाती थी। उसने निश्चय किया—बनिये ने घी न लौटाया, तो वह घी वहीं छोड़ कर चला आएगा। झखमार कर बनिया आप ही बुलावेगा। बनिये को डाटने के लिए भी उसने शब्द सोच लिए। वह कहेगा—क्यों साह जी, आँखों में धूल झोंकते हो? दिखाते हो चोखा माल और देते हो रद्दी माल? पर यह निश्चय करने पर भी उसके पैर आगे बहुत धीरे-धीरे उठते थे। वह यह न चाहता था कि बनिया उसे आता हुआ देखे, वह अकस्मात् ही उसके सामने पहुँच जाना चाहता था। इसलिए वह चक्कर काट कर दूसरी गली से बनिये की दूकान पर गया।

बनिये ने उसे देखते ही कहा—हमने कह दिया था, हम सौदा वापिस न लेंगे। बोलो कहा था कि नहीं?

सियाराम ने बिगड़ कर कहा—तुमने वह घी कहाँ दिया, जो दिखाया था? दिखाया एक माल, दिया दूसरा माल; लौटाओगे कैसे नहीं? क्या कुछ राहजनी है?

साह—इससे चोखा घी बाज़ार में निकल आवे, तो जरीबाना दूँ। उठा लो हाँडी और दो-चार दूकान देख आओ।

सिया—हमें इतनी फ़ुर्सत नहीं है। अपना घी लौटा लो।

साह—घी न लौटेगा।

बनिये की दूकान पर एक जटाधारी साधु बैठा हुआ यह तमाशा

देख रहा था। उठ कर सियाराम के पास आया; और हाँडी का घी सूँघ कर बोला—बच्चा, घी तो बहुत अच्छा मालूम होता है।

साह ने शह पाकर कहा—बाबा जी, हम लोग तो आपही इनको घटिया सौदा नहीं देते। ख़राब माल क्या जाने-सुने गाहकों को दिया जाता है?

साधु—घी ले जाव बच्चा, बहुत अच्छा है।

सियाराम रो पड़ा। घी को बुरा सिद्ध करने के लिए उसके पास अब क्या प्रमाण था? बोला—वही तो कहती हैं घी अच्छा नहीं है; लौटा आओ। मैं तो कहता था घी अच्छा है।

साधु—कौन कहता है?

साह—इनकी अम्माँ कहती होंगी। कोई सौदा उनके मन ही नहीं भाता। बेचारे लड़के को बार-बार दौड़ाया करती हैं! सौतेली माँ हैं न! अपनी माँ हो तो कुछ ख़्याल भी करे। साधु ने सियाराम को सदय नेत्रों से देखा; मानो उसे त्राण देने के लिए उसका हृदय विकल हो रहा है। तब करुण स्वर में बोला—तुम्हारी माता का स्वर्गवास हुए कितने दिन हुए बच्चा?

सियाराम—छठा साल है।

साधु—तब तो तुम उस वक़्त बहुत ही छोटे रहे होगे। भगवान् तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है। इस दुधमुँहे बालक को तुमने मातृ-प्रेम से वञ्चित कर दिया। बड़ा अनर्थ करते हो; भगवान्! हा, छः साल का बालक और राक्षसी विमाता के पाले पड़े! धन्य हो दयानिधि! साह जी, बालक पर दया करो—घी लौटा लो; नहीं तो

इसकी माता इसे घर में रहने न देगी। भगवान् की इच्छा से तुम्हारा घी जल्द बिक जायगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

साह जी ने रुपए न वापस किए। आखिर लड़के को फिर घी लेने आना ही पड़ेगा। न जाने दिन में कितनी बार चक्कर लगाना पड़े; और किस जालिए से पाला पड़े। उसकी दूकान में जो घी सबसे अच्छा था, वह उसने सियाराम को दिया। सियाराम दिल में सोच रहा था, बाबा जी कितने दयालु हैं। इन्होंने न सिफ़ारिश की होती, तो साह जी क्यों अच्छा घी देते।

सियाराम घी लेकर चला तो बाबा जी भी उसके साथ हो लिए। रास्ते में मीठी-मीठी बातें करने लगे :—

बच्चा, मेरी माता भी मुझे तीन साल का छोड़ कर परलोक सिधारी थी। तभी से मातृ-विहीन बालकों को देखता हूँ, तो मेरा हृदय फटने लगता है।

सियाराम ने पूछा—आपके पिता जी ने भी दूसरा विवाह कर लिया था?

साधु—हाँ बच्चा, नहीं तो आज साधु क्यों होता। पहले तो पिता जी विवाह न करते थे। मुझे बहुत प्यार करते थे। फिर न जाने क्यों मन बदल गया—विवाह कर लिया। साधु हूँ, कटु वचन मुँह से नहीं निकालना चाहिए; पर मेरी विमाता जितनी ही सुन्दरी थी, उतनी ही कठोर थी। मुझे दिन-दिन भर खाने को न देती, रोता तो मारती। पिता जी की आँखें भी फिर गईं। उन्हें मेरी सूरत से घृणा होने लगी। मेरा

रोना सुन कर मुझे पीटने लगते। अन्त को मैं एक दिन घर से निकल खड़ा हुआ।

सियाराम के मन में भी घर से निकल भागने का विचार कई बार हुआ था। इस समय भी उसके मन में यही विचार उठ रहा था। बड़ी उत्सुकता से बोला—घर से निकल कर आप कहाँ गए?

बाबा जी ने हँस कर कहा—उसी दिन मेरे सारे कष्टों का अन्त हो गया। जिस दिन घर के मोह-बन्धन से छूटा; और भय मन से निकला, उसी दिन मानो मेरा उद्धार हो गया। दिन भर तो मैं एक पुल के नीचे बैठा रहा। सन्ध्या समय मुझे एक महात्मा मिल गए। उनका नाम स्वामी परमानन्द जी था। वे बाल-ब्रह्मचारी थे। मुझ पर उन्होंने दया की, और अपने साथ रख लिया। उनके साथ मैं देश-देशान्तरों में घूमने लगा। वह बड़े अच्छे योगी थे। मुझे भी उन्होंने योग-विद्या सिखाई। अब तो मेरे को इतना अभ्यास हो गया है कि जब इच्छा होती है, माता जी के दर्शन कर लेता हूँ। उनसे बातें कर लेता हूँ।

सियाराम ने विस्फरित नेत्रों से देख कर पूछा—आपकी माता का तो देहान्त हो चुका था?

साधु—तो क्या हुआ बच्चा, योग-विद्या में यह शक्ति है कि जिस मृत-आत्मा को चाहे बुला ले।

सिया०—मैं योग-विद्या सीख लूँ, तो मुझे भी माता जी के दर्शन होंगे?

साधु—अवश्य ! अभ्यास से सब कुछ हो सकता है। हाँ, योग्य गुरु चाहिए। योग से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जितना धन चाहो, पलमात्र में मँगा सकते हो। कैसी ही बीमारी हो, उसकी औषधि बता सकते हो।

सिया०—आपका स्थान कहाँ है ?

साधु—बच्चा, मेरे को स्थान कहीं नहीं है। देश-देशान्तरों में रमता फिरता हूँ। अच्छा बच्चा, अब तुम जाव, मैं ज़रा स्नान-ध्यान करने जाऊँगा।

सिया०—चलिए मैं भी उसी तरफ़ चलता हूँ। आपके दर्शनों से जी नहीं भरा।

साधु—नहीं बच्चा, तुम्हें पाठशाले जाने को देर हो रही है।

सिया०—फिर आपके दर्शन कब होंगे ?

साधु—कभी आ जाऊँगा बच्चा, तुम्हारा घर कहाँ है ?

सियाराम प्रसन्न होकर बोला—चलिएगा मेरे घर; बहुत नज़दीक है। आपकी बड़ी कृपा होगी।

सियाराम क़दम बढ़ा कर आगे-आगे चलने लगा। इतना प्रसन्न था, मानो सोने की गठरी लिए जाता हो। घर के सामने पहुँच कर बोला—आइए, बैठिए कुछ देर।

साधु—नहीं बच्चा, बैठूँगा नहीं। फिर कल-परसों किसी समय आ जाऊँगा, यही तुम्हारा घर है ?

सिया०—कल किस वक्त, आइएगा।

साधु—निश्चय नहीं कह सकता। किसी समय आ जाऊँगा।

साधु आगे बढ़े तो थोड़ी ही दूर पर उन्हें एक दूसरा साधु मिला। इसका नाम था हरिहरानन्द।

परमानन्द ने पूछा—कहाँ-कहाँ की सैर की? कोई शिकार फँसा?

हरिहरानन्द—इधर तो चारों तरफ़ घूम आया, कोई शिकार न मिला। एकाध मिला भी तो मेरी हँसी उड़ाने लगा।

परमानन्द—मुझे तो एक मिलता हुआ जान पड़ता है। फँस जाय तो जानूँ।

हरिहरानन्द—तुम योंही कहा करते हो। जो आता है, दो-एक दिन के बाद निकल भागता है।

परमानन्द—अबकी न भागेगा, देख लेना। इसकी माँ मर गई है। बाप ने दूसरा विवाह कर लिया है। माँ भी सताया करती है। घर से ऊबा हुआ है।

हरिहरानन्द—हाँ, यह मामला है तो अवश्य फँसेगा। लासा लगा दिया है न?

परमानन्द—ख़ूब अच्छी तरह। यही तरकीब सबसे अच्छी है। पहले इसका पता लगा लेना चाहिए कि मुहल्ले में किन-किन घरों में विमाताएँ हैं। उन्हीं घरों में फन्दा डालना चाहिए।

बाईसवाँ परिच्छेद

निर्मला ने बिगड़ कर पूछा—इतनी देर कहाँ लगाई ?

सियाराम ने ढिठाई से कहा—रास्ते में एक जगह सो गया था।

निर्मला—यह तो मैं नहीं कहती; पर जानते हो कै बज गए हैं ? दस कभी के बज गए। बाजार कुछ दूर भी तो नहीं है।

सिया०—कुछ दूर नहीं। दरवाजे ही पर तो है।

निर्मला—सीधे से क्यों नहीं बोलते ? ऐसा बिगड़ रहे हो जैसे मेरा ही कोई काम करने गए हो।

सिया०—तो आप व्यर्थ की बकवाद क्यों करती हैं ? लिया हुआ सौदा लौटाना क्या आसान काम है। बनिये से घण्टों हुज्जत करनी पड़ी। वह तो कहो एक बाबा जी ने कह-सुन कर फेरवा दिया; नहीं तो किसी तरह न फेरता। रास्ते में एक मिनिट भी कहीं नहीं रुका, सीधा चला आता हूँ।

निर्मला—घी के लिए गए-गए तो तुम ग्यारह बजे लौटे हो, लकड़ी के लिए जाओगे तो साँझ ही कर दोगे! 'तुम्हारे बाबू जी, बिना खाए ही चले गए। तुम्हें इतनी देर लगाना था, तो पहले ही क्यों न कह दिया। जाते हो लकड़ी के लिए ?

सियाराम अब अपने को न सँभाल सका। झल्ला कर बोला—लकड़ी किसी और से मँगाइए। मुझे स्कूल जाने की देर हो रही है।

निर्मला—खाना न खाओगे ?

सिया०—न खाऊँगा।

निर्मला—मैं खाना बनाने को तैयार हूँ। हाँ, लकड़ी लाने नहीं जा सकती।

सिया०—भुङ्गी को क्यों नहीं भेजतीं ?

निर्मला—भुङ्गी का लाया सौदा क्या तुमने कभी देखा नहीं है ?

सिया०—तो मैं तो इस वक्त न जाऊँगा।

निर्मला—फिर मुझे दोष न देना।

सियाराम कई दिनों से स्कूल नहीं गया था। बाज़ार-हाट के मारे उसे किताबें देखने का समय ही न मिलता था। स्कूल जाकर झिड़कियाँ खाने, बेञ्च पर खड़े होने या ऊँची टोपी देने के सिवा और क्या मिलता। वह घर से किताबें लेकर चलता; पर शहर के बाहर जा कर किसी

वृक्ष की छाँह में बैठा रहता या पल्टनों की क़वायद देखता। तीन बजे घर लौट आता। आज भी वह घर से चला; लेकिन बैठने में उसका जी न लगा—उस पर आँतें अलग जल रही थीं। हा! अब उसे रोटियों के भी लाले पड़ गए। दस बजे क्या खाना न बन सकता था। माना कि बाबू जी चले गए थे। क्या मेरे लिए घर में दो-चार पैसे भी न थे? अम्माँ होतीं, तो इस तरह बिना कुछ खाए-पिए आने देतीं? मेरा अब कोई नहीं रहा!

सियाराम का मन बाबा जी के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठा। उसने सोचा—इस वक़्त वह कहाँ मिलेंगे? कहाँ चल कर देखूँ? उनकी मनोहर वाणी, उनकी उत्साह-प्रद सान्त्वना उसके मन को खींचने लगी। उसने आतुर होकर कहा—मैं उनके साथ ही क्यों न चला गया? घर पर मेरे लिए क्या रक्खा था?

वह आज यहाँ से चला, तो घर न जाकर सीधा घी वाले साह जी की दूकान पर गया। शायद बाबा जी से वहाँ मुलाक़ात हो जाय। पर वहाँ बाबा जी न थे। बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा लौट आया।

घर आकर बैठा ही था कि निर्मला ने आकर कहा—आज देर कहाँ लगाई। सवेरे खाना नहीं बना, क्या इस वक़्त भी उपवास होगा। जाकर बाज़ार से कोई तरकारी लाओ।

सियाराम ने झल्ला कर कहा—दिन भर का भूखा चला आता हूँ, कुछ पानी पीने तक को नहीं लाई। ऊपर से बाज़ार जाने का हुक्म दे दिया। मैं नहीं जाता बाज़ार! किसी का नौकर

नहीं हूँ। आखिर रोटियाँ ही तो खिलाती हो या और कुछ ? ऐसी रोटियाँ जहाँ मेहनत करूँगा, वहीं मिल जायँगी। जब मजूरी ही करनी है, तो आपकी न करूँगा। जाइए, मेरे लिए खाना न बनाइएगा।

निर्मला अवाक् रह गई। लड़के को आज यह क्या हो गया ? और दिन तो चुपके से जाकर काम कर लाता था, आज क्यों त्योरियाँ बदल रहा है ? अब भी उसको यह न सूझी कि सियाराम को दो-चार पैसे कुछ खाने को दे दे। उसका स्वभाव इतना कृपण हो गया था। बोली—घर का काम करना तो मजूरी नहीं कहलाती। इसी तरह मैं भी कह दूँ कि मैं खाना नहीं पकाती; तुम्हारे बाबू जी कह दें—मैं कचहरी नहीं जाता, तो क्या हो; बताओ ? नहीं जाना चाहते मत जाओ, भुङ्गी से मँगा लूँगी। मैं क्या जानती थी कि तुम्हें बाजार जाना बुरा लगता है, नहीं तो बला से पैसे की चीज धेले की आती, तुम्हें न भेजती। लो, आज से कान पकड़ती हूँ।

सियाराम दिल में कुछ लज्जित तो हुआ; पर बाजार न गया। उसका ध्यान बाबा जी की ओर लगा हुआ था। अपने सारे दुखों का अन्त और जीवन की सारी आशाएँ उसे अब बाबा जी के आशीर्वाद में मालूम होती थीं। उन्हीं की शरण जाकर उसका यह आधारित जीवन सार्थक होगा। सूर्यास्त के समय वह अधीर हो गया। सारा बाजार छान मारा; लेकिन बाबा जी का कहीं पता न मिला। दिन भर का भूखा-प्यासा, वह अबोध बालक दुखते हुए दिल को हाथों से दबाए, आशा और भय की मूर्ति बना हुआ

दूकानों, गलियों और मन्दिरों में उस आशय को खोजता फिरता था, जिसके बिना उसे अपना जीवन दुस्सह हो रहा था। एक बार एक मन्दिर के सामने उसे कोई साधु खड़ा दिखाई दिया। उसने समझा वही हैं। हर्षोल्लास से वह फूल उठा। दौड़ा और जाकर साधु के पास खड़ा हो गया; पर यह कोई और ही महात्मा थे। निराश होकर आगे बढ़ गया।

धीरे-धीरे सड़कों पर सन्नाटा छा गया, घरों के द्वार बन्द होने लगे। सड़क की पटरियों पर और गलियों में खॅसखटे या बोरे बिछा-बिछा कर भारत की प्रजा सुख-निद्रा में मग्न होने लगी; लेकिन सियाराम घर न लौटा। उस घर से उसका दिल फट गया था, जहाँ किसी को उससे प्रेम न था, जहाँ वह किसी पराश्रित की भाँति पड़ा हुआ था। केवल इसीलिए कि उसे और कहीं शरण नहीं थी। इस वक्त भी उसके घर न जाने की किसे चिन्ता होगी? बाबू जी भोजन करके लेटे होंगे, अम्माँ जी भी आराम करने जा रही होंगी। किसी ने मेरे कमरे की ओर झाँक कर देखा भी न होगा। हाँ, बुआ जी घबड़ा रही होंगी। वही अभी तक मेरी राह देखती होंगी। जब तक मैं न जाऊँगा, भोजन न करेंगी।

रुक्मिणी की याद आते ही सियाराम घर की ओर चला। वह अगर और कुछ न कर सकती थी, तो कम से कम उसे गोद में चिमटा कर रोती तो थी। उसके बाहर से आने पर हाथ-मुँह धोने के लिए पानी तो रख देती थी। संसार में सभी बालक दूध की कुल्लियाँ नहीं करते, सभी सोने के कौर नहीं खाते। कितनों

को पेट भर भोजन भी नहीं मिलता ; पर घर से विरक्त वही होते हैं, जो मातृ-स्नेह से वञ्चित हैं।

सियाराम घर की ओर चला ही था कि सहसा बाबा परमानन्द एक गली से आते दिखाई दिए।

सियाराम ने जाकर उनका हाथ पकड़ लिया। परमानन्द ने चौंक कर पूछा—बचा, तुम यहाँ कहाँ ?

सियाराम ने बात बना कर कहा—एक दोस्त से मिलने आया था। आपका स्थान यहाँ से कितनी दूर है ?

परमानन्द—हम लोग तो आज यहाँ से जा रहे हैं, बचा हरिद्वार की यात्रा है।

सियाराम ने हतोत्साह होकर कहा—क्या आज ही चले जाइएगा ?

परमानन्द—हाँ बचा, अब लौट कर आऊँगा तो दर्शन दूँगा।

सियाराम ने कातर कण्ठ से कहा—लौट कर !

परमानन्द—जल्द ही आऊँगा; बच्चा !

सियाराम ने दीन-भाव से कहा—मैं भी आपके साथ चलूँगा।

परमानन्द—मेरे साथ ! तुम्हारे घर के लोग जाने देंगे ?

सियाराम—घर के लोगों को मेरी क्या पर्वाह है। इसके आगे सियाराम और कुछ न कह सका। उसके अश्रु-पूरित नेत्रों ने उसकी करुण-गाथा उससे कहीं विस्तार के साथ सुना दी, जितनी उसकी वाणी कर सकती थी।

परमानन्द ने बालक को कण्ठ से लगा कर कहा—अच्छा बच्चा, तेरी इच्छा है तो चल। साधु सन्तों की सङ्गति का भी आनन्द उठा। भगवान् की इच्छा होगी, तो तेरी इच्छा पूरी होगी।

दाने पर मँडराता हुआ पक्षी अन्त को दाने पर गिर पड़ा। उसके जीवन का अन्त पिंजरे में होगा या व्याध की छुरी के तले—यह कौन जानता है?

तेईसवाँ परिच्छेद

मुन्शी जी पाँच बजे कचहरी से लौटे; और अन्दर आकर चारपाई पर गिर पड़े। बुढ़ापे की देह उस पर आज सारे दिन भोजन न मिला। मुँह सूख गया था। निर्मला समझ गई, आज दिन ख़ाली गया।

निर्मला ने पूछा—आज कुछ न मिला ?

मुन्शी जी—सारा दिन दौड़ते गुज़रा; पर हाथ कुछ न लगा।

निर्मला—फ़ौजदारी वाले मामले में क्या हुआ ?

मुन्शी जी—मेरे मुवक्किल को सज़ा हो गई।

निर्मला—और पण्डित वाले मुक़दमे में ?

मुन्शी जी—पण्डित पर डिग्री हो गई।

निर्मला—आप तो कहते थे दावा ख़ारिज हो जायगा।

मुन्शी जी—कहता तो था; और अब भी कहता हूँ कि दावा ख़ारिज हो जाना चाहिए था; मगर उतना सिर-मग़ज़न कौन करे!

निर्मला—और उस सीर वाले दावे में ?

मुन्शी जी—उसमें भी हार हो गई।

निर्मला—तो आज आप किसी अभागे का मुँह देख कर उठे थे।

मुन्शी जी से अब काम बिलकुल न हो सकता था। एक तो उनके पास मुक़दमे आते ही न थे; और जो आते भी थे, वह बिगड़ जाते थे। मगर अपनी असफलताओं को वह निर्मला से छिपाते रहते थे। जिस दिन कुछ हाथ न लगता, उस दिन किसी से दो-चार रुपए उधार लाकर निर्मला को दे देते। प्रायः सभी मित्रों से कुछ न कुछ ले चुके थे। आज वह डौल भी न लगा।

निर्मला ने चिन्तापूर्ण स्वर में कहा—आमदनी का यह हाल है, तो ईश्वर ही मालिक है ; उस पर बेटे का यह हाल है कि बाज़ार जाना मुश्किल। भुङ्गी ही से सब काम कराने का जी चाहता है। घी लेकर ग्यारह बजे लौटे। कितना कह कर हार गई कि लकड़ी लेते आओ; पर सुना ही नहीं।

मुन्शी जी—तो खाना नहीं पकाया ?

निर्मला—ऐसी ही बातों से तो आप मुक़दमे हारते हैं। ईंधन के बिना किसी ने खाना बनाया है कि मैं ही बना लेती !

मुन्शी जी—तो बिना कुछ खाए ही चला गया ?

निर्मला—घर में और क्या रक्खा था जो खिला देती ?

मुन्शी जी ने डरते-डरते कहा—कुछ पैसे-वैसे न दे दिए ?

निर्मला ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—घर में पैसे फलते हैं न ?

मुन्शी जी ने कुछ जवाब न दिया। ज़रा देर तक तो प्रतीक्षा करते रहे कि शायद जल-पान के लिए कुछ मिलेगा ; लेकिन जब निर्मला ने पानी तक न मँगवाया, तो बेचारे निराश होकर बाहर चले गए। सियाराम के कष्ट का अनुमान करके उनका चित्त चञ्चल हो उठा। सारा दिन गुज़र गया, बेचारे ने अभी तक कुछ नहीं खाया। कमरे में पड़ा होगा। एक बार भुङ्गी ही से लकड़ी मँगा ली जाती, तो ऐसा क्या नुक़सान हो जाता। ऐसी किफ़ायत भी किस काम की कि घर के आदमी भूखे रह जायँ। अपना सन्दूक़चा खोल कर टटोलने लगे कि शायद दो-चार आने पैसे मिल जायँ। उसके अन्दर के सारे काग़ज़ निकाल डाले, एक-एक ख़ाना देखा, नीचे हाथ डाल कर देखा ; पर कुछ न मिला। अगर निर्मला के सन्दूक़ में पैसे न फलते थे, तो इस सन्दूक़चे में शायद इसके फूल भी न लगते हों ; लेकिन संयोग ही कहिये कि काग़ज़ों को झाड़ते हुए एक चवन्नी गिर पड़ी। मारे हर्ष के मुन्शी जी उछल पड़े। बड़ी-बड़ी रक़में इसके पहले कमा चुके थे; पर यह चवन्नी पाकर इस समय उन्हें जितना आह्लाद हुआ, उतना पहले कभी न हुआ था। चवन्नी हाथ में लिए हुए सियाराम के कमरे के सामने आकर पुकारा। कोई जवाब न मिला। तब कमरे में जाकर देखा। सियाराम का कहीं पता नहीं—क्या अभी स्कूल से नहीं लौटा ? मन में यह प्रश्न उठते ही मुन्शी जी ने अन्दर जाकर भुङ्गी से पूछा। मालूम हुआ कि स्कूल से लौट आए।

मुन्शी जी ने पूछा—कुछ पानी पिया है ?

भुङ्गी ने कुछ जवाब न दिया। नाक सिकोड़ कर मुँह फेरे हुए चली गई।

मुन्शी जी आहिस्ता-आहिस्ता आकर अपने कमरे में बैठ गए। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर क्रोध आया; लेकिन एक ही क्षण में क्रोध का आघात अपने ऊपर होने लगा। उस अँधेरे कमरे में फ़र्श पर लेटे हुए वह अपने को पुत्र की ओर से इतने उदासीन हो जाने पर धिक्कारने लगे। दिन भर के थके थे। थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई।

भुङ्गी ने आकर पुकारा—बाबू जी, रसोई तैयार है। मुन्शी जी चौंक कर उठ बैठे। कमरे में लैम्प जल रहा था।

पूछा—कै बज गए भुङ्गी। मुझे तो नींद आ गई थी।

भुङ्गी ने कहा—कोतवाली के घण्टे में तो नौ बज गए हैं; और हम नाहीं जानित।

मुन्शी जी—सिया बाबू आए ?

भुङ्गी—आए होंगे तो घर ही में न होंगे।

मुन्शी जी ने झुँझला कर पूछा—मैं पूछता हूँ आए कि नहीं ? और तू न जाने क्या-क्या जवाब देती है ? आए कि नहीं ?

भुङ्गी—मैंने तो नहीं देखा, झूठ कैसे कह दूँ।

मुन्शी जी फिर लेट गए और बोले—उनको आ जाने दे, तब चलता हूँ।

आध घण्टे तक द्वार की ओर आँख लगाए मुन्शी जी लेटे रहे। तब वह उठ कर बाहर आए; और दाहिने हाथ कोई दो

फ़लाँङ्ग तक चले। तब लौट कर द्वार पर आए और; पूछा—सिया बाबू आ गए?

अन्दर से जवाब आया—अभी नहीं।

मुन्शी जी फिर बाँईं ओर चले और गली के नुक्कड़ तक गए। सियाराम कहीं न दिखाई दिया। वहाँ से फिर घर लौटे; और द्वार पर खड़े होकर पूछा—सिया बाबू आ गए?

अन्दर से जवाब मिला—नहीं।

कोतवाली के घण्टे में दस बजने लगे।

मुन्शी जी बड़े वेग से कम्पनी बाग़ की तरफ़ चले। सोचने लगे शायद वहाँ घूमने गया हो; और घास पर लेटे-लेटे नींद आ गई हो। बाग़ में पहुँच कर उन्होंने हरेक बैञ्च को देखा, चारों तरफ़ घूमे, बहुत से आदमी घास पर पड़े हुए थे; पर सियाराम का निशान न था। उन्होंने सियाराम का नाम ले लेकर ज़ोर से पुकारा; पर कहीं से आवाज़ न आई।

ख्याल आया शायद स्कूल में कोई तमाशा हो रहा हो। स्कूल एक मील से कुछ ज्यादा ही था। स्कूल की तरफ़ चले; पर आधे रास्ते ही से लौट पड़े। बाज़ार बन्द हो गया था। स्कूल में इतनी रात तक तमाशा नहीं हो सकता। अब की उन्हें आशा हो रही थी कि सियाराम लौट आया होगा। द्वार पर आकर उन्होंने पुकारा—सिया बाबू आए? किवाड़ बन्द थे। कोई आवाज़ न आई। फिर ज़ोर से पुकारा। भुङ्गी किवाड़ खोल कर बोली—अभी तो नहीं आए। मुन्शी जी ने धीरे से भुङ्गी को अपने पास

बुलाया ; और करुण-स्वर में बोले—तू तो घर की सब बात जानती है; बता आज क्या हुआ था ?

भुङ्गी—बाबू जी, झूठ न बोलूँगी ; मालिकिन छुड़ा देंगी और क्या, दूसरे का लड़का इस तरह नहीं रक्खा जाता। जहाँ कोई काम हुआ, बस बाज़ार भेज दिया। दिन भर बाज़ार दौड़ते बीतता था। आज लकड़ी लाने न गए, तो चूल्हा ही नहीं जला। कहो तो मुँह फुलावें। जब आप ही नहीं देखते, तो दूसरा कौन देखेगा। चलिए भोजन कर लीजिए, बहू जी कब से बैठी हैं।

मुन्शी जी—कह दे इस वक्त न खायँगे।

मुन्शी जी फिर अपने कमरे में चले गए; और एक लम्बी साँस ली। वेदना से भरे हुए ये शब्द उनके मुँह से निकल पड़े—ईश्वर, क्या अभी दण्ड पूरा नहीं हुआ ? क्या इस अन्धे की लकड़ी का भी हाथ से छीन लोगे ?

निर्मला ने आकर कहा—आज सियाराम अभी तक नहीं आए। कहती रही कि खाना बनाए देती हूँ, खा लो ; मगर न जाने कब उठ कर चल दिए। न जाने कहाँ घूम रहे हैं। बात तो सुनते ही नहीं। अब कब तक उनकी राह देखा करूँ। आप चल कर खा लीजिए। उनके लिए खाना उठा कर रख दूँगी।

मुन्शी जी ने निर्मला की ओर कठोर नेत्रों से देख कर कहा—अभी कै बजे होंगे ?

निर्मला—क्या जाने, शायद दस बजे होंगे।

मुन्शी जी—जी नहीं, बारह बजे हैं।

निर्मला—बारह ! बारह बज गए ! इतनी देर तो कभी न करते थे। तो अब कब तक उनकी राह देखोगे ! दोपहर को भी तो कुछ नहीं खाया था। ऐसा सैलानी लड़का मैंने नहीं देखा।

मुन्शी जी—जी तुम्हें बहुत दिक़ करता है, क्यों ?

निर्मला—देखिए न, इतनी रात गई ; और घर की सुध ही नहीं।

मुन्शी जी—शायद यह आख़िरी शरारत हो।

निर्मला—कैसी बातें मुँह से निकालते हैं। जायँगे कहाँ ? किसी यार दोस्त के घर पड़ रहे होंगे।

मुन्शी जी—शायद ऐसा ही हो। ईश्वर करे ऐसा ही हो।

निर्मला—सबेरे आवें; तो ज़रा तम्बीह कीजिएगा।

मुन्शी जी—ख़ूब अच्छी तरह करूँगा।

निर्मला—चलिए खा लीजिए, देर बहुत हुई।

मुन्शी जी—सबेरे उसकी तम्बीह करके खाऊँगा। कहीं न आया, तो तुम्हें ऐसा ईमानदार नौकर कहाँ मिलेगा।

निर्मला ने ऐंठ कर कहा—तो क्या मैंने भगा दिया ?

मुन्शी जी—नहीं, यह कौन कहता है ? तुम उसे क्यों भगाने लगीं ? तुम्हारा तो काम करता था। शामत आ गई होगी।

निर्मला ने और कुछ नहीं कहा। बात बढ़ जाने का भय था। भीतर चली आई। सोने को भी न कहा। ज़रा देर में मुन्शी ने अन्दर से किवाड़ भी बन्द कर दिए !

क्या मुन्शी जी को नींद आ सकती थी? तीन लड़कों में केवल एक बच रहा था। वह हाथ से निकल गया, तो फिर जीवन में अन्धकार के सिवा और क्या है? कोई नाम लेने वाला भी न रहेगा। हा! कैसे-कैसे रत्न हाथ से निकल गए। मुन्शी जी की आँखों से यदि इस समय अश्रुधारा बह रही थी, तो कोई आश्चर्य है? उस व्यापक पश्चात्ताप, उस सघन ग्लानि-तिमिर में आशा की एक हलकी-सी रेखा उन्हें सँभाले हुए थी! जिस क्षण यह रेखा लुप्त हो जायगी, कौन कह सकता है—उन पर क्या बीतेगी? उनकी उस वेदना की कल्पना कौन कर सकता है?

कई बार मुन्शी जी की आँखें झपकीं, लेकिन हर बार सियाराम की आहट के धोखे में चौंक पड़े!

सवेरा होते ही मुन्शी जी फिर सियाराम को खोजने निकले। किसी से पूछते शर्म आती थी। किस मुँह से पूछें? उन्हें किसी से सहानुभूति की आशा न थी। प्रकट न कह कर मन में सब यही कहेंगे—जैसा किया, वैसा भोगो। सारे दिन वह स्कूल के मैदानों, बाज़ारों और बग़ीचों का चक्कर लगाते रहे। दो दिन निराहार रहने पर भी उन्हें इतनी शक्ति कैसे हुई, यह वही जानें।

रात के बारह बजे मुन्शी जी घर लौटे, दरवाज़े पर लालटेन जल रही थी, निर्मला द्वार पर खड़ी थी। देखते ही बोली—कहा भी नहीं, न जाने कब चल दिए? कुछ पता चला?

मुन्शी जी ने आग्नेय नेत्रों से ताकते हुए कहा—हट जाओ सामने से, नहीं तो बुरा होगा। मैं आपे में नहीं हूँ। यह तुम्हारी

करनी है। तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है। आज से छः साल पहले क्या इस घर की यही दशा थी ? तुमने मेरा बना-बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने मेरे लहलहाते हुए बाग़ को उजाड़ डाला। केवल एक ठूँठ रह गया है। उसका निशान मिटा कर तभी तुम्हें सन्तोष होगा। मैं अपना सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था। सुखी जीवन को और भी सुखमय बनाना चाहता था। यह उसी का प्रायश्चित्त है। जो लड़के पान की तरह फेरे जाते थे, उन्हें मेरे जीते जी तुमने चाकर समझ लिया; और मैं आँखों से सब कुछ देखते हुए भी अन्धा बना बैठा रहा। जाओ, मेरे लिए थोड़ा सा सङ्खिया भेज दो। बस, यही कसर गई है ; वह भी पूरी हो जाय।

निर्मला ने रोते हुए कहा—मैं तो अभागिन हूँ ही, आप कहेंगे तब जानूँगी ? न जाने ईश्वर ने मेरा जन्म क्यों दिया था। मगर यह आपने कैसे समझ लिया कि सियाराम अब आवेंगे ही नहीं ?

मुन्शी जी ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—जलाओ मत, जाकर खुशियाँ मनाओ। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगई !

चौबीसवाँ परिच्छेद

निर्मला सारी रात रोती रही। इतना बड़ा कलङ्क! उसने जियाराम को गहने ले जाते देखने पर भी मुँह खोलने का साहस नहीं किया। क्यों? इसीलिए तो कि लोग समझेंगे कि वह मिथ्या दोषारोपण करके लड़के से बैर साध रही है। आज उसके मौन रहने पर उसे अपराधिनी ठहराया जा रहा है। यदि वह जियाराम को उसी क्षण रोक देती; और जियाराम लज्जावश कहीं भाग जाता, तो क्या उसके सिर अपराध न मढ़ा जाता?

सियाराम ही के साथ उसने कौन सा दुर्व्यवहार किया था। वह कुछ बचत करने ही के विचार से तो सियाराम से सौदा मँगवाया करती थी। क्या वह बचत करके अपने लिए गहने गढ़वाना चाहती थी? जब आमदनी का यह हाल हो रहा था, तो पैसे-पैसे पर निगाह रखने के सिवाय कुछ जमा करने का

उसके पास और साधन ही क्या था ? जवानों की ज़िन्दगी का तो कोई भरोसा ही नहीं, बूढ़ों की ज़िन्दगी का क्या ठिकाना ? बच्ची के विवाह के लिए वह किसके सामने हाथ फैलाती ? बच्ची का भार कुछ उसी पर तो नहीं था। वह केवल पति की सुविधा ही के लिए कुछ बटोरने का प्रयत्न कर रही थी। पति ही की क्यों ? सियाराम ही तो पिता के बाद घर का स्वामी होता। बहिन के विवाह करने का भार क्या उसके सिर न पड़ता ? निर्मला सारी कसर-ब्योंत पति और पुत्र का सङ्कट मोचन करने ही के लिए कर रही थी। बच्ची का विवाह इस परिस्थिति में सङ्कट के सिवाय और क्या था ? पर इसके लिए भी उसके भाग्य में अपयश ही बदा था।

दोपहर हो गया था ; पर आज भी चूल्हा नहीं जला। खाना भी जीवन का काम है—इसकी किसी को सुध ही न थी। मुन्शी जी बाहर बेजान-से पड़े थे, और निर्मला भीतर। बच्ची कभी भीतर जाती, कभी बाहर। कोई उससे बोलने वाला न था। बार-बार सियाराम के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ी होती ; और 'भैया-भैया' पुकारती ; पर 'भैया' कोई जवाब न देता था !

सन्ध्या समय मुन्शी जी आकर निर्मला से बोले—तुम्हारे पास कुछ रुपए हैं ?

निर्मला ने चौंक कर पूछा—क्या कीजिएगा ?

मुन्शी जी—मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दो।

निर्मला—क्या आपको नहीं मालूम है ? देने वाले तो आप ही हैं।

मुन्शी—तुम्हारे पास कुछ रुपए हैं या नहीं ? अगर हों तो मुझे दे दो, न हों तो साफ़ जवाब दो।

निर्मला ने अब भी साफ़ जवाब न दिया। बोली—होंगे तो घर ही में न होंगे। मैं ने कहीं और तो नहीं भेज दिए।

मुन्शी जी बाहर चले गए। वह जानते थे कि—निर्मला के पास रुपए हैं। वास्तव में थे भी। निर्मला ने यह भी नहीं कहा कि नहीं हैं, या मैं न दूँगी ; पर उसकी बातों से प्रकट हो गया कि वह देना नहीं चाहती।

नौ बजे रात को मुन्शी जी ने आकर रुक्मिणी से कहा—बहिन, मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ। मेरा बिस्तरा भुङ्गी से बँधवा देना ; और ट्रङ्क में कुछ कपड़े रखवा कर बन्द कर देना।

रुक्मिणी भोजन बना रही थी; बोली—बहू तो कमरे में है, कह क्यों नहीं देते ? कहाँ जाने का इरादा है ?

मुन्शी जी—मैं तुमसे कहता हूँ; बहू से कहना होता, तो तुमसे क्यों कहता ? आज तुम क्यों खाना पका रही हो ?

रुक्मिणी—कौन पकावे ? बहू के सिर में दर्द हो रहा है। आख़िर इस वक़्त कहाँ जा रहे हो ? सवेरे न चले जाना।

मुन्शी जी—इसी तरह टालते-टालते तो आज तीन दिन हो गए। इधर-उधर घूम-घाम कर देखूँ, शायद कहीं सियाराम का

पता मिल जाय। कुछ लोग कहते हैं कि एक साधू के साथ बातें कर रहा था। शायद वही कहीं बहका ले गया हो।

रुक्मिणी—तो लौटोगे कब तक ?

मुन्शी जी—कह नहीं सकता। हफ़्ता भर लग जाय, महीना भर लग जाय ; क्या ठिकाना है ?

रुक्मिणी—आज कौन दिन है ? किसी पण्डित से पूछ लिया है, यात्रा है कि नहीं ?

मुन्शी जी भोजन करने बैठे। निर्मला को इस वक़्त उन पर बड़ी दया आई। उसका सारा क्रोध शान्त हो गया। ख़ुद तो न बोली, बच्ची को जगा कर चुमकारती हुई बोली—देख, तेरे बाबू जी कहाँ जा रहे हैं ? पूछ तो।

बच्ची ने द्वार से झाँक कर पूछा—बाबू दी, तहाँ दाते हो ?

मुन्शी जी—बड़ी दूर जाता हूँ, बेटी। तुम्हारे बैया को खोजने जाता हूँ।

बच्ची ने वहीं से खड़े-खड़े कहा—अम बी तलेंगे।

मुन्शी जी—बड़ी दूर जाते हैं बच्ची। तुम्हारे वास्ते चीज़ें लावेंगे ! यहाँ क्यों नहीं आती ?

बच्ची मुस्करा कर छिप गई; और एक क्षण में फिर किवाड़ से सिर निकाल कर बोली—अम बी तलेंगे।

मुन्शी जी ने उसी स्वर में कहा—तुम को नईं ले तलेंगे।

बच्ची—अम को क्यों नईं ले तलोगे ?

मुन्शी जी—तुम तो हमारे पाछ आती नहीं हो।

लड़की ठुमकती हुई आकर पिता की गोद में बैठ गई। थोड़ी देर के लिए मुन्शी जी उसकी बाल-क्रीड़ा में अपनी अन्तर्वेदना भूल गए।

भोजन करके मुन्शी जी बाहर चले गए। निर्मला खड़ी ताकती रही। कहना चाहती थी—व्यर्थ जा रहे हो; पर कह न सकती थी। कुछ रुपए निकाल कर देने का विचार करती थी; पर दे न सकती थी।

अन्त को न रहा गया। रुक्मिणी से बोली—दीदी जी, ज़रा समझा दीजिए, कहाँ जा रहे हैं। मेरी तो ज़बान पकड़ी जायगी; पर बिना बोले रहा नहीं जाता। बिना ठिकाने कहाँ खोजेंगे? व्यर्थ की हैरानी होगी।

रुक्मिणी ने करुण-सूचक नेत्रों से देखा; और अपने कमरे में चली गई।

निर्मला बच्ची को गोद में लिए सोच रही थी कि शायद जाने के पहले बच्ची को देखने या मुझसे मिलने के लिए आवें; पर उसकी आशा विफल हो गई। मुन्शी जी ने बिस्तर उठाया और ताँगे पर जा बैठे।

उसी वक़्त निर्मला का कलेजा मसोसने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा कि अब इनसे भेंट न होगी। वह अधीर होकर द्वार पर आई कि मुन्शी जी को रोक ले; पर ताँगा चल दिया था!

पच्चीसवाँ परिच्छेद

दिन गुज़रने लगे। एक महीना पूरा निकल गया; लेकिन मुन्शी जी न लौटे। कोई ख़त भी नहीं भेजा। निर्मला को अब नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि वह लौट कर न आए तो क्या होगा? उसे इसकी चिन्ता न होती थी कि उन पर क्या बीत रही होगी, वह कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, स्वास्थ्य कैसा होगा? उसे केवल अपनी और इससे भी बढ़ कर बच्ची की चिन्ता थी। गृहस्थी का निर्वाह कैसे होगा? ईश्वर कैसे बेड़ा पार लगावेंगे? बच्ची का क्या हाल होगा? उसने कतर-ब्योंत करके जो रुपये जमा कर रक्खे थे, उसमें कुछ न कुछ रोज़ ही कमी होती जाती थी। निर्मला को उसमें से एक-एक पैसा निकालते इतनी अखर होती थी, मानो कोई उसकी देह से रक्त निकाल रहा हो। झुँझला कर मुन्शी जी को कोसती। लड़की किसी चीज़ के लिए रोती, तो उसे अभागिन, कलमुँही कह कर झल्लाती। यही नहीं,

रुक्मिणी का घर में रहना उसे ऐसा कष्टकर जान पड़ता था, मानो वह उसकी गर्दन पर सवार है। जब हृदय जलता है, तो वाणी भी अग्निमय हो जाती है। निर्मला बड़ी मधुर-भाषिणी स्त्री थी; पर अब उसकी गणना कर्कशाओं में की जा सकती थी। दिन भर उसके मुख से जली-कटी बातें ही निकला करती थीं। उसके शब्दों की कोमलता न जाने क्या हो गई। भावों में माधुर्य का कहीं नाम ही नहीं। भुङ्गी बहुत दिनों से इस घर में नौकर थी। स्वभाव की सहनशीला थी; पर यह आठों पहर की बक-झक उससे भी न सही गई। एक दिन उसने भी घर की राह ली। यहाँ तक कि जिस बच्ची को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, उसकी सूरत से भी घृणा हो गई। बात-बात पर घुड़क पड़ती, कभी-कभी मार बैठती। रुक्मिणी रोती हुई बालिका को गोद में उठा लेती; और चुमकार-दुलार कर चुप करती। उस अनाथ के लिए अब यही एक आश्रय रह गया था।

निर्मला को अब अगर कुछ अच्छा लगता था, तो वह सुधा से बातें करना था। वह वहाँ जाने का अवसर खोजती रहती थी। बच्ची को अब वह अपने साथ न ले जाना चाहती थी। पहले जब बच्ची को अपने घर सभी चीजें खाने को मिलती थी, तो वह वहाँ जाकर हँसती-खेलती थी। अब वहाँ जाकर उसे भूख लगती थी। निर्मला उसे घूर-घूर कर देखती, मुट्ठियाँ बाँध कर धमकाती; पर लड़की भूख की रट लगाना न छोड़ती थी। इसीलिए अब निर्मला उसे साथ न ले जाती थी। सुधा के पास बैठ कर उसे मालूम होता

था कि मैं भी आदमी हूँ। उतनी देर के लिए वह चिन्ताओं से मुक्त हो जाती थी। जैसे शराबी को शराब के नशे में सारी चिन्ताएँ भूल जाती हैं, उसी तरह निर्मला को सुधा के घर जाकर सारी बातें भूल जाती थीं। जिसने उसे उसके घर पर देखा हो, वह उसे यहाँ देख कर चकित रह जाता। वही कर्कशा, कटु-भाषिणी स्त्री यहाँ आकर हास्य, विनोद और माधुर्य की पुतली बन जाती थी। यौवन-काल की स्वाभाविक वृत्तियाँ अपने घर पर रास्ता बन्द पाकर यहाँ किलोलें करने लगती थीं। यहाँ आते वक्त वह माँग-चोटी, कपड़े-लत्ते से लैस होकर आती; और यथासाध्य अपनी विपत्ति-कथा को मन ही में रखती थी। यहाँ वह रोने के लिए नहीं, हँसने के लिए आती थी।

पर कदाचित् उसके भाग्य में यह सुख भी नहीं बदा था! निर्मला मामूली तौर से दोपहर को या तीसरे पहर को सुधा के घर जाया करती थी। एक दिन उसका जी इतना ऊबा कि सवेरे ही जा पहुँची। सुधा नदी-स्नान करने गई हुई थी। डॉक्टर साहब अस्पताल जाने के लिए कपड़े पहन रहे थे। महरी अपने काम-धन्धे में लगी हुई थी। निर्मला अपनी सहेली के कमरे में जाकर निश्चिन्त बैठ गई। उसने समझा—सुधा कोई काम कर रही होगी, अभी आती होगी। जब बैठे-बैठे दो-तीन मिनिट गुज़र गए, तो उसने अलमारी से तस्वीरों की एक किताब उतार ली, और केश खोले पलङ्ग पर लेट कर चित्र देखने लगी। इसी बीच में डॉक्टर साहब को किसी ज़रूरत से निर्मला के कमरे में आना पड़ा। शायद अपनी ऐनक

ढूँढ़ते फिरते थे। वेधड़क अन्दर चले आए। निर्मला द्वार की ओर केश खोले लेटी हुई थी। डॉक्टर साहब को देखते ही चौंक कर उठ बैठी, और सिर ढाँकती हुई चारपाई से उतर कर खड़ी हो गई। डॉक्टर साहब ने लौटते हुए चिक़ के पास खड़े होकर कहा—क्षमा करना निर्मला। मुझे मालूम न था कि तुम यहाँ हो। मेरी ऐनक मेरे कमरे में नहीं मिल रही है। न जाने कहाँ उतार कर रख दी थी। मैं ने समझा शायद यहाँ हो।

निर्मला ने चारपाई के सिरहाने वाले आले पर निगाह डाली तो ऐनक की डिबिया दिखाई दी। उसने आगे बढ़ कर डिबिया उतार ली; और सिर झुकाए, देह समेटे, सङ्कोच से मुँह फेरे डॉक्टर साहब की ओर हाथ बढ़ाया। डॉक्टर साहब ने निर्मला को दो-एक बार पहले भी देखा था; पर इस समय के से भाव कभी उनके मन में न आए थे। जिस ज्वाला को वह बरसों से हृदय में दबाए हुए थे, वह आज पवन का झोंका पाकर दहक उठी। उन्होंने ऐनक लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो हाथ काँप रहा था। ऐनक उठा कर भी वह बाहर न गए। वहीं खोए हुए से खड़े रहे। निर्मला ने इस एकान्त से भयभीत होकर पूछा—सुधा कहीं गई हैं क्या?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—हाँ, जरा स्नान करने चली गई हैं।

फिर भी डॉक्टर साहब बाहर न गए। वहीं खड़े रहे। निर्मला ने फिर पूछा—कब तक आएँगी?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए कहा—आती ही होंगी।

फिर भी वह बाहर नहीं गए। उनके मन में घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। औचित्य का बन्धन नहीं, भीरुता का कच्चा तागा उनकी ज़बान को रोके हुए था।

निर्मला ने फिर कहा—कहीं घूमने-घामने लगी होंगी। मैं भी इस वक्त़ जाती हूँ।

भीरुता का कच्चा तागा भी टूट गया। नदी के कगार पर पहुँच कर भागती हुई सेना में अद्‌भुत शक्ति आ जाती है। डॉक्टर साहब ने सिर उठा कर निर्मला को देखा; और अनुराग में डूबे हुए स्वर में बोले—नहीं निर्मला, अब आती ही होंगी। अभी न जाओ। रोज़ सुधा की ख़ातिर से बैठती हो, आज मेरी ख़ातिर से बैठो। बताओ, कब तक इस आग में जला करूँ, सत्य कहता हूँ निर्मला........।

निर्मला ने और कुछ नहीं सुना। उसे ऐसा जान पड़ा मानो सारी पृथ्वी चक्कर खा रही है, मानो उसके प्राणों पर सहस्रों वज्रों का आघात हो रहा है। उसने जल्दी से अलगनी पर लटकती हुई चादर उतार ली; और बिना मुँह से एक शब्द निकाले कमरे से निकल गई। डॉक्टर साहब खिसियाए हुए से रोना मुँह बनाए खड़े रहे। उसको रोकने की या और कुछ कहने की उनकी हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ज्योंही द्वार पर पहुँची, उसने सुधा को ताँगे से उतरते देखा। सुधा उसे देखते ही जल्दी से उतर कर उसकी ओर लपकी और कुछ पूछना चाहती थी; मगर निर्मला ने उसे अवसर न दिया,

तीर की तरह झपट कर चली गई। सुधा एक क्षण तक विस्मय की दशा में खड़ी रही। बात क्या है, उसकी समझ में कुछ न आ सका। वह व्यग्र हो उठी। जल्दी से अन्दर गई। महरी से पूछा कि क्या बात हुई है। उसे मालूम हुआ कि कहीं महरी या और किसी नौकर ने उसे कोई अपमान-सूचक बात कह दी है। वह अपराधी का पता लगाएगी; और उसे खड़े-खड़े निकाल देगी। लपकी हुई अपने कमरे में गई। अन्दर क़दम रखते ही डॉक्टर साहब को मुँह लटकाए चारपाई पर बैठे देखा। पूछा—निर्मला यहाँ आई थी!

डॉक्टर ने सिर खुजलाते हुए कहा—हाँ, आई तो थी?

सुधा—किसी महरी-अहरी ने उन्हें कुछ कहा तो नहीं? मुझसे बोलीं तक नहीं, झपट कर निकल गईं।

डॉक्टर साहब की मुख-कान्ति मलिन हो गई; कहा—यहाँ तो उन्हें किसी ने भी कुछ नहीं कहा।

सुधा—किसी ने कुछ कहा है! देखो, मैं पूछती हूँ न। ईश्वर जानता है, पता पा जाऊँगी तो खड़े-खड़े निकाल दूँगी। डॉक्टर साहब सिटपिटाते हुए बोले—मैंने तो किसी को कुछ कहते नहीं सुना। तुम्हें उन्होंने देखा ही न होगा।

सुधा—वाह, देखा ही न होगा! उनके सामने तो मैं ताँगे से उतरी हूँ। उन्होंने मेरी ओर ताका भी; पर बोलीं कुछ नहीं। इस कमरे में आई थीं?

डॉक्टर साहब के प्राण सूखे जा रहे थे। हिचकिचाते हुए बोले—आई क्यों नहीं थीं।

सुधा—तुम्हें यहाँ बैठे देख कर चली गई होंगी। बस, किसी महरी ने कुछ कह दिया होगा। नीच ज़ात हैं न, किसी को बात करने की तमीज़ तो है नहीं। अरी ओ सुन्दरिया, ज़रा यहाँ तो आ!

डॉक्टर—उसे क्यों बुलाती हो, वह यहाँ से सीधे दरवाज़े की तरफ़ गईं, महरियों से तो बात तक नहीं हुई।

सुधा—तो फिर तुम्हीं ने कुछ कह दिया होगा।

डॉक्टर साहब का कलेजा धक-धक करने लगा। बोले—मैं भला क्या कह देता, क्या ऐसा गँवार हूँ?

सुधा—तुमने उन्हें आते देखा तब भी बैठे रह गए?

डॉक्टर—मैं यहाँ था ही नहीं। बाहर बैठक में अपनी ऐनक ढूँढ़ता रहा। जब वहाँ न मिली, तो मैं ने सोचा शायद अन्दर हो। यहाँ आया सो उन्हें बैठे देखा। मैं बाहर जाना चाहता था कि उन्होंने ख़ुद पूछा—किसी चीज़ की ज़रूरत है? मैं ने कहा—ज़रा देखना यहाँ मेरी ऐनक तो नहीं है। ऐनक इसी सिरहाने वाले ताक़ पर थी। उन्होंने उठा कर दे दी। बस, इतनी ही तो बात हुई।

सुधा—बस, तुम्हें ऐनक देते ही वह झल्लाई हुई बाहर चली गईं! क्यों?

डॉक्टर—भलाई हुई तो नहीं चली गईं। जाने लगीं तो मैंने कहा बैठिए, वह आती होंगी। न बैठीं तो मैं क्या करता?

सुधा ने कुछ सोच कर कहा—बात कुछ समझ में नहीं आती! मैं ज़रा उनके पास जाती हूँ। देखूँ बात क्या है?

डॉक्टर—तो चली जाना, ऐसी जल्दी क्या है! सारा दिन तो पड़ा हुआ है।

सुधा ने चादर ओढ़ते हुए कहा—मेरे पेट में खलबली मची हुई है, तुम कहते हो जल्दी क्या है?

सुधा तेज़ी से क़दम बढ़ाती हुई निर्मला के घर की ओर चली; और पाँच मिनिट में जा पहुँची। देखा तो निर्मला अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी रो रही थी; और बच्ची उसके पास खड़ी पूछ रही थी—अम्माँ, क्यों लोती हो?

सुधा ने लड़की को गोद में उठा लिया; और निर्मला से बोली—बहिन, सच बताओ क्या बात है? मेरे यहाँ किसी ने तुम्हें कुछ कहा है? मैं सबसे पूछ चुकी, कोई नहीं बतलाता।

निर्मला आँसू पोंछती हुई बोली—किसी ने कुछ कहा नहीं बहिन, भला वहाँ मुझे कौन कुछ कहता?

सुधा—तो फिर मुझसे बोलीं क्यों नहीं, और आते ही आते रोने क्यों लगीं?

निर्मला—अपने नसीबों को रो रही हूँ और क्या?

सुधा—तुम यों न बताओगी तो मैं क़सम रखा दूँगी।

निर्मला—क़सम-असम न रखाना भाई, मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा, झूठ किसे लगा दूँ?

सुधा—खाओ मेरी क़सम?

निर्मला—तुम तो नाहक़ जिद करती हो।

सुधा—अगर तुमने न बताया निर्मला, तो मैं समझूँगी तुम्हें मुझसे ज़रा भी प्रेम नहीं है। बस, सब ज़बानी जमा-खर्च है। मैं तुमसे किसी बात का परदा नहीं रखती; और तुम मुझे ग़ैर समझती हो। मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा था। अब जान गई कि कोई किसी का नहीं होता।

सुधा की आँखें सजल हो गईं। उसने बच्ची को गोद से उतार दिया; और द्वार की ओर चली। निर्मला ने उठ कर उसका हाथ पकड़ लिया; और रोती हुई बोली—सुधा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मत पूछो। तुम्हें सुन कर दुख होगा; और शायद मैं फिर तुम्हें अपना मुँह न दिखा सकूँ। मैं अभागिनी न होती, तो यह दिन ही क्यों देखती। अब तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि, वे संसार से मुझे उठा लें। अभी यह दुर्गति हो रही है, तो आगे न जानें क्या होगा!

इन शब्दों में जो सङ्केत था, वह बुद्धिमती सुधा से छिपा न रह सका। वह समझ गई कि डॉक्टर साहब ने कुछ छेड़-छाड़ की है। उनका हिचक-हिचक कर बातें करना; और उसके प्रश्नों को टालना, उनकी वह ग्लानिमय, कान्तिहीन मुद्रा उसे याद आ गई।

वह सिर से पाँव तक काँप उठी ; और बिना कुछ कहे-सुने सिंहनी की भाँति क्रोध में भरी हुई द्वार की ओर चली। निर्मला ने उसे रोकना चाहा ; पर न पा सकी। देखते-देखते वह सड़क पर आ गई और घर की ओर चली। तब निर्मला वहीं भूमि पर बैठ गई और फूट-फूट कर रोने लगी !

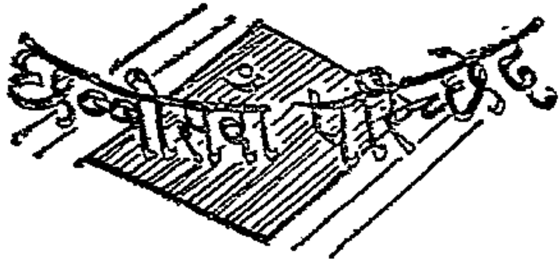

निर्मला दिन भर चारपाई पर पड़ी रही। मालूम होता है, उसकी देह में प्राण ही नहीं है। न स्नान किया, न भोजन करने उठी। सन्ध्या समय उसे ज्वर हो आया। रात भर देह तवे की भाँति तपती रही। दूसरे दिन भी ज्वर न उतरा। हाँ, कुछ-कुछ कम हो गया था। वह चारपाई पर लेटी हुई निश्चल नेत्रों से द्वार की ओर ताक रही थी। चारों ओर शून्य था, अन्दर भी शून्य, बाहर भी शून्य। कोई चिन्ता न थी, न कोई स्मृति, न कोई दुख। मस्तिष्क में स्पन्दन की शक्ति ही न रही थी।

सहसा रुक्मिणी बच्ची को गोद में लिए आकर खड़ी हो गई। निर्मला ने पूछा—क्या यह बहुत रोती थी ?

रुक्मिणी—नहीं, यह तो मिनकी तक नहीं। रात भर चुपचाप पड़ी रही। सुधा ने थोड़ा सा दूध भेज दिया था, वही पिला दिया था।

निर्मला—अहीरिन दूध न दे गई थी ?

रुक्मिणी—कहती थी, पिछले पैसे दे दो तो दूँ। तुम्हारा जी अब कैसा है ?

निर्मला—मुझे कुछ नहीं हुआ है। कल ज़रा देह गरम हो आई थी।

रुक्मिणी—डॉक्टर साहब का तो बुरा हाल हो गया। निर्मला ने घबड़ाकर पूछा—क्या हुआ क्या ? कुशल से हैं न ?

रुक्मिणी—कुशल से हैं कि लाश उठाने की तैयारी हो रही है। कोई कहता है ज़हर खा लिया था, कोई कहता है दिल का चलना बन्द हो गया था। भगवान् जानें क्या हुआ था।

निर्मला ने एक ठण्डी साँस ली; और रुँधे हुए कण्ठ से बोली—हाय ! भगवान्, सुधा की क्या गति होगी ? वह कैसे जिएगी !

यह कहते-कहते वह रो पड़ी; और बड़ी देर तक सिसकती रही। तब चारपाई से उतर कर सुधा के पास जाने को तैयार हुई। पाँव थर-थर काँप रहे थे, दीवार थामे खड़ी थी; पर जी न मानता था ! न जाने सुधा ने यहाँ से जाकर पति से क्या कहा ? मैं ने तो उससे कुछ कहा भी नहीं, न जाने मेरी बातों का वह क्या मतलब समझी ! हाय ! ऐसे रूपवान्, ऐसे दयालु, ऐसे सुशील प्राणी का यह अन्त ! अगर निर्मला को मालूम होता कि उसके क्रोध का यह भीषण परिणाम होगा, तो वह ज़हर का घूँट पीकर भी उस बात को हँसी में उड़ा देती !

यह सोच कर कि मेरी ही निष्ठुरता के कारण डॉक्टर साहब का यह हाल हुआ, निर्मला के हृदय के टुकड़े होने लगे। ऐसी वेदना होने लगी, मानो हृदय में शूल उठ रहा हो। वह डॉक्टर साहब के घर चली।

लाश उठ चुकी थी। बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। घर में स्त्रियाँ जमा थीं। सुधा ज़मीन पर बैठी रो रही थी। निर्मला को देखते ही वह ज़ोर से चिल्ला कर रो पड़ी; और आकर उसकी छाती से लिपट गई। दोनों देर तक रोती रहीं।

जब औरतों की भीड़ कम हुई और एकान्त हो गया, तो निर्मला ने पूछा—यह क्या हो गया बहिन, तुमने कह क्या दिया?

सुधा अपने मन को इसी प्रश्न का उत्तर आज कितनी ही बार दे चुकी थी। उसका मन जिस उत्तर से शान्त हो गया था, वही उत्तर उसने निर्मला को दिया। बोली—चुप भी तो न रह सकती थी, बहिन! क्रोध की बात पर क्रोध आता ही है।

निर्मला—मैं ने तो तुमसे कोई ऐसी बात भी न कही थी।

सुधा—तुम कैसे कहतीं, कह ही नहीं सकती थीं; लेकिन उन्होंने जो बात हुई थी, वह कह दी! उस पर मैं ने जो कुछ मुँह में आया कहा। जब एक बात दिल में आ गई, तो उसे हुआ ही समझना चाहिए। अवसर और घात मिले, तो वह अवश्य पूरी हो। यह कह कर कोई नहीं निकल सकता कि मैं ने तो हँसी की थी। एकान्त में ऐसा शब्द ज़बान पर लाना ही कह देता है कि नीयत बुरी थी। मैं ने तुमसे कभी कहा नहीं बहिन; लेकिन मैं ने

उन्हें कई बार तुम्हारी ओर झाँकते देखा। उस वक़्त मैं ने भी यही समझा कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो। अब मालूम हुआ कि उस ताक-झाँक का क्या मतलब था। अगर मैं ने दुनिया ज़्यादा देखी होती, तो तुम्हें अपने घर न आने देती। कम से कम उनकी तुम पर निगाह कभी न पड़ने देती ; लेकिन यह क्या जानती थी कि पुरुषों के मुँह में कुछ और मन में कुछ और होता है। ईश्वर को जो मन्ज़ूर था, वह हुआ। ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन साँप बन कर काटने दौड़े। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।

इसी वक़्त डॉक्टर सिन्हा के छोटे भाई और कृष्णा ने घर में प्रवेश किया। घर में कोहराम मच गया!

सत्रहवाँ परिच्छेद

एक महीना और गुज़र गया। सुधा अपने देवर के साथ तीसरे ही दिन चली गई। अब निर्मला अकेली थी। पहले हँस-बोल कर जी बहला लिया करती थी। अब रोना ही एक काम रह गया। उसका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता गया। पुराने मकान का किराया अधिक था। दूसरा मकान थोड़े किराए का लिया। यह एक तङ्ग गली में था। अन्दर एक कमरा था; और छोटा सा आँगन। न प्रकाश जाता, न वायु! दुर्गन्ध उड़ा करती थी। भोजन का यह हाल कि पैसे रहते हुए भी कभी-कभी उपवास करना पड़ता था। बाज़ार से लावे कौन? फिर अब घर में कोई मर्द नहीं, कोई लड़का नहीं, तो रोज़ भोजन बनाने का कष्ट कौन उठावे। औरतों के लिए रोज़ भोजन करने की आवश्यकता ही क्या? अगर एक वक्त खा लिया, तो दो दिन के लिए छुट्टी हो गई। बच्ची के लिए ताज़ा हलुवा या रोटियाँ बन जाती थीं। ऐसी दशा में स्वास्थ्य क्यों न बिगड़ता? चिन्ता,

शोक, दुरावस्था—एक हो, तो कोई कहे; यहाँ तो त्रैताप का धावा था। उस पर निर्मला ने दवा खाने की क़सम खा ली थी। करती ही क्या! उस थोड़े से रुपयों में दवा की गुञ्जाइश कहाँ थी। जहाँ भोजन का ठिकाना न था, वहाँ दवा का ज़िक्र ही क्या? दिन-दिन सूखती चली जाती थी!

एक दिन रुक्मिणी ने कहा—बहू, इस तरह कब तक घुला करोगी, जी ही से तो जहान है! चलो, किसी वैद्य को दिखा लाऊँ।

निर्मला ने विरक्त भाव से कहा—जिसे रोने ही के लिए जीना हो, उसका मर जाना ही अच्छा।

रुक्मिणी—बुलाने से तो मौत नहीं आती।

निर्मला—मौत तो बिना बुलाए आती है, बुलाने पर क्यों न आएगी। उसके आने में अब बहुत दिन न लगेंगे। बहिन! जै दिन चलती हूँ, उतने साल समझ लीजिए।

रुक्मिणी—दिल ऐसा छोटा मत करो, बहू! अभी तुमने संसार का सुख ही क्या देखा है?

निर्मला—अगर संसार का यही सुख है, जो इतने दिनों से देख रही हूँ, तो उससे जी भर गया। सच कहती हूँ बहिन, इस बच्ची का मोह मुझे बाँधे हुए है; नहीं तो अब तक कभी की चली गई होती। न जाने इस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है?

दोनों महिलाएँ रोने लगीं। इधर जब से निर्मला ने चारपाई पकड़ ली है, रुक्मिणी के हृदय में दया का सोता सा खुल गया है।

द्वेष का लेश भी नहीं रहा। कोई काम करती हों, निर्मला की आवाज़ सुनते ही दौड़ती हैं। घण्टों उसके पास कथा-पुराण सुनाया करती हैं। कोई ऐसी चीज़ पकाना चाहती हैं, जिसे निर्मला रुचि से खाए। निर्मला को कभी हँसते देख लेती हैं, तो निहाल हो जाती हैं; और बच्ची को तो अपने गले का हार बनाए रहती हैं। उसी की नींद सोती हैं, उसी की नींद जागती हैं। वही बालिका अब उनके जीवन का आधार है।

रुक्मिणी ने ज़रा देर बाद कहा—बहू, तुम इतनी निराश क्यों होती हो, भगवान् चाहेंगे तो तुम दो-चार दिन में अच्छी हो जाओगी। मेरे साथ आज वैद्य जी के पास चलो। बड़े सज्जन हैं।

निर्मला—दीदी जी, अब मुझे किसी वैद्य-हकीम की दवा फ़ायदा न करेगी। आप मेरी चिन्ता न करें। बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूँ। अगर जीती-जागती बचे, तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने भर की अपराधिनी हूँ। चाहे क्वाँरी रखिएगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा; पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा, इतनी ही आपसे मेरी विनय है। मैं ने आपकी कुछ सेवा न की, इसका बड़ा दुख हो रहा है। मुझ अभागिनी से किसी को सुख नहीं मिला। जिस पर मेरी छाया भी पड़ गई, उसका सर्वनाश हो गया। अगर स्वामी जी कभी घर आवें, तो उनसे कहिएगा कि उस करम-जली के अपराध क्षमा कर दें।

रुक्मिणी रोती हुई बोली—बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं

ईश्वर से कहती हूँ, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हाँ, मैं ने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया। इसका मुझे मरते दम तक दुख रहेगा।

निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा—दीदी जी, कहने की बात नहीं; पर बिना कहे नहीं रहा जाता। स्वामी जी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि देखा; लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था, वह तो हो ही चुका; अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती। पूर्व-जन्म में न जाने कौन से पाप किए थे, जिनका यह प्रायश्चित्त करना पड़ा। इस जन्म में काँटे बोती, तो कौन गति होती?

निर्मला की साँस बड़े वेग से चलने लगी। फिर खाट पर लेट गई; और बच्ची की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा, जो उसके जीवन की सम्पूर्ण विपत्कथा की वृहद् आलोचना थी। वाणी में इतनी सामर्थ्य कहाँ!

तीन दिन तक निर्मला की आँखों से आँसुओं की धारा बहती रही। वह न किसी से बोलती थी, न किसी की ओर देखती थी; और न किसी की कुछ सुनती थी। बस, रोये चली जाती थी। उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है?

चौथे दिन सन्ध्या समय वह विपत्ति-कथा समाप्त हो गई। उसी समय जब पशु-पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण-पक्षी भी, दिन भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पन्जों और वायु के प्रचण्ड झोंकों से आहत

और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया !!

मुहल्ले के लोग जमा हो गए। लाश बाहर निकाली गई। कौन दाह करेगा, यह प्रश्न उठा। लोग इसी चिन्ता में थे कि सहसा एक बूढ़ा पथिक एक बुक़चा लटकाए आकर खड़ा हो गया। यही मुन्शी तोताराम थे !!

समाप्त